मराठों का इतिहास

मराठों का इतिहास

गोविन्द सखाराम सरदेसाई, बी. ए.

अनुवादिका
श्रीमती रामेश्वरी देवी श्रीवास्तव
एम० ए०, बी० एड० एस० सी०, एम० एड०
अध्यक्षा—इतिहास विभाग
महिला विद्यालय, लखनऊ
लखनऊ विश्वविद्यालय

लखनऊ
दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
१९५७

प्रथम हिन्दी संस्करण १९५७

मुद्रक
अशोक प्रेस, लखनऊ

अनुवादिका की ओर से

मराठा इतिहास के सुप्रसिद्ध लेखक श्री गोविन्द सखाराम सारदेसाई का "Main Currents Of Maratha History" का यह हिन्दी रूपान्तर पाठकोंके कर-कमलोंमें भेंट करते हुए मुझे अपार हर्षका अनुभव हो रहा है। जैसा लेखकने स्वयं स्वीकार किया है—यह छोटी-सी पुस्तक मराठोंके पूरे इतिहासका ब्योरा नहीं देती, इसमें उस बृहत् विषयके प्रमुख अंगोंकी तर्कपूर्ण व्याख्या दी गई है और पेशवा बाजी राव प्रथम माधव राव, महादाजी सिन्धिया तथा नाना फड़नीस जैसे प्रमुख व्यक्तियोंकी नीति, उद्देश्य एवं सफल कृतियोंका वर्णन किया गया है। यही नहीं, विदेशी इतिहासकारों तथा लेखकोंने मराठोंको लुटेरा, अत्याचारी और कलह-पटु दिखा कर जो मिथ्या-धारणाएं पैदा कर दी हैं, उन्हें इस पुस्तकमें तर्कपूर्ण तथ्यों द्वारा दूर करनेकी चेष्टा की गई है। भारतीय स्वतंत्रता की इस शैशवावस्था में यह जान लेना परम आवश्यक है कि लाख कठिनाइयां होते हुए भी हमारे देश-वासी मराठोंने अपने अद्वितीय साहस, प्रतिभा, पराक्रम, धर्मपरायणता एवं देशप्रेमसे किस प्रकार एक अखिल-भारतीय-हिन्दू-राज्य की आधार-शिला रख दी थी और मुग़लों जैसी बड़ी ताक़तके छक्के छुड़ा दिये थे।

देसाईजी ने मराठीके मौलिक स्रोतोंकी सहायता से अपने तर्कोंकी पुष्टि की है और यह दिखा दिया है कि मराठे एक 'जीवित राष्ट्र" थे। इस प्रकार मराठी न जाननेवालोंके लिए उन्होंने विषयको ग्राह्य बना दिया है। पर विदेशी लिबासमें होने के कारण उनकी पुस्तक सर्वसाधारण की पहुंचसे बाहर है, अतएव उसका हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत करके इस कमी की पूर्ति कर दी गई है। सरल भाषा एवं मनोरम शैली द्वारा अनुवादिका तथा प्रकाशकने पुस्तकको सर्वोपयोगी बनानेका भरसक प्रयास किया है। पाठकोंसे निवेदन है कि यदि इसमें किसी प्रकार की त्रुटियां रह गई हों तो अपने सुझाव देकर हमें कृतार्थ करें।

तिथि १-५-५७

रामेश्वरी देवी श्रीवास्तव
अनुवादिका

प्राक्कथन

(१९४९)

इस पुस्तकका जन्म विश्वविद्यालयके अध्यापकके रूपमें दिये गये मेरे उन व्याख्यानों (Readership lectures) से हुआ जो मैंने १९२६ ई० में पटना-विश्वविद्यालयमें दिये थे। इसका प्रस्तुत तृतीय संस्करण तैयार करनेमें मैंने प्राणपणसे इस बातकी चेष्टा की है कि विषय-प्रवेश, अनुसन्धान कार्यमें हालमें होने वाली उन्नति तथा नवीन सामग्रियोंके प्रकाशनके साथ-साथ हो। जो लोग मराठी भाषा से अनभिज्ञ होनेके कारण उस भाषा में प्राप्य सामग्रीका अध्ययन नहीं कर सकते, उनके सम्मुख मराठा इतिहासकी प्रमुख विशेषताओंकी व्याख्या करना मेरा मुख्य उद्देश्य रहा है जिसका मैंने सदैव ध्यान रखा है। इन व्याख्यानोंमें छोटी-छोटी बातोंको छोड़कर मराठा इतिहासके प्रधान पात्रों एवं घटनाओंकी धारावाहिक आलोचना दी गई है। उनके विषयमें पाठक-गण मेरी "मराठोंका नवीन इतिहास" नामक पुस्तक को, जो हाल ही में तीन भागोंमें प्रकाशित हो चुकी है, सुविधापूर्वक पढ़ सकते हैं। प्राचीन मराठा-कालमें घटित होनेवाली घटनाओके क्रमका पक्षपातरहित विवरण प्रस्तुत करना ही मेरा उद्देश्य रहा है।

पुस्तकका प्रस्तुत संस्करण मैंने १९४६ में पूरा किया था। परन्तु उस समय से १५ अगस्त, १९४७ की शांतिमय क्रान्ति एवं तदुपरान्त होनेवाले असंख्य राज्योंके विलीनीकरणके कारण भारतका नक़्शा पूरी तौर पर बदल चुका है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए, अपनी पुस्तकके अन्तिम पृष्ठोंमें व्यक्त किये जानेवाले मेरे अनेक विचार निश्चय ही समयसे पीछे जान पड़ेंगे, पर हालमें राजनैतिक जीवनमें होनेवाले परिवर्तनोंके अनुरूप बनानेके लिए उन पृष्ठोंको फिर से लिखनेकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता।

मेरी आयु मुझे इस बात पर विश्वास करनेके लिए बाध्य करती है कि यह संस्करण मेरे जीवन कालका अन्तिम संस्करण होगा। अतः मैं अपने पाठकोंको, जिन्होंने मेरे ऐतिहासिक प्रयासोंका सदैव स्वागत किया है, धन्यवाद देते हुए उनसे बिदा लेता हूँ।

अन्तम, में सर यदुनाथ सरकारके प्रति, जो आजीवन मेरे मित्र रहे हैं और जिनके साथ मैंने इतिहासमें काम किया है, अध्ययन पर्यन्त प्राप्त होनेवाली उनकी मूल्यवान् सहायता के लिए अत्यधिक ऋणी हूं—इस बातको स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता।

जी० एस० सारदेसाई

कमशेत,
जिला पूना,
१ सितम्बर, १९४९

प्राक्कथन

(१६३३)

सात वर्ष पूर्व जब इन व्याख्यानोंका प्रथम संस्करण छपा था, उस समयसे अब तक मराठा-इतिहासके अनुसन्धाममें अत्यधिक उन्नति हो चुकी है, जिसके लिए «पेशवाओंके दफ़्तर» में से छांटे हुए अनेक विवरण, जो बम्बई की सरकार द्वारा प्रकाशित किये गये हैं, विशेष रूपसे उत्तरदायी है। इन संकलनका सम्पादन करते समय मुझे अपने स्टाफ़की सहायता से ढेरके ढेर पुराने क़ाग़ज-पत्रोंकी छान-बीन करनी पड़ी। ये काग़जात ऐतिहासिक भी हैं और प्रकाशन-सम्बन्धी भी, और उनसे स्वभावतः मुझे ऐसे बहुतसे लाभदायक विषयोंकी जानकारी प्राप्त हो गई है, जो मेरे विचारसे वास्तवमें, उन काग़जोंकी अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् है जो वस्तुतः प्रकाशित हो चुके हैं। मैं नहीं चाहता कि यह अनुभव मेरे साथ ही नष्ट हो जाय— इसी कारण मैं उसका लेखा तैयार करनेके लिए प्राण-पणसे चेष्टा कर रहा हूं। इस बीचमें मेरे पटना के व्याख्यानोंकी प्रतियोंकी मांग बहुत बढ़ गई है, और अब मैं «पेशवाओंके दफ़्तर» के ऊपर अपने आरम्भ किये हुए कार्यसे छुट्टी पाते ही उसको पूरा करनेकी चेष्टा कर रहा हूं। नये संस्करणके लिए इन व्याख्यानोंको दुहराते समय बहुत-सी नई-नई बातें मेरे मनमें आईं जिनको जगह देनेके लिए मैंने चेष्टा की है। पर ऐसा करनेमें भौतिक रूपसे मौलिक योजना अथवा पुस्तकके आकारमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। इन व्याख्यानोंका मुख्य उद्देश्य—जो लोग मराठी भाषा से अपरिचित होनेके कारण मौलिक सामग्रियोंका अध्ययन उनके मूल रूपमें नहीं कर सकते, उनके सम्मुख शुद्ध मराठा दृष्टिकोणसे मराठा इतिहासकी व्याख्या करना था। इस उद्देश्यको मैंने अभी तक सावधानीके साथ पूरा किया है। पर जैसा स्पष्ट है—प्रथम प्रयासमें बहुत-सी बातें छूट गई थीं। उसमें शिवाजीके उत्थान और जीवनवृत्ति की अथवा पेशवा बाजीराव प्रथम और उसके भाई की महान् सफलताओंकी कोई चर्चा न थी। शाहू की मृत्युके बाद अचानक अंग्रेज़ोंके साथ होने वाले मराठा युद्धका वर्णन कर दिया गया था, इस तरहसे पानीपतकी महत्त्वपूर्ण घटना या माधवराव प्रथम की देदीप्यमान जीवन-वृत्ति पूरी पूरी छूट गई थी।

इन विषयोंको अब मैंने शामिल कर लिया है और महादाजी सिन्धिया एवं नाना फड़नीस की कृतियों और चरित्रकी, तथा मराठोंके पतनके कारणोंकी जिनका वर्णन अन्तिम अध्यायमें है, विवेचना करनेमें मैंने प्रासंगिक परिवर्तन कर दिये हैं।

मेरे पाठक-गण इस बातको ध्यानमें रखेंगे कि मैंने यहां पर किसी तरहसे भी मराठोंका पूरा इतिहास लिखनेकी चेष्टा नहीं की है। मेरा अभिप्राय एक धारावाहिक रचनात्मक आलोचना प्रस्तुत करना और उस बृहत् विषयके प्रमुख अंगोंकी तर्क-पूर्ण व्याख्या करना है। ऐसा करनेमें मैंने बहुत कुछ उस शैलीका अनुसरण किया है जिसका प्रयोग सर अल्फ्रेड लायल ने अपनी जगमगाती हुई रचना, « दि ब्रिटिश डोमिनियन इन इंडिया (The British Dominion In India)» में किया है, यद्यपि मैं अपनेमें उनकी जैसी आलोचनात्मक शक्तियों अथवा सच्चे निर्णयके होनेका दावा नहीं करता। जान-बूझ कर छोटी-छोटी बातोंको छोड़कर और इस तरहसे विषय-वर्णनको बोझीला बनानेसे बचा कर, मैंने मराठा शक्तिके उद्देश्यों और लक्ष्यों, अच्छाइयों और बुराइयों, अभिप्रायों तथा सामान्य प्रकृतिकी व्याख्या करनेकी चेष्टा की है। ऐसा करनेमें, व्यक्तिगत अध्ययन और अनुभवसे मुझे जो कुछ आवश्यक जान पड़ा उसे जोड़ता गया हूँ, संशोधन करता गया हूँ और पढ़ते समय जो भी मिथ्या धारणाएं और ग़लत विचार मेरे ध्यानमें आये उन सबको दूर करता गया हूँ। इस बातका निर्णय तो पाठक-गण ही कर सकते हैं कि मैं अपनी इस योजना में, जो एक तरहसे महत्त्वाकांक्षी कही जा सकती है, कहां तक सफल हुआ हूँ। मैं सिर्फ़ इस बातका दावा कर सकता हूँ कि यहां पर व्यक्त किये गये विचार पूर्णतया मेरे अपने हैं, जैसा कि ऐतिहासिक विषयोंके किसी भी वर्णनके साथ होना लाज़मी है। इस तरहका कार्य आरम्भ करनेमें अलग-अलग विचार धाराओंके लोगोंको सन्तुष्ट करनेकी बात सोचना हस्यास्पद है। पर मैं जानता हूँ कि मैंने पक्षपातको बचाने और मराठा काल का एक पक्षपात रहित वर्णन करनेकी चेष्टा की है। यदि इतिहासकी कोई व्यावहारिक उपयोगिता होनी है, तो मेरे विचारसे, पक्षपातरहित एवं निर्भीक आलोचना, सबसे अधिक आवश्यक है, और इस सिलसिलेमें, मैं समझता हूँ कि मैंने जहां तक भारतीय इतिहासके मराठा युगका सम्बन्ध है, सारे विद्यार्थियोंकी शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करनेकी चेष्टा की है।

प्रथम संस्करणमें मैंने जो कुछ लिखा था उसे मैं नम्रतापूर्वक दुहराता हूँ—मेरा तात्पर्य है कि "मैं पटना विश्वविद्यालयके प्रति इस बातके लिए अत्यधिक आभारी हूँ

कि उसने कलकत्तेमें व्याख्यानोंका मुद्रण, मेरे व्यक्तिगत निरीक्षणमें शीघ्रता के साथ करानेका भार अपने ऊपर लिया। मैं अपने परम मित्र प्रो० सरकार को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने कृपा करके इस काममें तत्परता के साथ मेरी हर तरहसे सहायता की और इस प्रकार यह दिखा दिया कि मराठा इतिहासमें वे कितनी अधिक रुचि रखते हैं।"

जी० एस० सरदेसाई

कमशेत,
ज़िला पूना,
१ दिसम्बर, १९३३

विषय-सूची

१. महाराष्ट्र-धर्म : मराठों का आदर्श

२. महाराष्ट्र में ऐतिहासिक अनुसन्धान

३. हिन्दू-समाज के सम्बन्ध में शिवाजी की धारणा

४. शाहू और मराठों का विस्तार

५. मुसलमानों तथा मराठों के बीच होनेवाले संघर्ष का विकास

६. महादाजी सिन्धिया और नाना फड़नीस (फड़नवीस)

७. मराठा-राज्य का पतन

१

महाराष्ट्र-धर्म : मराठों का आदर्श

१. मुसलमानों का प्रभाव दक्षिणमें प्रवेश न कर सका.

महाराष्ट्रके अनेक बड़े-बड़े विद्वानोंने अपने अनुसन्धान कार्यमें जिस एक विषयके ऊपर अपना ध्यान केन्द्रित किया है वह ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे अत्यन्त महत्वपूर्ण है और मराठोंके मुख्य उद्देश्यकी ओर संकेत करता है। वह विषय है---उनकी स्वराज्य-सम्बन्धी धारणा (Conception) और उसके लिए प्रयत्न करनेमें उनका उद्देश्य। उनकी उस धारणा के अन्तर्गत ऐसे अनेक सिद्धान्त निहित थे जिनके ऊपर वे आरूढ़ रहते थे। यही (धारणा) वह मुख्य शक्ति थी जिसने उन्हें एकता के सूत्रमें बाँध रखा था, और जो न केवल कठिनाइयों और मुसीबतोंके जमानेमें उन्हें प्रोत्साहित करती रही, वरन् लगभग दो सौ वर्षों तक राष्ट्रीय उत्थानके लिए काम करनेमें उन्हें समर्थ बनाये रही। यह तो स्पष्ट ही है कि विषय बहुत बड़ा और जटिल है। उसके ऊपर अपार साहित्य और परम्पराएं मिलती हैं और लगातार एकके बाद एक मराठोंके अनेक साधुओं, उपदेशकों तथा नेताओंका उसके साथ सम्बन्ध है। पुरानी रचनाओं और रिकार्डों, तथा हालके तमाम विद्वानों द्वारा, जिन्होंने इस विषय पर विचार किया और लिखा है, उत्पादित अपार साहित्यकी सहायता से उसकी परीक्षा करना बड़ा शिक्षाप्रद (instructive) होगा। अतः सामान्य रूपसे मराठा-इतिहासकी

भूमिको साफ़ करने तथा आपके सम्मुख, इस मूल विषय पर महाराष्ट्रमें होनेवाले अध्ययन तथा अनुसन्धानके कुछ महत्वपूर्ण परिणामों और कुछ तथ्यों (facts) और विचारोंको प्रस्तुत करनेके लिए, अपने कार्यके आरम्भमें ही विवेचना के लिए उसको लेना में अपना धर्म समझता हूँ। वह प्रकांड पंडित तथा विचारक श्री एम० जी० रानाडे थे, जिन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक « मराठा शक्तिका उत्थान » में पहली बार दक्षिण में होनेवाली राष्ट्रनिर्माणकी क्रिया का वर्णन किया है तथा «महाराष्ट्र-धर्म» अथवा महाराष्ट्रके कर्तव्यको उसका मार्गदर्शक सिद्धान्त निर्धारित किया है। इस वाक्यांशके मौलिक तथा पूर्ण अर्थको जाननेके लिए सूक्ष्म परीक्षणकी आवश्यकता है, ताकि हम उस विचार-क्रम (clue) को प्राप्त कर सकें जिसके द्वारा हम यह समझ सकते हैं कि भारतकी समस्त जातियोंमें से केवल मराठे ही क्यों काफ़ी लम्बे अरसे तक एक स्वतंत्र शक्तिकी स्थापना कर सकनेमें समर्थ हो सके।

जिस अर्थमें उत्तरी भारत मुसलमानोंके अधीन था, उस अर्थमें नर्मदा के दक्षिणका भारत पूर्णरूपसे कभी मुसलमानोंके अधीन नहीं हुआ था। जयपाल और पृथ्वीराज के समयसे लेकर राना सांगा के समय तक उत्तरी भारतके हिन्दू राजा मुसलमान विजेताओंसे देशको मुक्त करनेके लिए कठोर, परन्तु व्यर्थ का संघर्ष करते आये थे। राजपूत राजा पूर्णरूपसे कुचल दिये गये; वे सम्राटोंके अनुचर बन गये; उन्होंने उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, और धर्म तथा अनुशासनके सभी मामलोंमें उनकी (सम्राटोंकी) अधीनता स्वीकार कर ली। हिन्दुओंके पवित्र स्थान भ्रष्ट कर दिये गये, उनके मंदिर तोड़ डाले गये, उनकी धार्मिक रीतियोंमें हस्तक्षेप किया गया; दूसरे स्थानोंमें पूरीकी पूरी आबादियोंको मुसलमान बना लिया गया। हिन्दू मन्दिरों, मूर्तियों, राजप्रासादों तथा संस्कृतिके प्राचीन उत्कीर्ण लेखों, और सच तो यह है कि उन सभी चीज़ोंको, जो प्रत्येक राष्ट्रकी पवित्र एवं प्रेरक निधि होती हैं, कितनी अधिक हानि पहुंची है, इस बातको समझनेके लिए उत्तरी भारतके किसी भी महत्वपूर्ण नगर को, जैसे धार और मंडूगढ़ (Dhar and Mandugad), देख लना काफ़ी है। माहिकवती (Mahikavati)—(बम्बई के निकट महिम नामक एक स्थान) के एक प्राचीन « बक्खर » (इतिहास) की खोज हुई है और वह छापी जा चुकी है। इस पुस्तकको भगवान् नन्ददत्त नामक एक लेखकने १५७८ ई० में समाप्त किया। पर उसके बहुतसे हिस्से उस तिथिसे कई शताब्दी पूर्व लिखे जा चुके थे। इसमें, १३४८ ई० में मुसलमानोंके हाथमें आ जानेके पश्चात् उत्तरी कोंकनकी दशा कितनी

अधिक बिगड़ गयी थी, इसका निम्नलिखित वर्णन दिया हुआ है। लेखक कहता है: "धर्मका पूर्णरूपसे नाश कर दिया गया था; मित्रता तथा जातिभावके बन्धन लुप्त हो गये थे; क्षत्रियगण देशकेप्रति अपनी समस्त कर्तव्य-बुद्धिको खो चुके थे। हथियारोंको त्याग कर उन्होंने कृषिको गले लगाया था। कुछने केवल बाबूगीरीका पेशा अपना लिया और बाक़ी लोग दासों तथा शूद्रोंकी हीन स्थितिको प्राप्त हुए। दूसरी ओर असंख्य लोग यमपुरीके लिए रवाना कर दिये गये। अधिकांश लोगोंने आत्म-सम्मान खो दिया और महाराष्ट्र धर्म पूर्णतया नष्ट कर दिया गया।" परन्तु, जब एक ओर उत्तरम हिन्दुओंने असहाय दशा में हिंसा तथा शक्तिके सम्मुख सिर झुका दिया था तो दूसरी ओर, दक्षिणमें, जहां अलाउद्दीन खिलजी तथा मलिक क़ाफ़ूर के आक्रमण केवल क्षणिक प्रभाव डाल सके थे, मुसलमान विजेताओंके आगे बढ़ते हुए क़दमोंको एक जबर्दस्त ठेस लगी। मुहम्मद तुग़लक़ जैसा क्रूर सुल्तान दक्षिणको जीत कर दिल्ली-सल्तनतमें शामिल न कर सका, और विद्रोही हसन बहमनी ने यद्यपि गुलबर्गा में एक स्वतंत्र राजवंशकी स्थापना की थी तथापि समस्त व्यावहारिक उद्देश्योंके लिए वह राज्य एक हिन्दू राज्य था, जिसके शासनमें मुस्लिम तत्त्वका मिश्रण केवल नामके लिए था।

शिवाजीके जन्मसे पूर्वके दो सौ वर्षों तक दक्षिणमें ऐसी शक्तियां काम करती रहीं जिनके कारण छोटे, बड़े और कम-ज्यादा असर वाले अनेक केन्द्रोंमें हिन्दुओंकी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करना सरल हो गया था। शिवाजीने तो केवल बिखरी हुई इकाइयोंको एकता के सूत्रमें बांध दिया, और चतुराईके साथ उस धार्मिक भावना का प्रयोग किया, जिसका लोकप्रिय कल्पना के ऊपर जबर्दस्त असर था। राजवाड़े (Rajwade) ने महाराष्ट्रकी इस प्रवृत्ति तथा भारतके अन्य सूबोंकी प्रवृत्तिके बीच जो अन्तर बताया है, वह ठीक ही है। वह पहली प्रवृत्तिको « जयिष्णु » (jayishnu) अथवा «विजय करना» और बादवालीको «सहिष्णु» अथवा "निष्क्रिय होकर कष्ट सहन करना" कहते हैं। महाराष्ट्रकी यह अपूर्व बुद्धि अथवा प्रवृत्ति, निश्चित रूपसे उसके संतों एवं उपदेशकोंकी वाणीमें तथा उसके योद्धाओं एवं कूटनीतिज्ञोंके कार्य-कलापोंमें भरी पड़ी है। यद्यपि मराठा संत बहुत पहलेही महाराष्ट्रधर्मके ऊपर उपदेश दे चुके थे और उसके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट कर चुके थे तथापि ऐसा समझा जाता है कि «महाराष्ट्र-धर्म» की उक्ति (expression) का प्रयोग सर्वप्रथम एक लोकप्रिय मराठी पुस्तक, « गुरु-चरित्र » अथवा "महागुरु दत्तात्रेयकी जीवनी",

जिसकी रचना पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्यमें हुई, के लेखक द्वारा किया गया। स्वर्गीय प्रो० लिमये (Prof. Limaye) जो इतिहासके एक बड़े प्रमाण माने जाते हैं, कहते हैं—"महाराष्ट्रके संतोंने जो कुछ किया वह उस नैतिक शक्तिकी उत्पत्तिके लिए किया जो मराठोंके राजनैतिक आदर्शके स्तरको ऊंचा करके उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ा सके।" इस राष्ट्रीय आन्दोलनको जन्म देने वाली दो मुख्य बातें हैं, एक तो वह राजनैतिक शक्ति है जिसका उपभोग वे जागीरदार अथवा देशमुख (जिनके विषयमें मैं आगे चलकर बताऊँगा) करते थे जो एक प्रकारसे स्वतंत्र ही थे। शिवाजीकी प्रारम्भिक जीवनवृत्तिमें वे उसके विरोधी थे। दूसरी वह नैतिक शक्ति है जो लोगोंको रामदास तथा अन्य महासंतोंसे प्राप्त हुई थी। शिवाजीके व्यक्तित्व में दोनोंका संयोग हुआ। एक बड़े मराठा सरदारके पुत्र होनेके नाते उसके पास शक्ति और प्रभाव तो थे ही, पर साथही साथ वह महात्माओंके उपदेशोंके सत्वसे भी पूर्णतया ओत-प्रोत था। उनके उच्च आदर्शोंसे प्रेरित होकर, उसने अपने जीवन-कालमें उनको प्राप्त करनेका प्रयास किया और ऐसा करनेमें, वह अपनी शक्ति एवं स्थिति दोनोंको ही खतरेमें डालनेके लिए तैयार था। शिवाजीके जीवन कार्य का महत्त्व यही है, और इसी के कारण उसकी गणना विश्वके महत्तम योद्धाओंमें की जाती है।

२. शिवाजी में देवगिरि तथा विजयनगर की परम्पराओंका मिश्रण हुआ.

आरम्भसे ही हमको यह स्मरण रखना चाहिए कि शिवाजी ने अपना राष्ट्रीय कार्य एक दमसे नहीं शुरू कर दिया था। उसके कुलके तीन पूर्वजोंमें से सभी चतुर थे, और उस राष्ट्रीय प्रवृत्तिसे ओत-प्रोत थे जो सभी मराठों में पायी जाती थी। इसके अतिरिक्त एकके बाद दूसरेमें इन चीजोंकी मात्रा बढ़ती ही गयी थी। वे सभी स्पष्ट रूपसे उन परम्पराओंसे प्रेरित जान पड़ते हैं जो उनके पास दो अलग-अलग धाराओंके रूपमें प्रवाहित होकर आयी थीं। एकका उद्गम तेरहवीं शताब्दीमें महाराष्ट्र की उत्तरी सीमा पर स्थित देवगिरिके यादवोंसे हुआ और दूसरीका सोलहवीं शताब्दीमें दक्षिणी सीमा पर स्थित विजयनगर के «रायों» से। पहली परम्परा शिवाजी की माता जीजा बाई के द्वारा आयी थी, जो खास यादव-कुलमें पैदा हुई थीं, और दूसरी उसके (शिवाजीके) पिता शाहजी द्वारा, जिन्होंने जीवन भर विजयनगर के ऐतिहासिक प्रदेशोंमें ही काम किया। वे बड़ी-बड़ी उपाधियां, जो यादव राजागण धारण करते थे,

जैसे प्रतापचक्रवर्ती, समस्तभुवनाश्रय, सम्राट्, श्रीपृथ्वी-वल्लभ, तथा उनकी राष्ट्रीय पताका जिसके ऊपर सुवर्ण-गरुड़ध्वज की प्रतिमा थी—उनके स्पष्ट चिह्न थे जो मराठों के स्मृति-पटल पर ज्योंके त्यों अंकित थे, तथा प्रत्यक्ष रूपसे उनको प्राचीन गौरव, स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता के प्रति प्रेरित करते थे। इसी प्रकार «विजयनगर के रायों» में प्रसिद्ध देव-रायने घुड़सवारीकी उन्नतिकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उनके विचारसे वह (घुड़सवारी) गुरिल्ला (guerilla) युद्धका प्रमुख अस्त्र था तथा दक्षिणके पहाड़ी और ऊंचे-नीचे प्रदेशोंके लिए विशेष रूपसे उपयुक्त भी। मुग़ल-आक्रमणोंका अवरोध करनेके लिए मलिक अम्बर तथा शाहजी ने सफलतापूर्वक उसका प्रयोग किया। बादको शिवाजी तथा उसके उत्तराधिकारियोंने बड़ी चतुराईके साथ उसका विकास किया और अपने जीवनके लक्ष्य की प्राप्ति करनेमें सफलतापूर्वक उससे काम लिया। पुराने काग़ज़ातोंमें राम-राय, जो तालीकोटके युद्धमें मारा गया, और उसकी माता के बीच, उस प्रसिद्ध युद्धमें (जनवरी, १५६५) जानेके पूर्व, जब वह अपनी सफलता के लिए उससे आशीर्वाद लेने गया था, जो वार्तालाप हुआ उसका वर्णन मिला है। राम-राय कहता है : "हमारा यह देश हमारे देवताओं, ब्राह्मणों, धर्म, दान, दया एवं उदारता का प्रिय निवासस्थान रहा है। पांच मुसलमान बादशाह मिल गये हैं और उन्होंने इसको नष्ट करनेके लिए षड्यंत्र रचा है। हे माता ! इस विपत्तिसे रक्षा करनेके लिए मुझे अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ जानेकी आज्ञा दो, ताकि में शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकूं। तुम मुझे आशीर्वाद दो।" यह वार्तालाप हिन्दू-मस्तिष्कके रुखका वर्णन करता है और दिखाता है कि शिवाजी से बहुत पहले धर्मकी प्रवृत्तिने किस प्रकार उसको दक्षिणमें मुसलमानोंके अत्याचारोंके विरुद्ध सिर उठानेकी प्रेरणा दी थी। शिवाजी ने तो बादको केवल उसी उद्देश्यसे संकेत ग्रहण किया था, जैसा कि «बक्खरों» तथा दूसरे रिकार्डोंसे सिद्ध होता है। महात्माओं के—विशेष रूपसे रामदास के उपदेशोंके प्रभावको में बादमें समझाऊंगा, इसलिए उसको यहां दोहरानेकी आवश्यकता नहीं।

विजयनगर की परम्परा का प्रभाव दूसरे ढंगसे पड़ा। उसने तरुण शिवाजी की विद्रोही प्रवृत्तिका पोषण किया। उसके पिता ने बीजापुर की सेवा में रह कर जो कार्य किये थे वे उसे (शिवाजीको) रुचिकर न थे। १७८३ ई० में नाना फड़नीस द्वारा रचित पेशवाओंके इतिहासमें लिखा है—"शाहजी ने भारतको एक मुसलमान देश बनाने तथा हिन्दू-धर्म का दमन करनेमें तुर्कों की सहायता करनेके लिए जो दुष्ट

आचरण किया वह भगवान्को भी अच्छा न लगा।" शाहजी १६३७-३९ में बीजापुरी सेनानायक रणदौलाखां (Randaula Khan) के साथ पश्चिमी कर्नाटक जीतने के लिए गये। कन्थिरायनरासा-चरितम् (Kanthirayanarasa-charitam) के लेखक गोविंद वैद्यने इस चढ़ाईके जमानेमें होनेवाले क्रूर अत्याचारोंका वर्णन इस प्रकार किया है: "रणदौलाखां और शाहजी ने इक्केरी (Ikkeri) के वीरभद्र नायकके ऊपर चढ़ाई करदी और इक्केरी को घेर लिया। वे बन्दूकों, बमगोलों और ढेलवांसों (slings) से लैस थे। उन्होंने अपनी भीषण बन्दूकें क़िलेकी मुंडेरों पर रख दीं। तुर्कों ने क़िले पर अधिकार कर लिया, स्त्रियोंको पकड़ लिया, संगमरमरकी बनी हुई देव मूर्तियोंके सिर तोड़ डाले, मंदिरों और नगरको लूट लिया, सच्चरित्र स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया और गायोंको मार डाला। महलकी सारी वस्तुओं पर हर्षपूर्वक अधिकार कर लेनेके पश्चात्, रणदौलाखां ने नगररक्षक नियुक्त किये और वह स्वयं शीघ्र ही बादशाहके दरबारको लौट आया तथा लूटकी चीजें उसे भेंट कर दीं। यह है—शिवाजी के विद्रोहके विकासकी व्याख्या।

वह प्रसिद्ध पद जिसको शिवाजो ने अपनाया, और जिसको उसके बाद उसके उत्तराधिकारी लगातार अपनी राजकीय मुद्राओं पर उत्कीर्ण कराते रहे, उसी प्रवृत्ति का एक दूसरा पुष्ट प्रमाण है। वह पद इस प्रकार है: "प्रतिपदा के चन्द्रमा की कला की तरह दिन प्रतिदिन बढ़नेवाली, तथा विश्व-वंदित शाहजी के पुत्र शिवाजी की यह मुद्रा विश्व कल्याणके लिए शोभित हो रही है।"* स्वर्गीय श्री भावे, जो एक मर्मज्ञ विद्वान् थे, इस बातका प्रतिपादन करते थे कि इस पदका प्रयोग पहले जावली (Javli) के मोरिय लोगोंने (Moreys) अपनी मुद्रा पर किया था; शिवाजी ने उसमें अपनी ओरसे कुछ उचित परिवर्तन करके उसको अपना लिया।

३. महाराष्ट्र-धर्म अथवा मराठा प्रवृत्ति किस प्रकार अंत तक मराठों को उत्तेजना प्रदान करती रही.

महाराष्ट्र-धर्म की इस वृत्तिने औरंगजेब के साथ होनेवाले दीर्घकालीन संघर्ष

* प्रतिपच्चंद्ररेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववंदिता।
शाहसूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

के जमानेमें कठोरतम परीक्षाओंके बीच जातिको केवल जीवित ही नहीं रखा, वरन् आगामी परिवर्तनों तथा बादको होनेवाले मराठा-साम्राज्यके विस्तारके समय उसका सचाईके साथ पालन भी किया गया। प्रथम चार पेशवाओंने इस बातके अनेक प्रमाण छोड़ हैं कि वे महाराष्ट्र-धर्म के इस आदर्शको सदैव अपनी आंखोंके सामने रखते थे। उत्तरमें वे जो भी कार्य करते थे उन सभीमें, तथा राजपूतों एवं अन्य जातियोंके साथ अपने व्यवहारमें साम्राज्य अथवा शक्तिके लिए वे निरन्तर उतना प्रयास नहीं करते थे जितना कि हिन्दुओंके प्रसिद्ध पवित्र स्थानोंको—जैसे प्रयाग, काशी, मथुरा, हरद्वार, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, गढ़मुक्तेश्वर आदि अन्य स्थानोंको मुसलमानोंके हाथसे मुक्त करानेके लिए। अन्तम प्रयाग और काशीको छोड़कर लगभग सभीके ऊपर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। ये दोनों स्थान तो हिन्दुओंके हाथमें फिर कभी न आ सके। एक स्मरणीय पत्रमें, जो शाहू ने अपने चचेरे भाई सम्भाजी के नाम उस समय लिखा था, जबकि सम्भा निजाम से जा मिला था, शाहू लिखता है: "यह राज्य देवताओं और ब्राह्मणोंका है। शंकर तथा देवी पार्वतीके आशीर्वादोंसे हमारे महान् तथा श्रद्धेय पूर्वज शिवाजी इसको मुसलमानोंके हाथसे बचानेमें समर्थ हो सके थे। ऐसी दशा में कितनी लज्जा की बात है कि तुमने महाराष्ट्र धर्मको त्याग दिया है और उसके शत्रुओंके यहां शरण ली है। रामदेव यादव से अपने कुलकी उत्पत्ति बताते समय हमारी छाती गर्वसे फूल उठती है, अतएव अपने कुलके विपरीत आचरण करना तुमको शोभा नहीं देता।"* शाहू का सर्वश्रेष्ठ पेशवा, बालाजी बाजीराव हिन्दुओंके लिए इस धार्मिक स्वतंत्रता की प्रवृत्ति से इतना अधिक ओतप्रोत था, कि वह १७५२ के एक पत्रमें निजाम के दर्बारमें रहनेवाले अपने एक गुमाश्तेसे उसको (निज़ाम को) इस बातकी याद दिलानेके लिए कहता है कि "हम मराठा «ग़नीम लोग» (दुश्मन) महाराज शिवाजी महान्के शिष्य हैं।" इस तरह वह उसको (निजाम को) इस बातका संकेत करता है कि भारतके विभिन्न शासकोंके साथ अपने व्यवहारमें वे (मराठे) किस प्रकार धार्मिक उद्देश्यों द्वारा उत्तेजित होते थे, तथा वे किस प्रकार उस कार्यको पूरा करनेका प्रयास कर रहे थे जिसका आरम्भ शिवाजी के करकमलोंसे हुआ था।

अट्ठारहवीं शतीके अन्तिम दशक तक प्रसिद्ध मराठा कूटनीतिज्ञ गोविन्दराव काले,

* चिटनिस द्वारा रचित शाहूकी जीवनी देखो पृष्ठ ५४-५६।

जो हैदराबादके दर्बारमें बहुत दिनों तक रह चुके थे, नाना फड़नीस को इस प्रकार लिखते हैं और दिल्लीमें सम्राट्के मामलोंकी व्यवस्था तथा मराठा-नीति के उद्देश्योंकी पूर्ति करनेके सम्बन्धमें महादजी सिन्धिया को प्राप्त होनेवाली महत्वपूर्ण सफलताओं के लिए मराठा सरकारको बधाई देते हैं। गोविन्दराव काले के पत्र तथा सन्देश कई खंडोंमें छापे जा चुके हैं। उनसे यह विदित होता है कि वह बड़े योग्य और उच्च सिद्धान्तोंवाले व्यक्ति थे तथा तत्कालीन मराठा आदर्शोंसे पूर्णतया प्रभावित थे। आपको इस बातका ठीक-ठीक ज्ञान करानेके लिए कि उन दिनों मराठे क्या अनुभव करते थे और किस विषयके ऊपर बात किया करते थे, मैं यहां पर पूरा पत्र उद्धृत करूंगा: "यदि आपका वह अत्यन्त प्रेरक पत्र पढ़कर, जिसमें दिल्लीमें महादजी सिन्धिया द्वारा प्राप्त किये जानेवाले महान् गौरवका वर्णन दिया गया है, मैंने जो कुछ अनुभव किया उसको में पर्याप्त रूपसे व्यक्त कर सकता तो मुझे न जाने कितनी पुस्तकें लिखनी पड़ जातीं। तो भी मैं अपने उत्साहको नहीं दबा सकता, और साधारण सीमा को पार करनेका साहस करके अपने मस्तिष्कके कुछ एक मुख्य विचारोंको लिखकर प्रकट कर रहा हूं। हर एक मद (item) के लिए अलग-अलग बधाई देनेको जी चाहता है। भारत (उत्तरमें) सिन्धु नदीसे लेकर (दक्षिणमें) दक्षिणी महासागर तक फैला है; सिन्धु नदीके पार तुर्किस्तान आ जाता है; महाभारत-कालसे भारतकी ये सीमाएँ हिन्दुओंके नियंत्रणमें रही हैं। परन्तु बादके कतिपय हिन्दू राजाओंने अपना प्राचीन पौरुष खो दिया और यवनोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। फलस्वरूप वे (यवन) शक्तिशाली हो गये। चग़ताइयोंने (Chagtais) दिल्ली पर अधिकार जमा लिया; महान् सम्राट् आलमगीर के शासन-काल में उच्चतम बिन्दु आ पहुंचा। प्रत्येक जनेऊधारी हिन्दूसे ३ रु० ८ आ० जज़िया के रूपमें वसूल किया जाने लगा: «पक्का» अथवा पका हुआ खाना दूकानोंमें बिकनेके लिए भेजा जाने लगा, और लोगोंको उसे खरीदनेके लिए बाध्य किया जाने लगा। इन अत्याचारोंके फलस्वरूप प्रतिक्रिया हुई। ऐसे समयमें हिन्दूधर्मकी रक्षा करनेके लिए देशके एक कोनेमें युगनिर्माता शिवाजी का उत्कर्ष हुआ। उसके बाद ही पेशवा बालाजीराव तथा भाऊसाहब जैसे तारागणका उदय हुआ जिन्होंने समस्त भारतको नवीन प्रकाश तथा आशा प्रदान की। इस प्रवृत्ति ने बादको महादजी सिन्धिया के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव डाला कि वह अपने पूर्वजों की आकांक्षाको पूर्ण करने में समर्थ हुआ। यदि हमारे यहां मुसलमानों की

तरह «इतिहास» लेखक होते, तो वे महादजी की विजयों पर कई किताबें लिख डालते, क्योंकि वे राई को पर्वत बनानेकी कला में बड़े दक्ष हैं। हम हिन्दुओं का स्वभाव बिल्कुल इसका उल्टा है। हम असाधारण कामोंके बारेमें भी अपना मुंह नहीं खोलते। सचमुच असम्भवको सम्भव कर दिखाया गया है। पटिलू बोआ (महादजी) ने उन्हींका सिर तोड़ा जिन्होंने उसको (सिरको) उठानेकी चेष्टा की। सभी उनका अनभला चेतते थे, पर उन्होंने निर्भीकता के साथ अपने लक्ष्यको पूर्ण किया। निश्चय ही शिवाजी के आदर्श पर इस विजयका इच्छित फल होगा। ईश्वर करे, इस कीर्तिमय परिणामको कोई अपनी कुदृष्टिसे कलंकित न कर सके। इस विजय से न केवल राज्यों तथा नये-नये प्रदेशोंकी प्राप्ति हुई है, वरन् वेदों और शास्त्रोंकी रक्षा हुई है, धर्म और हस्तक्षेपरहित उपासना की नींव पड़ी है, गाय और ब्राह्मण सुरक्षित हो गये हैं। वास्तवमें मराठोंकी छोटे अर्धस्वतंत्र राज्यों पर शासन करने की यह राजकीय शक्ति, यह कीर्ति तथा गौरव, सभी अब प्राप्त हो गये हैं तथा उच्चतम स्वरोंमें जगत्के सामने घोषित कर दिये गये हैं। इस ऐश्वर्य की रक्षा करना आप तथा पटिल-बोआ के लिए गौरवकी बात होगी। इस कार्य में आप किसी प्रकारकी शिथिलता न दिखायें। भारतके ऊपर हमारे प्रभुत्वके विषय में होनेवाले सारे संदेह दूर हो गये। अब लाहौर के मैदानोंमें मराठों की विशाल सेनाएं तैनात कर दी जानी चाहिए, क्योंकि वहां पर ऐसे असंख्य कुकर्मी हैं, जिनको हमारी विपत्तियोंमें आनन्द आता है और जो हमारा पतन कराने की चेष्टा करते रहते हैं।" बेचारे गोविन्दराव ने समुद्रके ज़रिये पश्चिमसे आनेवाले नये खतरेका अनुमान न कर पाया।

मैंने जान-बूझकर इस लम्बे पत्रको उद्धृत किया है जिसकी तिथि २ जुलाई, १७९२ अर्थात् अंग्रेजोंके हाथमें मराठोंकी राजकीय शक्तिके हस्तान्तरित होनेसे ठीक दस वर्ष पूर्व है। नाना फड़नीस के कई एक पत्र मिले हैं जो उन्होंने महादजी सिन्धिया के नाम लिखे थे। उन पत्रोंमें नाना ने महादजी सिन्धिया को बार-बार ज़ोर देते हुए लिखा था कि वह सम्राट् से कहकर हिन्दुओंके तीर्थस्थानोंको मुसलमानों के नियंत्रणसे मुक्त कराकर उन्हें (हिन्दुओं को) दिला दें तथा पूरे भारतवर्षमें गोवध का निषेध करानेके लिए सम्राट्से एक ऐसा स्पष्ट आदेशपत्र प्राप्त कर लें जो सब जगह प्रसारित कर दिया जाय। इस प्रकारका आदेश प्राप्त कर लिया गया था और बड़े समारोहके साथ वह पूना में घुमाया गया था। पर्याप्त मात्रा में न केवल इस बात

के स्पष्ट कर देने के पश्चात् कि उस समय भी जबकि उनका (मरहठों का) पतन निकट था, जैसा हम आज जानते हैं, मराठों के मस्तिष्कमें उच्च आदर्श किस प्रकार निरंतर लहरा रहे थे, वरन् उनकी आत्माएं भी कितनी ऊंची थीं, इस विषय पर मुझे कुछ और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

४. महाराष्ट्र-धर्म के अर्थ.

मैं यहां पर इस बातकी विवेचना नहीं कर रहा हूँ कि महाराष्ट्र-धर्म का यह आदर्श कहां तक ठीक था और कहां तक ग़लत, और न ही इस बातकी कि आगे चलकर पूरे भारतको इससे लाभ हुआ अथवा हानि। इस बातकी विवेचना मैं आगे चलकर करूंगा। मैं सिर्फ़ इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि अनेक लेखकों ने, जातिके स्वभाव तथा कार्य और साथ ही उनके साहित्य एवं इतिहासके ज़रिये इस मराठा आदर्श को समझने तथा ढूंढ़ लेने की क्षमता के अभावके इतिहासको उसी प्रकार छोड़ दिया है जिस प्रकार प्राचीन ग्रीक संस्कृतिको, जो यूनानियों को उनके राष्ट्रीय प्रसारके लिए उत्तेजना प्रदान करनेवाली बतायी जाती है। रानाडे के समय से महाराष्ट्रके बड़े-बड़े पंडितोंने इस विषयकी विवेचना करनेके लिए अपनी शक्ति लगायी है, और समय-समय पर नये-नये प्रमाण देकर इस महान् लक्ष्यके अस्तित्वको, जिसके विषय में मैं यहां केवल एक रूपरेखा ही प्रस्तुत कर पाया हूँ, सिद्ध किया है। महाराष्ट्र में प्राप्त सामग्रियोंका अध्ययन तथा उनकी विवेचना इतनी बार और इतनी गम्भीरता के साथ की गयी है कि मैं मराठा-इतिहास के ऊपर कहते समय इस सर्वव्यापी विषयको छोड़ न पाया। «राधा-माधवविलास चम्पू», «महिकावती बक्खर», «शिव-भारत», «परनाला-पर्वत-ग्रहण-आख्यान», «तालीकोट बक्खर», «शाकवालिस», रामचन्द्र अमात्य की «राजनीति», शिवाजी तथा उनके पूर्वजोंके ख़त और काग़ज़ात, पुराने भाटों और महात्माओंके गाने तथा मराठों और मराठों से पहलेके समयमें, मन्दिरों और ब्राह्मणोंको दिये जानेवाले दानोंके विषयमें उत्कीर्ण लेख और दस्तावेज़—इन सभी की संख्या एवं महत्त्वमें दिन प्रति-दिन वृद्धि होती जा रही है। साथ ही हमको इस बातके प्रमाण मिलते जा रहे हैं कि लोगोंके मस्तिष्कमें महाराष्ट्र-धर्म की इस धार्मिक प्रवृत्तिका अस्तित्व बहुत काल तक रहा। शाहजी कवियों तथा साहित्यके संरक्षक थे। उनके उपजीवियोंमें से, जयराम और परमानन्द ने अनेक पुस्तकें लिखी

जिनकी खोज हाल ही में हुई है। ये पुस्तकें छप गयी हैं तथा इस योग्य हैं कि सावधानी के साथ उनका अध्ययन किया जाय।

राजवाड़े कहते हैं: "महाराष्ट्रमें जन्म लेने वाले महाराष्ट्र लोग—मराष्ट्र कहलाते हैं। उसको बिगाड़ कर मराठा शब्द बना है। जिस देशमें महाराष्ट्रिक निवास करते थे वह महाराष्ट्र कहलाने लगा। ब्राह्मणोंसे लेकर «अन्त्यज» (Antyajas) लोगों तककी सभी हिन्दू जातियां विस्तृत रूपमें मराष्ट्र अथवा मराठा नामसे पुकारी जाने लगीं। इन मराठोंका धर्म विस्तृत रूपमें महाराष्ट्र-धर्म के नामसे पुकारा जाने लगा। उसमें चार तत्व हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) देवताओंके प्रति व्यवहार और शास्त्रोंके मंत्र (देवशास्त्राचार), (२) स्थानीय व्यवहार (देशाचार), (३) परिवार-सम्बन्धी व्यवहार (कुलाचार) और (४) जाति-व्यवहार (जात्याचार)। महाराष्ट्रके निवासी इन सबका पालन करनेके लिए बाध्य थे।" जस्टिस रानाडे कहते हैं: "इस देशकी आम जनता को प्रेरित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में मजबूत शक्ति यदि कोई है तो वह है उनके धार्मिक विश्वास के प्रति अपील। पिछले ३०० वर्षोंमें पूरा भारतवर्ष मुसलमानोंके युद्ध-प्रधान धर्मके संपर्कमें आनेके कारण प्रत्यक्ष रूपसे गतिशील हो उठा था और सभी जगह, विशेष रूप से महाराष्ट्रमें, एक विशिष्ट प्रकारकी क्रिया और प्रतिक्रिया का चक्र चल पड़ा था।" मैं यहां पर इस समस्या की छोटी-छोटी बातोंमें नहीं पड़ सकता, क्योंकि उसके लिए धैर्यपूर्ण तथा मौलिक अध्ययनकी आवश्यकता है, और उसको केवल अनुवादोंके जरियेसे समझना कठिन है। किन्तु मराठा इतिहासको ठीकसे समझनेके लिए, सभी स्रोतोंको मौलिक रूपमें पढ़ना और उनके ऊपर सन्तुलित मनसे विचार करना परम आवश्यक है।

५. इस मराठा आदर्शके कुप्रभाव.

मैं स्पष्ट शब्दोंमें कह देना चाहता हूं कि महाराष्ट्र धर्मका यह आदर्श आरम्भमें राष्ट्रीय रुचियोंकी प्राप्तिमें चाहे कितना ही उपयोगी क्यों न रहा हो, पर मुझे तो यह किसी प्रकार स्वास्थ्यप्रद नहीं जान पड़ता। इसका सबसे बड़ा दोष यह था कि इसने मराठोंको आलसी और उन्नति-पथसे विमुख बना दिया। राज्यका अर्थ है उन्नति। और जब तक आनेवाले समयकी परिवर्तनशील आवश्यकताओंके अनुरूप परिवर्तन

करनेका प्रबन्ध न हो, तब तक कोई भी शक्ति अधिक दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। मराठोंका यह आध्यात्मिक आदर्श प्राय: अव्यावहारिक होता था, जिसके फलस्वरूप व्यवहार-रूपमें यह एक नियम बन गया था जिसका अर्थ था: "हमें पुरानी बातें कदापि नहीं बदलनी चाहिए, और नई बातें कदापि नहीं ग्रहण करनी चाहिए।" शाहू ने ४० वर्ष तक इसी सिद्धान्तके अनुसार काम किया और अपनी मृत्युके समय पेशवा लोगोंके हाथमें शक्तिको हस्तांतरित करते समय इसको एक शर्त बनाया। यह देख कर दु:ख होता है कि अभी तक भारतीयलोग प्राचीन अव्यावहारिक शास्त्रों तथा उनके मंत्रोंको किस प्रकार गलेसे लगा कर बैठे हैं—जैसे अस्पृश्यता के मामलेमें—यद्यपि वे हमारी वर्तमान परिस्थितिके लिए अनुपयुक्त सिद्ध हो चुके हैं। हिन्दुओंके सभी व्यावहारिक मामलोंमें, जीवनका प्रत्येक विषय धर्म पर आधारित है। हम जो कुछ करते होते हैं उसका समर्थन करनेके लिए, चाहे अवसर हो या न हो, गर्वके साथ स्मृतियों एवं शास्त्रोंको उद्धृत कर बैठते हैं। इस रूढ़िवादिता के कारण, अपने विधान में नवीन विधियों तथा कार्य करनेकी नई रीतियोंका आरम्भ करनेके लिए, मराठे न तो पश्चिमी देशोंकी यात्रा से नई शिक्षा तथा नये विचार ग्रहण कर पाये, और न ही उन्होंने अपन आदमियोंको विज्ञान तथा पश्चिमी युद्धकला में प्रशिक्षित किया। मराठा शक्ति पर इसका क्या प्रभाव पड़ा, यह मैं बादमें बताऊंगा। इस समय मेरा इतना ही बता देना काफ़ी है कि महाराष्ट्र-धर्मके इस अन्तर्निहित ऐक्य सिद्धान्तका पता न लगा पानेके कारण किस प्रकार अनेक लेखकोंने मराठा-शासनका वर्णन केवल उपद्रव, लूट-मार, नष्ट करने तथा किसीके साथ भलाई न करनेकी जन्मदत्त प्रवृत्तिके विस्फोटों (outbursts) के रूपमें किया है। इस भ्रमात्मक धारणा ने मराठा-इतिहासको अत्यधिक दूषित कर दिया है और उसका शोधन करना आवश्यक हो गया है।

६. पवित्र नदियोंके किनारे मराठा प्रभावके प्रत्यक्ष चिह्न.

महाराष्ट्र-धर्मके इस आदर्शमें मराठा शासनके परिणामोंकी खोज करना तथा जनता की सामान्य प्रकृतिसे उसकी परीक्षा करना एक मनोरंजनका विषय है। मराठे जो कुछ छोड़ गये हैं उसमें ताजमहल अथवा कुतुबमीनार की आशा करना व्यर्थ है। निश्चय ही हम जानते हैं कि उनके पास वह अवकाश, शान्ति एवं धन कभी नहीं

रहा जो इस प्रकारके निर्माण-कार्योंके लिए आवश्यक होता है। किन्तु यदि उनके पास ये सारी चीजें होतीं तब भी, मेरी रायमें, इस ओर उनका झुकाव ही न था। अपने देशकी मिट्टी तथा इतिहासके प्रभावसे मराठा जातिके लोग कर्कश, मजबूत, हृष्ट-पुष्ट, बुद्धिमान्, व्यावहारिक तथा दृढ़ता के साथ अपनी बातको स्वीकार करानेवाले बन गये थे। उनके मनमें जीवन और कर्मके प्रति उपयोगिता की उत्तेजना थी। वे धैर्यवान्, परिश्रमी तथा ज्ञान और अध्ययनके मर्मज्ञ, शूर-वीर, मितव्ययी, और स्वभावसे विचारवान् थे, परन्तु भावमय अथवा दिखावटी आदर्शवादी न थे। वे जो कुछ भी सोचते या पूरा करते, सभीमें उनकी आंख सदैव व्यावहारिक रुचियों तथा जीवनकी सुविधाओंके ऊपर लगी रहती थी। इस प्रकारके स्वभावसे और उनकी धार्मिक प्रवृत्तिसे, जिसके विषयमें पहले ही संकेत किया जा चुका है, कोई जो कुछ भी आशा कर सकता है, वह सब निस्सन्देह दक्षिण तथा अन्य स्थानोंमें बहुतायत के साथ दिखायी देता है। जहां कहीं भी मराठोंका प्रभाव बढ़ा वहां उन्होंने मन्दिर, नदियों, तालाबों और कुओं पर नहानेके घाट, दीवारें और क़िले, सुरक्षा तथा सुविधा के लिए बनाये जानेवाले रहने योग्य महल, सरायें और पहाड़ी रास्ते बनवाये। साधारणत: मंदिरों और उनके पड़ोसकी जगहोंमें पाठशालाएं लगती थीं, जहां वेद और शास्त्र पढ़ाये जाते थे। उनका खर्च चलानेके लिए भूमि अथवा नक़द रुपया दिया जाता था, जो «अन्न-छत्रास» (Anna-chhatras) कहलाता था।

मराठा इमारतें किसी तरहसे दिखावटी नहीं हैं। ध्यानसे परीक्षण करने पर पता चलता है कि उनके भावोंमें निपुणता है और सम्पादनमें सौंदर्य। पत्थरोंको काट-काट कर मूर्तियां बनानेके लिए गडकी नदीसे बड़े काले पत्थर दक्षिणमें विशेष रूपसे लाये जाते थे। उनमेंसे कुछ मूर्तियां तो वास्तवमें कला-कौशल के अद्भुत नमूने हैं। इनमेंसे अधिकांश मंदिर और मूर्तियां रास्तेसे हट कर, रेलवेसे दूर पायी जाती हैं, और आजकलके सूचना देकर चलने वाले यात्रियों (टूरिस्ट) में से शायद ही किसीका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ हो। लगभग ३० वर्ष पूर्व स्वर्गीय रावबहादुर साने को, जो शिक्षा-सेवा में कार्य करने वाले एक मराठा अफ़सर थे और स्थानोंको देखनेके लिए आये दिन यात्रा किया करते थे, बम्बई हातेके पूना और कोलाबा जिलोंके लगभग हर एक गांव को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। निरीक्षण-प्रेमी होनेके कारण उन्होंने डायरीके रूपमें पूरा लेखा लिख लिया। उसमें उन्होंने वे सारी ही विशेष बातें लिखीं जो उन

की नज़रके सामने आयीं। इन डायरियोंसे किये गये संग्रहों में, जो हालमें प्रकाशित* हुए हैं, प्राचीन मराठा शासनके चिह्नोंका अमूल्य तथा रोचक विवरण दिया है। साथ ही उनसे निश्चित रूपसे यह सिद्ध होता है कि चाहे कुछ भी हो, वह शासन उतना निष्फल नहीं था जितना कि सामान्य रूपसे माना जाता है। प्राय: हर जगह जल पहुँचानेके प्रधान कार्यालय, मंदिर, तालाब, प्रतिमाएं, महल और दुर्ग अनेक सरदारों और जागीरदारों के ही बनवाये हुए मिलते हैं। ये लोग भारतके सुदूर भागोंमें नौकरी करते थे, पर उनकी घरेलू राजधानी एक प्रकारसे दक्षिणमें थी। सिंधिया लोगोंका जम्ब गांव (Jambgaum), होल्करोंके वफ़गांव और चंदवद (Wafgaum & Chandwad), गायकवाड़ लोगोंके दावदी और निम्बगांव (Davdi & Nimb-gaum), मराठों द्वारा निर्मित अनेक प्रकारकी उन इमारतोंके केवल थोड़ेसे नमूने हैं जो आज देशमें पायी जाती हैं। नासिकमें पेशवाओंका पुराना महल, जो इस समय ज़िला-अदालतके अधिकार में है, वास्तवमें एक ऐसा स्मारक है जो कला का एक सुन्दर नमूना कहा जा सकता है। पर्वतकी चोटी पर बना हुआ जेजुरी (Jejuri) का मंदिर विशाल एवं सुन्दर है। इसका निर्माण बाजीराव द्वितीय ने करवाया था। वहां के मंदिर तथा घाटों तक जानेके रास्ते बड़े अच्छे बने हैं और उनको देखनेसे बनानेवालोंकी सावधानी एवं कुशलता का परिचय मिलता है। उसीके पास भूलेश्वर (Bhuleswar) का मंदिर भी एक सुन्दर इमारत है। कटराज (Katraj Tank), जहां से पूना नगरको पानी पहुँचाया जाता था, पेशवा बाजीराव द्वितीय द्वारा बनवाया गया था। पंढरपुर, थेउर, चिचवाद, अलंदी तथा गंगापुरके मंदिर एवं प्रतिमाएं वास्तवमें पेशवाओं द्वारा निर्मित-भवनों के उत्तम नमूने हैं। पत्थरकी मूर्तियोंका कौशल तथा परिमाण (proportion) तो वास्तवमें अवर्णनीय है। पिम्पलनेरमें भीमका घाट, पावलमें मस्तानीका छोटा परन्तु खूबसूरत मक़बरा, चासमें सोमेश्वरका मंदिर, करंजगांव और वेरलका मंदिर और तालाब, नरसिंहपुरमें विट्ठल शिवदेवका बनवाया हुआ लक्ष्मी-नरसिंहका मन्दिर, मोरगांवका मन्दिर तथा धर्म-शालाएं, बिवल्कारों द्वारा निर्मित उरनका विष्णु मन्दिर—ये सब तथा इसी प्रकारकी बहुत सी दूसरी इमारतोंकी ओर यदि जनता का ध्यान उचित रीतिसे आकर्षित किया

* विविध ज्ञान-विस्तार (Vividha-Dnana-Vistar) फ़रवरी, १९१५—अगस्त, १९२०।

जाय, तो निश्चिय ही यह सिद्ध हो जायगा कि मराठे कलात्मक कौशल, अथवा सौंदर्य-बुद्धि से पूर्णतया रहित न थे; और न ही उनका शासन उतना निष्फल था जितना कि बहुतोंने अनजानमें मान लिया है।

लेकिन कोरा ऐश्वर्य, बर्बादी और फ़िज़ूलखर्ची उनके स्वभावमें न थी; मन्दिरों, नदियों, पानी और निवास-स्थान की सुविधाओं, पहाड़ी रास्तों और घाटों, बड़े-बड़े और सुविधाजनक मकानोंकी ओर—जिनका निर्माण दिखावके लिए नहीं, प्रयोगमें लाने और रक्षा करनेके लिए किया गया था—मरहठा शासकोंने पूरा ध्यान दिया, अतः उनके ऊपर इस बातका दोषारोषण नहीं किया जा सकता कि उन्होंने वास्तविक सार्वजनिक उपयोगिता के कार्योंकी उपेक्षा की। उत्तरी भारतमें भी जहाँ कहीं मराठोंका प्रभाव रहा वहाँ मराठा भवनोंकी यह प्रवृत्ति पर्याप्त रूपमें दिखायी पड़ती है। इसकी परीक्षा एवं अध्ययन आवश्यक है। तथ्य यह है कि सामान्य रूपसे मनमें यह अंकित हो जानेके कारण कि मराठ केवल तोड़-फोड़ करनेवाले और लुटेरे थे, किसीने मराठा-कालमें बनवाये हुए स्मारकोंका, जो दिखावटी न होते हुए भी प्रभावोत्पादक और सुन्दर भी हैं, बहुधा अनुसन्धान करने और उनके ऊपर प्रकाश डालनेकी परवा ही नहीं की। अभी तक ऊपर बताये हुए केवल दो ज़िलोंमें स्थूल-रूपसे अन्वेषण किया गया है। महाराष्ट्रके दूसरे जिलोंमें तथा सुदूरवर्ती स्थानोंमें भी इसी प्रकारका अन्वेषण किया जाना चाहिए और छात्रों तथा विद्वानोंके उपयोगके लिए सभी प्राप्य पत्र (papers), वस्तुएँ तथा ऐतिहासिक रुचिके चिह्न प्रकाशमें लाये जाने चाहिए। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकता हूँ कि मराठा कार्यकलाप (activity) के सभी महत्त्वपूर्ण केन्द्रोंमें ढेरके ढेर काग़ज़ात और अत्यन्त लाभदायक सामग्री अब भी मिल सकती है, जो ऐसे उत्साहपूर्ण कार्य-कर्त्ताओं तथा धनी प्रकाशकों द्वारा किये जाने वाले अन्वेषण एवं सहानुभूतिपूर्ण प्रबन्धकी राह देख रही है, जिनको हमारे ऐतिहासिक अतीत की चिन्ता है। वाईके राष्टे (Rastes), मिराज और सांगलीके पटवर्धन, औंध और कर्हदके प्रतिनिधि, शृंगारपुर के सर्वे, शिर्के, जाधव, मोरे, जेधे, निम्बलकर और घोरपडे—सभीके अपने-अपने कार्य एवं प्रभावके केन्द्र थे, जो इन ऐतिहासिक परिवारों की छोटी-छोटी राजधानियाँ कहे जा सकते हैं। उनमें उन्होंने २०० वर्षोंसे अधिक समय तक अपना ध्यान, धन और परिश्रम केन्द्रित रखा।

अपनी अनेक सहायक नदियों सहित गोदावरी तथा कृष्णा—दोनों पवित्र नदियोंकी भव्य और उपजाऊ घाटियोंमें न केवल अनुसन्धान एवं संग्रहके लिए अत्यधिक

सामग्री मिल जाती है, वरंन् वहां पर राष्ट्रीय ऐतिहासिक धारणा पर आधारित लाभ-दायक चित्रोंसे युक्त मार्ग-दर्शक पुस्तिकाओं अथवा अलबमों (album) के प्रकाशन के लिए भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो जाती है। गोदावरी त्रियम्बकसे निकलती है, जो एक पहाड़ी स्थान है जहां पेशवागण तथा बड़े घरानों के लोग तीर्थ-यात्रा के लिए अक्सर जाया करते थे। नीचेकी ओर कुछ मीलोंकी दूरी पर दो स्थान हैं, जो दो ऐतिहासिक नारियोंके निवास-स्थान होनेके कारण पवित्र माने जाते हैं। एक तो है आनन्द-वल्ली जो प्रसिद्ध राघोबाकी पत्नी आनन्दी बाई का निवास-स्थान था और दूसरा है गंगापुर—गोपिका बाई का निवासस्थान। गोपिका बाई पेशवा बाजीराव की पत्नी तथा इतिहासमें तीन प्रसिद्ध कुशाग्रबुद्धि परन्तु अभागे पुत्रोंकी माता थीं। सबसे बड़ा पुत्र विश्वास राव पानीपत में मारा गया; उससे छोटा भाई माधव राव, महत्त्वपूर्ण सफलताओंसे पूर्ण, ११ वर्ष के उत्तम शासनके पश्चात् २८ वर्षकी अल्पायु में क्षय रोगसे मर गया; और तीसरा, नारायण राव जो सबसे छोटा था, अपने चाचा द्वारा मरवा डाला गया। कहते हैं कि सबसे छोटे लड़के के मरने पर उनकी माता गोपिका बाई को इतना अधिक दु:ख हुआ कि वे गंगापुरमें बने हुए अपने विशाल निवासस्थानको छोड़कर नासिक के सामने पंचवटीकी एक कुटिया में रहने लगीं और दर-दर भीख मांग कर अपना पेट पालने लगीं। नदीके नीचे नासिक और पंचवटी स्थित हैं, जिनके बारेमें लोग पहलेसे ही अच्छी तरह जानते हैं। और नीचे हट कर सांगवी, कोपरगांव और कच्छेश्वर आदि स्थान हैं जहां बादके पेशवाओंके स्मारक भरे पड़े हैं। मुझे विश्वास है कि पुन्ताम्बे, नवासे, कैगांव और टोक, शिवगांव, पिथान, राक्षसभुवन, शाहगढ़, पथरी, नन्देद, ब्रह्मेश्वर तथा इस महानदीके किनारे पर और नीचेकी ओर बसे हुए अन्य बहुत-से स्थानोंमें यदि प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकोंका पूर्ण-तया निरीक्षण किया जाय और चित्र खींच कर प्रकाशित किये जांय तो बड़ा लाभ हो। हमारी जातिमें ही यात्रा और निरीक्षणकी उस प्रवृत्तिका अभाव है जो पश्चिम में पाई जाती है जिसके अनेक परिणाम हैं और जिसने राष्ट्रीय रुचिके असंख्य विषय उत्पन्न कर दिये हैं।

कृष्णा नदी, जो महाबलेश्वर से निकलती है, अनुसन्धान एवं सक्रिय रुचिके लिए और भी अधिक लाभदायक क्षेत्र प्रदान करती है। और नीचेकी ओर, धोम, मीना-वली, बाई, महूली, कर्हद, सांगली, मिराज, कुरुन्दवद, वादी तथा अन्य सभी स्थानों का अनुसन्धान सक्रिय तथा नियमित कार्यक्रमके द्वारा किया जाना चाहिए। यहां पर

मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं भीमा, नीरा और अन्य छोटी-छोटी नदियों का तथा ताप्ती, नर्मदा और चम्बल की विशाल एवं अधिक विस्तृत घाटियोंका ज़िक्र कर सकूं। मराठा जातिने अपनी अपूर्व बुद्धिके कारनामे नदियोंके किनारे और पहाड़ोंके बीच म दिखाये हैं, इसलिए यदि हम प्रमाणित तत्वोंके आधार पर अपने ऐतिहासिक अतीत का निर्माण करना चाहते हैं तो इन सब की छानबीन पूरी तरहसे की जानी चाहिए। महाराष्ट्रके बाहर—उत्तरी और दक्षिणी भारतमें भी इसी प्रकारके अनुसन्धानकी आवश्यकता है, विशेष रूपसे उन स्थानोंमें जहां मराठोंका प्रभाव पक्के तौरसे जम गया था। धार, देवास, इंदौर, उज्जैन, झांसी, सौगर, ग्वालियर, बांदा, मथुरा, बिठूर, बनारस, नागपुर और दूसरी जगहोंमें, और इसी तरह की दक्षिणकी अनेक जगहोंमें मराठोंके प्रभाव तथा उनके द्वारा प्रदान की हुई संस्कृतिके बहुसंख्यक चिह्न हैं। यदि उनका विशेष अध्ययन करनेके लिए परिश्रम किया जाय तो बड़ा लाभकारी होगा। मैं इसलिए ऐसा कहता हूं कि मैं छात्रोंका ध्यान विशेष रूपसे उन दिशाओं की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जिनमें अनुसन्धान कार्य किया जा सकता है और अभी करना बाक़ी है।*

महाराष्ट्रमें अनुसन्धानका इस प्रकारका नियमित कार्य-क्रम सर्वप्रथम राजवाड़े ने आरम्भ किया था। निर्धन, परन्तु अनुरक्त (devoted) कार्यकर्ताओंके एक दल न इस कामको जारी रखा। उनकी यात्राएं तथा अनुभव पूना के बी० आई० एस० मंडलकी वार्षिक पत्रिका में छप चुके हैं जिनमें ऐतिहासिक स्थानों, प्राचीन स्मारकों, घरेलू कथा-कहानियों, ग्रामीण गीतों, पुराने लेखकों और भाटोंकी विस्मृत कविताओं तथा अतीतके दूसरे चिह्नोंके विस्तृत वर्णन मिलते हैं। व्यस्त दैनिक जीवनके बीच हमारे छात्रोंको उतना अवकाश तथा धैर्य प्रायः नहीं मिल पाता जितना इस प्रकारके सचेत अध्ययनके लिए आवश्यक है। फिर भी यह देख कर कि वर्तमान समयमें भारतके सुदूरवर्ती भागोंमें अनेक उत्साही कार्यकर्ता प्राप्य साधनोंका सूक्ष्म अध्ययन और उनकी सहायता से सच्चे इतिहासका निर्माण करनेमें तल्लीनता

* हालमें ऐसे तमाम संगठनों द्वारा इस दिशा में प्रयास किया जा रहा है, जिनका उद्देश्य है बाहरके स्थानोंमें, जो वृहत्तर महाराष्ट्र कहलाते हैं, निवास करनेवाली मराठा जातियोंमें परस्पर स्नेह भाव पैदा करना और इस तरहसे हमारे इतिहास एवं साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विषयोंके बारेमें मिलनेवाली लाभदायक सूचना की मात्रा में वृद्धि करना।

के साथ लगे हुए हैं---एतिहासिक अनुसन्धानके लिए निश्चय ही आशातीत चिह्न दिखायी पड़ते हैं।

७. मराठा-साहित्य एवं समाज पर इस राजनैतिक आदर्शका प्रभाव.

चाहे कुछ भी हो, महाराष्ट्रमें होनेवाले वर्तमान अनुसन्धान कार्यके सम्बन्धमें इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि मराठोंका इस बात पर गर्व करना उचित है कि उनके पास छपे हुए «बक्खर» अथवा इतिहास, व्यक्तिगत और सार्वजनिक पत्र, सूचना रिपोर्टें, हिसाब किताब, सरकारी दस्तावेज, सनदें और निर्णय, संधियां, वंशावलियां, रोजनामचे और लिखी हुई ऐतिहासिक बातें तथा और न जाने कितनी तरहकी ऐतिहासिक सामग्री है। शायद भारतकी किसी भी जातिके पास उस अनुपात में अथवा उतने प्रकारकी ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती। उनका स्वरूप भी भारत के अन्य भागोंकी ऐतिहासिक सामग्रीसे भिन्न है। इन सब कागजातोंमें पत्र ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे सबसे अधिक महत्त्वपूण है। चूंकि उनकी संख्या बहुत अधिक है, इसलिए हम उनकी सहायता से मराठा-इतिहास में घटित होनेवाली सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओंका एक सम्बन्धित विवरण तैयार कर सकते हैं और लगभग हर बार विभिन्न दृष्टिकोणोंसे। चूंकि भाषा लोगोंके वास्तविक जीवन और व्यवसायकी बाहरी अभिव्यक्ति मात्र है, अतएव जब शिवाजी ने फ़ारसीको हटा कर मराठी भाषा को अपने दरबारकी भाषा का पद दिया तबसे मराठोंके कार्यकलापके फैलावके साथ-साथ मराठी-साहित्य की भी वृद्धि हुई। शिवाजी के समयसे स्थल-सेना, जल-सेना, किले, न्याय, लगान-सम्बन्धी हिसाब-किताब और दूसरे विषयोंके आवश्यक मामले, सभी मराठीमें लिखे जाने लगे। इस परिवर्तनने थोड़े ही समयमें उस भाषा को अत्यधिक समृद्ध बना दिया। कार्यवृद्धिके साथ-साथ अनेक व्यक्तियों तथा परिवारोंको, जो मामूली जगहोंसे आये थे, नवीन प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला।

शिवाजी के पहले मराठीमें गद्यका अस्तित्व नहींके बराबर था। उस समय समस्त उत्कृष्ट साहित्यकी रचना पद्यमें हुआ करती थी और वह भी भक्ति भाव और धार्मिकता से ओतप्रोत होती थी। परन्तु जब शिवाजी और उनके पिता ने अपना नया कार्य आरम्भ किया तब युद्ध, चढ़ाइयाँ, सन्धियाँ, व्यवसाय, एवं आदेश रोजके काम

बन गये जो तल्लीनता के साथ किये जाने लगे। इन सभीको लिपिबद्ध करनेकी आवश्यकता पड़ी। शिवाजी और उनके साथियोंके साहसिक कार्य एवं सफल कृतियोंने, जैसे उदाहरण के लिए अफ़ज़लखां के ऊपर उनकी विजय अथवा औरंगजेब से दरबार में भेंट अथवा तानाजी मलूसरे द्वारा सिंगद की रोमांचकारी विजयने, शीघ्र ही लोगों की कल्पना शक्तिको अपनी ओर आकर्षित किया, और शिवाजी की माता जीजा बाई स्वयं उनको अमर करानेके लिए सबसे आगे बढ़ीं। उन्होंने बन्दी जनोंको उनके ऊपर ऐसे पद रचनेमें प्रोत्साहन दिया जो देश भरमें लोकगीतके रूपमें गाये जा सकें। इस प्रकारके कुछ गानोंका, जिनका लोक-प्रिय नाम «पवाड़े» (Powadas) है, अनुवाद ऐकवर्थ (Acworth) ने अंग्रेजी पदोंमें किया है जिनसे मराठी न जानने वाले पाठकों को उन दिनोंकी क्रियाओंका कुछ आभास मिल जायगा। शिवाजी ने पारिभाषिक शब्दोंका फ़ारसीसे संस्कृतमें अनुवाद करके एक नया अधिकारी शब्दकोष बनवानेके लिए विद्वान् पंडितोंको नौकर रखा और राज-व्यवहार कोष अर्थात् दर्बार के प्रयोगके लिए पारिभाषिक शब्दोंका एक कोष तैयार करवाया। शीघ्र ही फ़ारसी तत्वके स्थान पर संस्कृत तत्व आने लगा और सभी प्रकारकी उन्नत रचना के लिए संस्कृतका प्रयोग किया जाने लगा। फलस्वरूप सौ वर्षोंके अन्दर-अन्दर भाषा का स्वरूप बिलकुल बदल गया। जबकि सोलहवीं शतीके सबसे बड़े मराठी-लेखक एकनाथ अपनी रचनाओंमें लगभग ७५% फ़ारसी शब्दों तथा उक्तियोंका प्रयोग करते हैं, तब १८वीं शताब्दीके मोरोपन्त की मराठी लगभग पूरीकी पूरी संस्कृत है जिसमें मुश्किलसे ५% फ़ारसी शब्दोंका मेल है।

अनुमान किया जाता है कि आधुनिक भारतीय गद्यका जन्म १९वीं शताब्दी अथवा अंग्रेजी शासन कालमें हुआ और उसका आरम्भ पश्चिमके महान् गद्यलेखकों के अनुकरणसे हुआ। जहां तक मराठीका सम्बन्ध है, यह विचार पूरी तौरसे सच नहीं है। बहुत ऊंचे दर्जेकी एक विशेष प्रकारकी गद्य-रचना का उदय मराठा क्रिया-कलापोंके १५० वर्षोंमें हुआ। व्यवसायों तथा राष्ट्रीय चिन्तनके अन्य विषयोंकी भांति भाषा भी अपनी उन्नति तथा वैभवके लिए अधिकारी संरक्षण चाहती है, और जब मराठीको आवश्यक संरक्षण प्राप्त हो गया तब वह और भी ज़्यादा चमक उठी, जैसा कि प्रकाशित पत्रोंको देख कर हम स्वयं समझ सकते हैं। हम सब लोगोंके लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि स्वराज्य एक राष्ट्रकी स्थितिमें विभिन्न प्रकारके कितने तरीक़ोंसे सुधार कर देता है, और समस्त विश्व क्यों उसके लिए

प्रयत्नशील है। यदि किसी राष्ट्रकी आत्मा की प्रतिच्छाया उसके साहित्यमें दिखाई पड़ती है तो हम गद्यमें लिखित मराठोंकी इतिहास-पुस्तकोंमें उसको स्पष्ट रूपसे पढ़ सकते हैं। उनमें से कुछकी गणना उच्च कोटिकी गद्य-रचनाओंमें की जा सकती है। शिवाजी का सभासदों का वर्णन, भाऊ साहब का «बक्खर» होल्कर लोगोंकी «कैफ़ियत» और पेशवाओंकी दो «बक्खरें», ये सभी उच्च कोटिके लेख हैं और उनमें मराठोंके कारनामों, उनकी आशाओं तथा अभिलाषाओं, उनकी प्रसन्नताओं और दुखों, गुणों और दोषोंकी सच्ची प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है। पर पाठकोंके हृदय पर पत्रोंका प्रभाव सबसे अधिक पड़ेगा। ये पत्र शासनका संचालन करनेवाले शक्तिशाली पदाधिकारियोंके हृदयमें, लेखकके विचारोंको अंकित करनेके उद्देश्य-विशेष से कुशल पत्रलेखकों द्वारा लिखवाये गये थे। इस प्रकारके पत्रोंसे भरी हुई सौ से अधिक छपी पुस्तकें इस समय पायी जाती हैं, जिनसे यह पता चलता है कि देश भरमें किस प्रकार लेखकों (चिटनीस) और अनुवाद-दाताओं (परसनीस) की मांग अत्यधिक बढ़ गयी। प्रत्येक मराठा सरदारको खबर भेजनेके लिए, केन्द्रीय सरकार को दूर की स्थिति समझानेके लिए और राज्यके अहम और नाजुक मामलोंमें निश्चित आदेश प्राप्त करनेके लिए कुशल लेखक नौकर रखने पड़ते थे।

चिटनीस परिवारके सभी लोग उत्कृष्ट लेखक थे। लिखित सामग्रीके ढेरके ढेर इकट्ठा देखकर हम कल्पना की उड़ानमें उड़ने लगते हैं। जब दूरके स्थानोंसे समाचार-वाहक पत्र प्राप्त होते थे और सतारा या पूना में पढ़े जाते थे तब कुछ लेखक अपनी उत्कृष्ट शैली तथा चातुर्यके कारण तुरन्त ध्यानमें चढ़ जाते थे और ऊंचे पदोंके लिए छांट लिये जाते थे। इस प्रकार जैसे-जैसे राज्यका विस्तार बढ़ता गया वैसे ही वैसे लेखनकला को अधिक प्रोत्साहन मिलता गया। उस कालके कुछ पत्र तथा दस्तावेज़, जो हम आज पढ़ते हैं, सचमुच साहित्यिक दृष्टिकोणसे बड़ी उच्चकोटि के हैं। उन्हें देख कर हमको यह पता लग जाता है कि मराठी भाषा और लेखनकला की उन्नति कितने चातुर्यसे की गयी। इन सम्भाषणों* में मैंने यदाकदा नमूनेके तौर पर इस प्रकारके कुछ काग़ज़ातोंके अंग्रेजी अनुवाद दे दिये हैं। यदि इन मराठी रचनाओंका तुलनात्मक मूल्यांकन किया जाय तो मेरे विचारसे उनमें से कई एक सचमुच बड़ी

* लेखककी हालमें प्रकाशित «मराठोंके नवीन इतिहास» में इस तरहके अनेक पत्रोंको दुबारा लिख दिया गया है।

उच्च कोटिकी निकलेंगी और पश्चिमके कूटनीतिक सन्देशोंके उत्कृष्ट नमूनोंके साथ की जाने वाली तुलना में खरी ही उतरेंगी। मैं कल्पना करता हूं कि भारतकी अन्य जातियोंके पास भी इस प्रकारके ऐतिहासिक महत्ववाले काग़ज़ात मौजूद हैं, और यदि उनके पास नहीं हैं तो उन्हें अनिवार्य रूपसे चेष्टा करनी चाहिए और इस बातका पक्के तौर पर पता लगा लेना चाहिए कि वे राजकीय प्राचीन-ग्रन्थ-रक्षागृहमें अथवा लोगोंके घरोंमें विस्मृतिके गर्भमें दबे हुए तो नहीं पड़े हैं। अमात्य रामचन्द्र नीलकंठ, खंडू बल्लाल और उसका पुत्र गोविंद खंडू चिम्माजी अप्पा और उसका पुत्र सदाशिव राव, पेशवा बाजीराव, बालाजी बाजी राव और माधवराव, ब्रह्मेन्द्र स्वामी, श्रीपत राव प्रतिनिधि, त्र्यम्बक राव पीठे, पुरन्दर लोग, हिंगने लोग, पटवर्धन लोग, नाना फड़नीस, उनके गुमाश्ते सदाशिव दिनकर, कृष्णराव और गोविंदराव काले—सभी योग्य तथा कुशल लेखक थे, जिन्होंने अपनी रचनाओंमें तत्कालीन मराठा प्रवृत्तिका विस्तृत वर्णन करके हमको यह आभास कराया है कि मानों हम उन हलचलके दिनोंमें उपस्थित थे।

जब सेनानायक प्रयाण करते थे तो मराठा सैनिकोंकी लड़ाईकी जरूरतें पूरी करनेके लिए बस्तियां बसाने और प्रशासन करनेके लिए बहुत बड़ी संख्या में व्यापारी, सौदागर, मुनीम, सेठ, इंजीनियर तथा अन्य कारीगर सेना के साथ-साथ जाते थे और अपने-अपने कामोंमें बड़ी निपुणता का परिचय देते थे। इनके अतिरिक्त प्रत्येक स्थितिमें सैनिक और कूटनीतिक कार्योंकी सूचना देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक पहुंचानेके लिए संवाददाता होते थे। लगान वसूल करनेवाले और मुनीम लोग रिकार्ड रखते तथा वार्षिक कर और दूसरी तरहके कर वसूल करके ले आते थे। कारीगर और इंजीनियर क़िले और मुंडेरें और पहाड़ों तथा नदियोंके किनारे पर सड़कें, घाट, और मन्दिर बनाते थे। किसी देश पर अधिकार होते ही तुरन्त वहां न्याय और पुलिसका प्रबन्ध कर दिया जाता था, और इस तरह देशके सभी लोगोंका नियमित शांतिमय जीवन फिरसे आरम्भ हो जाता था। व्यवस्था स्थापित होते देर नहीं कि वहां पंडित, पुरोहित और महात्मा लोग पहुंचने लगते थे और अपने व्यक्तिगत चरित्र एवं कर्तव्यपरायणता से बाहरके लोगोंके जीवनको इस प्रकार ढाल लेते थे कि उनकी समाज और राजनीति पर मराठोंका प्रभाव स्पष्ट रूपसे झलकने लगता था। उन्होंने मन्दिर बनवाये, पाठशालाएं और निःशुल्क भोजनालय खोले और सूक्ष्मता तथा चतुराईके साथ कुछ समय के लिए उत्तरमें मराठा-संस्कृतिका आरम्भ किया। बादको बहुत दिनों तक वहां के

निवासियोंने मराठोंके इस प्रकार प्रवेश करने को स्वास्थ्यप्रद एवं कल्याणकारी पाया। उन दिनों लोग तीर्थयात्राएं करते और देश भरमें हिन्दू शासनके पुनःस्थापनके लिए उत्साहसे पूर्ण होकर घर लौट आते थे। वे मराठा नेताओंको अपने धर्म* के मुक्ति-दाता और संरक्षक समझते थे। बनारसके पटांकरों, दिल्लीके हिंगने, सॉगरके खेर, नागपुर और पश्चिमी बंगाल के कोल्हतकर और लखनऊ, मथुरा तथा प्रयाग के मामूली लोगोंके रिकार्डोंमें मराठों की इन पक्षीय (side) क्रियाओंके अनेक प्रमाण मिलते हैं। इन शांतिमय प्रयासोंमें कोई कटुता नहीं पायी जाती; उल्टे उत्तरके लोगोंने हृदय से उनकी सराहना की है। यदि कोई पुराने काग़ज़ातोंमें वर्णित तत्कालीन विवरणोंका सूक्ष्म अध्ययन करनेका कष्ट उठाये और विस्तारके साथ उनकी तुलना पहलेके मुसलमानी आक्रमणोंसे करे, विशेष रूपसे पठान-काल में, तो वह आसानीसे दोनोंके बीचके अन्तरको समझ सकता है और यह देख सकता हैं कि किस प्रकार मराठों का प्रवेश कोमलता एवं सहानुभूतिसे पूर्ण और मुसलमानोंका प्रवेश ध्वंसात्मक था।

८. उन्नतिकी सफल कृतियोंमें मराठों का उचित गर्व.

भारतकी विभिन्न जातियोंमें से अकेले मराठोंने मुग़लोंकी बढ़ती हुई शक्तिका संगठित रूपमें सबसे जबर्दस्त विरोध किया, और अन्तमें उसको कुचल डाला। इस क्रिया की प्रगतिमें उन्होंने जिस योग्यता, तल्लीनता, धैर्य एवं निर्णयका परिचय दिया उसके कारण उन्हें बिना किसी कठिनाईके भारतका हितैषी कहा जा सकता है।

उन्होंने अपने ढंगसे और उस समयकी रीतिके अनुसार, देशके कल्याणके लिए, एक भारतीय शक्ति जो कुछ कर सकती थी वह सब किया। यदि उनको अचानक एक संगठित पश्चिमी शक्तिका मुक़ाबला न करना पड़ जाता तो इस बातकी पूरी सम्भावना थी कि वे भारतमें एक हिन्दूराज्य स्थापित कर लेते। इसके विपरीत, यदि शाहूकी मृत्युके बाद पेशवा लोग मराठा शासनके सर्व-सर्वा न बन जाते तो, दक्षिणकी स्थिति अंग्रेज़ोंके अनुकूल हो जाती, और प्लासी तथा वांडीवाश, जिन्होंने क्रमसे बंगाल

* उत्तर और दक्षिणके बीच स्थापित होन वाले सांस्कृतिक सम्पर्कके लिए लेखक की «मराठों का नया इतिहास» के खंड २, अध्याय २, वर्ग २ तथा अध्याय १० वर्ग ४ (सामाजिक सम्पर्क) देखिये।

ग्रौर मद्रासमें पहलेपहल उनकी प्रभुता स्थापित की, के साथही साथ पश्चिमी भारत में भी उनके हस्तक्षेपके लिए तुरन्त मार्ग तैयार हो जाता। इसलिए मराठोंको कमसे कम इस बातका श्रेय तो देना ही पड़ेगा कि उन्होंने पश्चिमी भारत पर अंग्रेजोंका आक्रमण लगभग पचास वर्षके लिए टाल दिया; अन्यथा सन् १७५७ की प्लासीके साथही साथ दक्षिणमें अपना प्रतिरूप दिखायी दे जाता और पश्चिमी भारतके लिए युद्धका परिणाम वही होता जो बंगालके लिए हुआ था। मेरी सम्मतिमें, जिस जाति ने मुसलमानोंकी शक्तिको चूरचूर कर दिया, जिसने भारतके सभी भागोंमें अंग्रेजोंको आगे बढ़नेसे बहुत दिनों तक रोक रखा, जिसने गोंडों और सुदूर उत्तर तथा दक्षिण की अन्य जातियोंको जीता और सभ्य बनाया, जिसने एक चतुष्कोण प्रदेशमें, जिसके मोटे तौर पर नागपुर, सूरत, गोआ और तंजौर ये चार कोने कहे जा सकते हैं, अपने प्रभावके स्थायी चिह्न बहुतायतके साथ छोड़े, जो व्यवस्था, शान्ति एवं संस्कृतिकी प्रतीक थीं और अन्तमें जिसने भारतकी आत्माको बचाया और उसमें एक नवीन आशा का संचार किया, वह जाति अपने अतीतके इतिहास पर न्याययुक्त गर्व करनेकी अधिकारी है।

२

महाराष्ट्र में ऐतिहासिक अनुसन्धान

१. ऐतिहासिक अनुसन्धान का विस्तार, सीमा तथा प्रतिबन्ध.

इतिहासके अध्ययनका अर्थ है—सत्यकी खोज, और सत्य कभी एक-पक्षीय नहीं होता। मराठों के लिए केवल अपने ही काग़ज़पत्रोंकी सहायता से पूरा इतिहास लिखना संभव नहीं। अधिकसे अधिक वे चित्रका एक पक्ष दिखायेंगे। दूसरे पक्ष अनेक दूसरी-भाषाओं में पाये जाते हैं, और चूंकि मराठा इतिहास समस्त भारतके इतिहासका एक अंग मात्र है, इसलिए मराठोंकी भावना को वह चाहे कितना ही आकर्षित क्यों न करे, मराठोंके बाहरके स्रोतोंकी सहायता से उसे पूर्ण करना नितान्त आवश्यक है। एकसच्चे इतिहास-वेत्ता का मन उतना ही पक्षपातरहित तथा विश्लेषणात्मक (analytical) होना चाहिए जितना कोयले या हीरेकेटुकड़ेकी परीक्षाकरते समय एक रसायनशास्त्रके ज्ञाता का होता है। यदि इतिहासकार अपने इतिहासको उपयोगी सिद्ध करना चाहता है तो सत्यको असत्यसे अलग करनेके लिए पेचीदा मानवीय मामलोंका निर्णय करते समय उसके दिमाग़का रुख उसी तरहसे पक्षपातरहित तथा आलोचनात्मक होना चाहिए। जब हमें किसी घटना के विषयमें बताना हो, जैसे उदाहरण के लिए पानीपतकी लड़ाई, तब हम लोगोंके लिए केवल मराठा रिकार्डोंसे सन्तुष्ट हो जानापर्याप्त न होगा। हमको चाहिए कि हम उस विषय पर अधिकसे अधिक जितना प्रकाश पड़ना सम्भव हो उसकी खोज करें, चाहे वह किसी भी श्रोतसे प्राप्य क्यों न हो। पहली बात यह है कि हमारे पास वे सारे खत और हिसाब-किताब भी एक साथ नहीं हैं जो विभिन्न मराठा सरदारों और लेखकोंने उस महत्वपूर्ण युद्धके

ज़मानेमें अपनी-अपनी जगहोंसे भेजे होंगे। किन्तु विदेशी व्यापारियों (अंग्रेज, फ़ांसीसी और पुर्तगालियों) के अतिरिक्त, उनका व्यवहार राजपूतों, जाटों, सम्राट (मुग़ल), उसके मंत्रियों, विभिन्न रुहेला सरदारों, अवधके नवाब वज़ीर और सिख नेताओं तथा सेनानायकोंके साथ भी था। उनके हिसाब-किताब और काग़ज़ात उनकी अपनी-अपनी भाषाओंमें मिलते हैं। अतएव पानीपतका पूर्ण चित्र प्राप्त करनेके लिए, हमें अनिवार्य रूपसे समस्त विदेशी साधनोंको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए, और तब उनकी सहायता से (लड़ाई का) पूरा विवरण तैयार करना चाहिए।

उसके बाद भी हो सकता है कि चित्रमें कुछ कमी रह जाय, क्योंकि मनुष्य हर समय ग़लती कर सकता है। यदि सड़क पर हमारी आंखोंके सामने कोई दंगा हो जाता है, और यदि हमको अदालतके सामने उसके बारेमें गवाही देनी पड़ती है तो हम जानते हैं कि कितनी बार हर एक आदमी उसका बयान अलग-अलग देता है, क्योंकि हर एक सिर्फ़ उसके एक हिस्से पर ग़ौर करता है, और वह भी अपने दृष्टि-कोण से। इस माने में मानव-मस्तिष्क, जो बातचीतका एकमात्र माध्यम है, एक रंगीन शीशेके टुकड़ेकी तरह है; जिस प्रकार रंगके बीचसे होकर गुज़रनेवाली किरणमें रंगकी झलक आ जाती है, उसी प्रकार मानव-मस्तिष्क पर बात-चीत करने के माध्यमकी झलक दिखायी देने लगती है। इसलिए आप समझ सकते हैं कि ऐतिहासिक निर्णयों तथा निष्कर्षों तक पहुंचानेकी यह क्रिया कितनी अधिक कठिन है। तब क्या हम पूरे इतिहासको झूठा समझें? नहीं! कदापि नहीं। विज्ञानकी प्रवृत्तिसे उसका अध्ययन करने पर हमें वह पग-पग पर उपयोगी जान पड़ेगी। यहीं पर इतिहासका वास्तविक मूल्य भी है। यदि विचारोंमें अन्तर न हो और विभिन्न लेखकों द्वारा किये गये मनुष्यों एवं घटनाओंके मूल्यांकनमें भेद न हो तो इतिहास केवल अपरिवर्तित एवं अपरिवर्तनशील तथ्योंका स्थिर समूह अथवा गट्ठर मात्र रह जायगा। उसमें मानवता का आभास न रह जायगा और उसकी क्रमिक उन्नति-शीलता नष्ट हो जायगी। वह विद्यार्थियोंको विचार-शक्ति का अभ्यास करनेका अवसर न प्रदान कर सकेगा, और एक तरहसे उन धर्मग्रंथोंकी तरह सिद्ध होगा जिनकी प्रामाणिकता के विषयमें कभी किसी प्रकारका प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। इतिहास मानव सभ्यता के प्रत्येक अंगसे सम्बन्ध रखता है--वह सभ्यता जो सदैव बदलती रहती है और जो प्रत्येक क्षण मनुष्यके भाग्य पर प्रभाव डालती रहती है। यदि विद्यार्थी लोग विषयका अध्ययन वैज्ञानिक ढंगसे करेंगे तो उनकी विचार शक्तिका

अभ्यास जरूर होगा। यदि वे अपने आप, तथ्योंको ठीक करने, अलग करने और क्रमबद्ध करनेका कष्ट नहीं उठाते, और यह जाननेके लिए नहीं रुकते कि उनकी तर्क बुद्धि कहां तक उन तथ्योंकी सत्यता को मानने या न माननेके लिए तैयार होगी, तो फिर वह एक विज्ञान न रह जायगा। इतिहासके लेखक चाहे कितने ही बड़े क्यों न हों, इतिहासमें हमें विश्वास और प्रमाणके आधार पर कोई भी बात स्वीकार न कर लेनी चाहिए।

२. समस्त साधनोंसे प्राप्त सामग्रीके संकलनसे भारतीय इतिहासकी रचना अभी होनी है.

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अनुसंधान कार्य कैसे आरम्भ करना चाहिए और उसके प्रतिबन्ध क्या-क्या हैं। जहां तक भारतीय इतिहास का सम्बन्ध है, हम व्यावहारिक रूपसे अभी तक प्रारम्भिक स्थितिमें ही हैं। योरोप का इतिहास जैसे इंगलैंड, फ्रांस अथवा प्राचीन रोम और यूनान का इतिहास अनेक ऐसे बड़े-बड़े विद्वानोंके हाथों, बहुत दिन पहले ही इन सीढ़ियोंसे होकर गुजर चुका है, जिन्होंने सामग्रियों का अलगाव किया है और उनको एक ऐसा रूप दे दिया है, जो क़रीब-क़रीब स्थिर ही माना जा सकता है। एक दो नये तथ्य अब भी प्रकाशमें आ सकते हैं, और किसी-किसी वृत्तान्तके विवरण में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर सकते हैं; परन्तु मुख्य विषयका अध्ययन पूरी तौरसे किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त योरोपके स्वतंत्र राष्ट्र प्रतिदिन इतिहासकी रचना कर रहे हैं; पर भारत में, १६वीं शती के मध्यसे हम प्रायः किसी तरहके इतिहास का निर्माण न कर पाये। यही कारण है कि ब्रिटेन की विजयी शक्तिके सम्मुख हमारा पतन होनेके समयसे, भारतीय इतिहास हमारे लिए रोचक न रह गया, और उसमें हमारी कल्पना, भावना अथवा गर्व को उत्तेजित करने की शक्ति न रह गयी। उदाहरणके लिए, मराठे यद्यपि पानीपतके मैदानमें हार गये थे, तथापि उस स्मरणीय घटना के सभी वृत्तान्तों, व्यक्तियों अथवा अंगोंके प्रति होनेवाली उनकी रुचिमें इतनी सजीवता है कि उनके कवि, अनुसंधानकर्त्ता, बन्दीजन, अभिनेतागण, उपन्यासकार, प्रतिदिन उत्साह के साथ उसके विषयमें लिखनेमें अपनी शक्तियोंका अभ्यास कर रहे हैं। शिवाजी और अफ़ज़ल वाली घटना अथवा पेशवा नारायणराव की हत्या समानरूपसे मराठा लेखकों को आकर्षित करती है और उन्हें अपनेमें लीन कर लेती है। यह स्वाभाविक ही है कि

हमारे पूर्वजों अथवा ऋषियों और धर्मके नायकों की कृतियां हमारी कल्पना शक्तिको प्रभावित करें।

फिर भी, इतिहास को, किसी सम्प्रदा यविशेषके दृष्टिकोणसे नहीं, बल्कि एक स्थिर लक्ष्य सामने रखकर संकलित रूपमें उन सभी तत्वोंकी सहायता से, जिनका उस कालसे कोई सम्बन्ध हो जिसे हम ले रहे हैं, भारतके एक अकेले पूर्ण, राष्ट्रीय इतिहासको ढालने के लिए इन सभीको ध्यानमें रखना है। और चूंकि हमें भारतके इस प्रकार के संयुक्त राष्ट्रीय इतिहासका निर्माण करना है, इसलिए जैसे-जैसे हम अपने अधिक पेचीदा समयमें पहुंचते जाते हैं वैसे-वैसे हमें अपने अध्ययनके लिए अधिक सामग्री की आवश्यकता पड़ती जाती है। प्राचीनकालमें हमारा जीवन अधिक पृथक्, निषेधक (enclusive) और शायद अधिक शान्त था; परन्तु उसके बादके समयमें, विजय और शक्ति के बढ़ते हुए संघर्षके साथ साथ भारतीय मामले, चाहे वे राजनीतिक हों अथवा सामाजिक, एक दूसरेमें अधिक मिल गये; १८वीं शताब्दी के इतिहासके साथ, जब कि मुग़ल शासनके पतनके साथ, शक्ति और प्रभुता के लिए होने वाली छीनाझपटी अधिक तीव्र हो गयी और उसके प्रतिस्पर्धियों (competitors) की संख्या में वृद्धि हो गयी, यह बात विशेष रूप से दिखाई देने लगी। इस प्रकार हम आसानीसे इस बातका अनुमान कर सकते हैं कि सामग्रीके किन-किन विभिन्न साधनोंकी खोज हमें अनिवार्य रूपसे करनी चाहिए, और किसी दी हुई घटना को पर्याप्त मात्रा में, स्वीकार करने योग्य, मूल्यांकन पर पहुंचनेके पूर्व किस दिशा में हमें नये प्रकाशको ढूंढ़ना है। हाल में ही हम अपने कर्तव्यके इस अंगकी ओर से सचेत हुए हैं, और अब देशके विभिन्न विद्वानों तथा संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय कार्यके इस क्षेत्रमें उत्साह पूर्वक प्रयत्न किये जा रहे हैं। लगन और साधना के साथ किये गये कार्यका फल सदैव मीठा होता है। आप आसानीसे इस बातकी कल्पना कर सकते हैं कि उदाहरणके लिए शिवाजी का जीवन-चरित्र उस दिशा में सदैवके लिए किस प्रकार अधूरा और एकपक्षीय पड़ा रहता यदि प्रोफ़ेसर यदुनाथ सरकारने, उस समय जबकि उन्होंने अनायास ही औरंगजेब का अध्ययन प्रारम्भ किया था—वही औरंगजेब जिसनेअपने लम्बे और क्रियाशील जीवनका क़रीब-क़रीब आधा हिस्सा मराठोंके बीचमें बिताया था—अपनी विद्वत्ता और अनुसन्धान की महान् शक्तिओंको उस ओर न लगा दिया होता। मराठा इतिहासके लिए सरकार की देन (contribution) सचमुच अमूल्य है, विशेष रूपसे उन सामग्रियोंके सम्बन्ध में, जो न केवल फ़ारसीमें, वरन् योरोप की विभिन्न भाषाओंमें प्राप्य हैं और जिनको

वे बड़े कठिन परिश्रम, व्यय और धैर्यसे प्राप्त कर पाये हैं। उन्होंने योग्यता के साथ यह भी दिखा दिया है कि एक साथ पूरे भारतके संकलित इतिहासका निर्माण करनेमें उनका (सामग्रियोंका) प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। बहुतसे दूसरे सज्जन भी अब इसी काममें लगे हुए दिखायी देते हैं।

जिस प्रकार भारतकी भावी राजनीति अब किसी एक साम्प्रदायिक इकाईमें सीमित होकर अथवा अलग होकर नहीं रह सकती, उसी प्रकार भविष्यके भारतीय राष्ट्रका इतिहास एक संयुक्त इतिहास होने जा रहा है, जिसमें सारी इकाइयोंको अपना व्यक्तिगत अस्तित्व मिटाकर एक साथ मिल जाना पड़ेगा। इस प्रकारके इतिहासको मजबूत और कमजोर--दोनों तरहकी बातों, सेवाओं और ग़ैर सेवाओं, प्रत्येक अलग-अलग सम्प्रदाय, धर्म और जातिकी ओर ध्यान देना है और उनको एक ठोस इकाई के रूपमें ढालना है जिसके ऊपर सभी गर्व कर सकें और जो सबको प्रेरणा तथा अतीतके अनुभव से प्राप्त उपयोगी शिक्षाएं दे सके। इस सार्वलौकिक (common) कार्य में भारतकी प्रत्येक जातिको अधिकसे अधिक योग देना चाहिए। वे दिन अब बीत चुके जब कोई एक सम्प्रदाय व्यक्तिगत रूपसे अपने कारनामों पर जोर दे; अब तो हमें, जैसा मैं पहले कह चुका हूं, एक इकाईके रूपमें, पूरे भारत के लिए सोचना है, हम सबको उसे अपनी जननी समझना है जिसके सम्मानकी रक्षा के लिए हम सबको उत्साहके साथ परिश्रम करना है। जो संयुक्त भारतके सम्बन्धमें नहीं सोचते, उनके लिए भविष्यके भारतीय राष्ट्रमें कोई स्थान नहीं है।

चारों ओर ऐतिहासिक अनुसन्धानकी कितनी अधिक आवश्यकता है, यह दिखानेके लिए मैं जान-बूझ कर इस बात पर जोर दे रहा हूं। यह काम एक अकेले व्यक्ति, जाति अथवा भाषा के मानका नहीं। भारतकी सभी भाषाओं और जातियों को अनिवार्य रूपसे इस पूरेका निर्माण करनेके लिए अपना योग देना चाहिए। ऐसा जान पड़ता है कि हम सब लोग इतिहासके इस रूपको स्पष्ट रूपसे समझ नहीं पाये हैं। हम, दूसरोंने जो कुछ किया है उसकी महत्ता को घटाने और अपने कारनामों को बढ़ा-बढ़ा कर बतानेको तैयार रहते हैं; परन्तु प्रत्येक जातिका अपना अतीत—चाहे वह गौरव-पूर्ण हो, अथवा अंधकारमय—जहां तक संयुक्त राष्ट्रीय इतिहासके इस मुख्य अभिप्रायको पूरा करता है, अन्त तक आवश्यक है—दुनिया के पर्दे पर शायद ही कोई देश अथवा राष्ट्र ऐसा हो जिसमें कर्कश सम्प्रदाय अथवा भाग न हो, परन्तु एक

सामान्य उद्देश्यके लिए सब संयुक्त हुए हैं और आपसमें सहयोग करके उन्होंने महान् उद्देश्योंकी पूर्ति कर डाली है। भेद-भाव और फूटके ऊपर जोर देनेकी उत्कट इच्छा के आगे भारतीयोंकी वास्तविक एकता को हम प्रायः भुला बैठते हैं। न केवल भारतके हिन्दू लोग अपनी सामान्य बपौती (Heritage) पर गर्व कर सकते हैं, वरन् भारत में रहने वाले मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयों को भी, वास्तविकता और समय के दबावसे, इस प्रकारकी बिल्कुल मिली-जुली सामाजिक ज़िन्दगी बसर करनी पड़ी है कि समस्त व्यावहारिक लक्ष्योंके लिए, उन सबको एक साथ लेने पर अब भी एक संयुक्त और पूर्ण इकाई बन जाती है। जरूरत सिर्फ़ इस बातकी है कि हम इस तरह से सोचनेकी आदत डालें, और यही वह चीज है जिसकी शिक्षा हम सबको इतिहास से मिलनी चाहिए। संयुक्त भारतके इस सामान्य जीवनमें हमारे इतिहासको अपना कर्तव्य निभाना है, और इसीलिए मैंने इस बात पर जोर दिया है।

२. भिन्न-भिन्न प्रकार के दो प्रमुख विद्वानों, सरकार तथा राजवाड़े द्वारा किया गया शुभ मार्ग-दर्शन.

परन्तु ऐतिहासिक अनुसन्धानकी आवश्यकताओं और राष्ट्र-निर्माण के इस सार्वलौकिक कार्यमें उसकी सम्भाव्य सेवाओंको, लोग हालमें ही स्पष्ट रूपसे समझ पाये हैं अथवा सामान्य रूपसे स्वीकार कर पाये हैं। लगभग ५० वर्ष पूर्व इलियट (Elliot) और डाउसन (Dowson) ने फ़ारसीकी कई इतिहासपुस्तकोंके केवल कुछ भागोंका अंग्रेज़ीमें अनुवाद किया था, जिसके ऊपर भारतीय इतिहासका मुसलमानी काल मुख्य रूपसे आधारित रहा है। पिछली शताब्दीके अन्तिम अर्द्ध भागमें सभी प्रान्तोंमें प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रियोंको—जैसे पत्र, दस्तावेज़, इतिहास, सिक्के, मुद्राएँ, चित्र, शिलालेख, मूर्तियां तथा अन्य साधनोंको—जिनकी सहायता से अतीतकी घटनाओंकी व्याख्या की जा सकती है, एकत्र करनेके लिए अनेक प्रयास हुए। जहां तक आधुनिक भारतका सम्बन्ध है, अनुसन्धान करनेका जितना ठीक तरीक़ा दो अभ्रान्त कार्यकर्ताओंने दिखाया है उतना और किसीने नहीं। पर दोनोंने अपने-अपने ढंगसे ऐसा किया है—उत्तरमें यदुनाथ सरकार और दक्षिणमें स्वर्गीय वी० के० राजवाड़े (V. K. Rajwade), यद्यपि दोनोंके विषयमें किसी न किसी हद तक असत्य निवेदन किये गये हैं अथवा उनको ग़लत समझा गया है। जो लोग उनकी रचनाओं,

उनके तरीक़ों और उनके व्यवहारका अनुसरण करते हैं, उन्होंने ऐतिहासिक आलोचना और प्रकृतिमें होने वाली उस अतीव उन्नतिको समझ लिया है जो इन दो प्रमुख विद्वानोंके द्वारा विषयमें की गयी है।

भारतीय इतिहासके लिए यह एक शुभ संयोग था कि न केवल दो अलग-अलग दृष्टिकोणोंसे, वरन् दो मुख्य प्रादेशिक स्रोतोंसे भी, समस्या का हल करनेके लिए ये दो योग्य कार्यकर्त्ता प्राप्त किये जा सके—उत्तरी भागको प्रस्तुत करने वाले सरकार और मराठी सामग्रियोंकी छान-बीन करने वाले तथा दक्षिणी भागको प्रस्तुत करने वाले राजवाड़े। सौभाग्यसे, इस कार्यके लिए उनके पास पहलेसे जो कुछ सामग्री थी, वह भी एक दूसरेसे बिल्कुल भिन्न थी। सरकारने विश्वविद्यालयकी चमत्कृत जीवन वृत्तिके पश्चात् कुछ दिनों तक कालेजों तथा विश्वविद्यालयोंमें अध्यापन कार्य किया। राजवाड़े स्वभावसे ही जोशीली प्रवृत्तिके थे। विश्वविद्यालयमें उनका वह जोश ठंडा होनेके बजाय और बढ़ गया और बी० ए० पास करनेके बाद उन्होंने अपने को राष्ट्रीय इतिहासकी सेवा में पूर्णतया अर्पित कर दिया। उन्होंने ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए आवश्यक, अनेक विषयोंका अध्ययन किया, जैसे योरोप और विश्वका प्राचीन तथा आधुनिक इतिहास, तुलनात्मक व्याकरण, दर्शन और शिलालेख-विद्या। यद्यपि वे अपने आप अलग-अलग और दूसरी-दूसरी दिशाओंमें काम करते रहे तथापि सौभाग्यसे कुछ ऐसा संयोग हुआ कि दोनों ने मराठा इतिहासके सामान्य क्षेत्र पर अपने प्रयासोंको केन्द्रित किया। प्रो० सरकारने औरंगज़ेब को अपने विशेष अध्ययन का विषय बनाया था, अतएव उनको शिवाजी के कालका अनुसन्धान करने और मौलिक मराठी स्रोतोंसे उसके ऊपर काम करनेकी आवश्यकता पड़ी। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि उन्होंने बड़े उत्साहके साथ, लाभदायक ढंगसे उनके (मराठी-स्रोत) ऊपर अधिकार कर लिया है। निश्चय ही, हमको हृदयसे इस संयोगका गुणगान करना चाहिए। *

* सरकारने अकेले, अपनी «औरंगज़ेब का इतिहास», «शिवाजी और उसका समय», तथा «मुग़ल साम्राज्य का पतन» (४ भागोंमें), के द्वारा क़रीब-क़रीब पूरे मराठा कालके इतिहासका पुनर्निर्माण कर डाला है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य भारतीय विद्वानोंने भारतीय इतिहासके विशेष क्षेत्रों पर पुस्तकें लिखी हैं, परन्तु मैं चूंकि केवल महाराष्ट्रके इतिहासको ले रहा हूं, इसलिए अपनी समालोचना में इनको शामिल नहीं करता हूं।

गत शताब्दीके आठवें दशकके प्रारम्भिक भागमें शिवाजी के जीवनका इतिहास अकस्मात् प्राप्त हो जानेके कारण ग्रांट-डफ़ (Grant Duff) की महत्त्वपूर्ण रचना की आलोचना स्वर्गीय जस्टिस रानाडे तथा उनके साथियोंके हाथों से हुई। तभी यह पता लगा कि ऐतिहासिक रुचिके अनेक उपयोगी « बक्खर » और काग़ज़ात विभिन्न स्थानोंमें हैं, जिनको यदि प्रकाशित कर दिया जाय तो केवल ग्रांट-डफ़ की ग़ल्तियां ही ठीक न की जा सकेंगी, बल्कि उसके इतिहासमें बहुतेरी ठोस बातें जुड़ जायंगी। ऐतिहासिक काग़ज़ोंके साथ-साथ प्राचीन मराठा लेखकोंकी कविताओं तथा निबन्धोंकी अनेक मौलिक पांडुलिपियां भी खोज निकाली गईं। नवयुवक कार्यकर्ताओंके एक दल ने, जिनमें से अधिकांश हाई-स्कूलों में अध्यापक थे, पद्य तथा इतिहासमें अनुरक्त (devoted) एक मासिक-पत्रिका में उनका सम्पादन तथा प्रकाशन करना आरम्भ किया। इस प्रकार १८७८ ई० में « काव्येतिहास-संग्रह » का जन्म हुआ। हर्षका विषय है कि उन उत्साही कार्यकर्ताओंमें से एक अभी जीवित हैं; उनका नाम है राव बहादुर काशीनाथ नारायण साने।* इस समय वे ७५ वर्ष के हैं। उनकी विद्वता और मराठा-इतिहासके हितमें उनकी तल्लीनता मेरी तरफ़के लोगोंको खूब अच्छी तरह मालूम है। यह पत्रिका १२ वर्ष तक चलती रही और उसने ऐतिहासिक सामग्रियोंके तीस खंड छापे, जिनमें से अधिकांश इतिहास थे, और एक दो में ऐसे मौलिक पत्र तथा दस्तावेज़ छपे थे जो बड़े महत्त्वपूर्ण थे।

४. राजवाड़े.

तो भी, इस प्रकाशनसे जनता के मनमें इतिहासके प्रति उत्कट रुचिकी जागृति न हुई; और समर्थनके अभावके कारण पत्रिका बन्द हो गयी। इस प्रकारकी रुचि उत्पन्न करनेका श्रेय निश्चय ही विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़ेको है, जो इस समय साठसे† ऊपर हैं, और अब भी अपना कार्य कर रहे हैं, आधुनिक भारतके ऊपर नहीं, प्राचीन भारतके ऊपर। अपने पास कोई साधन अथवा धन न होनेके कारण कॉलेज छोड़नेके बाद उन्होंने घर-घर जाकर काग़ज़ोंको ढूंढ़ना शुरू किया। पर ऐसा करनेके लिए वे

* १७ मार्च, १९२७ को इनका देहान्त हो गया।
† जुलाई, १८६४ में जन्म हुआ, और ३१ दिसम्बर, १९२६ में स्वर्गवास।

पूना, सतारा, नासिक और वाई के बड़े ऐतिहासिक नगरोंमें ही नहीं गये, बल्कि सरदारों, क्लर्कों और पुरोहितोंके पुराने मराठा परिवारोंका पता लगाते हुए, और उनके पास संचित काग़ज़ातोंका, जिनके ऊपर उन्होंने जितनी एकाग्रता एवं तल्लीनता से विचार किया वह साधारण जीवनमें मिलना कठिन है, परीक्षण करते हुए वह पैदल गांव-गांव गये। भूख-प्यासकी परवाह किये बिना, दानके ऊपर आश्रित तथा दयावान् लोगोंसे अपनी यात्रा की मुख्य आवश्यकताओंकी पूर्ति करने भरके लिए थोड़ा बहुत धन स्वीकार करते हुए, पुरानी पांडुलिपियोंके काग़ज़ोंके भारी बोझको पीठ पर लाद कर जिसको अब उन्होंने विभिन्न केन्द्रोंमें अपने उन मित्रों और शिष्योंके पास जमा कर दिया था, जो इस बीचमें उन्होंने बना लिये थे, वे पूरे महाराष्ट्र और बाहरके भागोंमें बरसों घूमते रहे। उनकी स्वार्थरहित निष्ठा का लोगोंके हृदय पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि कुशाग्रबुद्धिवाले और उत्साहपूर्ण कार्यकर्ताओंके दलके दल शीघ्र ही उनके चारों ओर जमा हो गये और उनके हाथमें जो काग़ज़ आते उन्हें जमा करने, संचित करने, पढ़ने, छांटने, प्रति बनाने, छापने और प्रकाशित करनेमें उनकी सहायता करने लगे। सचमुच राजवाड़ेके रूपमें हम एक वैरागी, «ब्रह्मचारी» तथा «सन्यासी» का उदाहरण पाते हैं जिन्होंने यह दिखा दिया कि दृढ़ निश्चयके साथ, कठिनाइयोंकी परवाह किये बिना और धनाभावसे निर्भय होकर अपने मनसे किसी काममें लग जानेवाला अकेला आदमी भी क्या-क्या कर सकता है। उनके द्वारा संचित की हुई सामग्री इस समय धूलिया (Dhulia) में सुरक्षित है।

राजवाड़ेने न केवल आशंकारहित स्थानोंसे उपयोगी काग़ज़ोंके ढेरके ढेर एकत्र किये, वरन् उन्होंने यह भी दिखा दिया कि निजी काग़ज़ों और हिसाबके खातोंमें, दिये गये दानों (charities) से सम्बन्धित सनदों तथा दस्तावेज़ोंमें, न्यायसम्बन्धित निर्णयों और व्यक्तिगत रोज़नामचोंमें कितनी अनमोल सामग्री भरी पड़ी है—वही सामग्री जो उस समय तक व्यावहारिक दृष्टिसे बेकार समझी जाती थी। किसी पुराने काग़ज़के आकार और गुण, उसकी बनावट, वह स्रोत जहां से वह आया, उसके ऊपर की लिखावटका प्रकार, और इसी तरहके अनेक दूसरे लक्षणोंसे, राजवाड़ेके प्रशिक्षित तथा कुशल हाथोंमें पड़कर ऐसे-ऐसे परिणाम निकले जिनका कभी ख्याल भी न था। अभी तक उन्होंने अपनी आरम्भिक शक्तिसे प्रेरित होकर २२ पुस्तकें लिखी हैं। हर एकमें मौलिक पत्रों (papers) के लगभग ३५० पृष्ठ हैं, और विद्वतापूर्ण भूमिकाएं हैं जिन्होंने अनिवार्य रूपसे, छपे हुए पत्रोंके विषयसे सम्बन्धित न होते हुए भी, इतिहास

की सामान्य रूपसे और मराठा इतिहासकी विशेष रूपसे, विभिन्न विशिष्ट समस्याओं की विवेचना की है, और मानव-इतिहास तथा विचार और भाषा के, अर्थ एवं व्याख्या के विषयमें मूल्यवान् मार्गदर्शन दिया है।

राजवाड़ेने केवल पुराने पत्रोंको ही नहीं खोज निकाला, बल्कि उनकी सहायता से सभी कालोंके मराठा-इतिहास तथा उसकी अनक शाखाओंके इतिहासका पुनर्निर्माण भी किया। मानव-विचार एवं उन्नतिकी उत्पत्तिके विषयमें उनके द्वारा दिया गया विवरण, लिपियों और मराठी भाषा की उत्पत्तिके सम्बन्धमें उनके सिद्धान्त, भारतीय इतिहास के विभिन्न युगोंके सामाजिक एवं राजनीतिक जीवनके विकासके सम्बन्धमें उनका विद्वता-पूर्ण योगदान (जैसे आर्यों द्वारा महाराष्ट्रमें बस्तियां बसाना) ये सभी विषयके सब छात्रोंके लिए सदैव मूल्यवान् मार्ग-दर्शक सिद्ध होंगे—यद्यपि आगे होने वाले अध्ययनके द्वारा उनके अनेक सिद्धान्तोंका खंडन किया जा सकता है। उनकी तेज आंखें वेदोंसे लेकर पेशवाओं तक का पता लगा लेती हैं। यदि आप उनकी बहुसंख्यक पुस्तकोंको पढ़ें तो अपनी ठोस बुद्धिसे उन्होंने गहन समस्याओं पर जिस प्रकार आक्रमण किया है, उसको देखकर आपके ऊपर आश्चर्य-जनक प्रभाव पड़ेगा। पुराने कागजों, ताम्रपत्रों, उत्कीर्ण लेखों और दर्शनकी सहायता से, वे ऐतिहासिक अनुसन्धान के विषयको जिस पूर्णता के साथ अपने हाथमें लेते हैं, वह उनकी अपनी विशेषता है। उनकी सूक्ष्म बुद्धि, चित्तकी एकाग्रता एवं निष्ठा, सांसारिक सुख और सम्मानके असीम त्यागने उन्हें अपने देशवासियों की अमर कृतज्ञता का अधिकारी बना दिया है। राजवाड़े स्वभाव और रुचिसे एक अनुशासित विद्वान् थे। जीवनमें उनके लिए कोई दूसरा आकर्षण न था। 'बल' के बिना उनकी कल्पना नहीं की जा सकती। वे मनसे सबल, शरीरसे सबल, अपने विश्वासोंमें सबल, और कहां तक कहा जाय—अपने पक्षपातपूर्ण निर्णयोंमें भी—जिनकी संख्या उनमें बहुत अधिक थी, सबल थे। यदि उनका मार्गदर्शन उतना ही दोषरहित होता, जितनी देदीप्यमान उनकी व्याख्या (interpretation) हुआ करती थी, तो वास्तवमें वे भारतमें ऐतिहासिक अनुसन्धानकर्ताओंके महान् नेता बन जाते।

राजवाड़ेकी नाना प्रकारकी रचनाओं तथा अनुसन्धानोंसे लगभग दस पुस्तकें और तैयार हो जाती हैं। बिना अच्छी तरहसे गिने, अन्दाजसे में कह सकता हूं कि उन्होंने लगभग १५,००० छपे हुए पृष्ठ, किसी भी व्यक्तिका सहारा लिये बिना, अपनी प्रारम्भिक शक्ति तथा साधनसे, उपस्थित किये हैं। तो भी, उनकी रचनाएं भारी

भरकम और भद्दी हैं, तथा अपने पाठकोंकी सुविधा या योग्यता का ध्यान कभी नहीं रखतीं। वह किसी की रुचिकी सामग्री नहीं प्रस्तुत करते। उनके लम्बे प्राक्कथन और विवेचनाएँ कहीं भी और किसी भी पुस्तकमें आ जाती हैं, जिनको समझना प्रायः साधारण विद्यार्थीके बूतेके बाहर होता है, परन्तु जब उनका अध्ययन सावधानीके साथ किया जाता है, तो सारी मेहनत वसूल हो जाती है। उनमें केवल उच्च श्रेणीका पांडित्य ही नहीं मिलता, वरन् मर्मभेदी आलोचना भी मिल जाती है।

५. परसनीस (Parasnis).

राजवाड़े के उदाहरणसे शीघ्र ही अन्य कार्यकर्त्ता मैदानमें उतर आय। सतारा के स्वर्गीय राव बहादुर डी० बी० परसनीस ने इस कार्यके लिए अपनी सेवा प्रदान की, जिसका स्थान राजवाड़े की सेवाओंके बाद ही आता है, और जो शायद अतीतकी घटनाओंका अध्ययन एवं प्रयोग करने में, विद्यार्थीकी तुरत-सेवा करनेके लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। परसनीस को उच्च शिक्षा अथवा विश्वविद्यालयकी शिक्षा न मिल सकी थी, परन्तु ईश्वर ने उन्हें अद्भुत स्मरण शक्ति और काम करनेकी असीम क्षमता प्रदान की थी, जिसके बल पर उन्होंने अपना काम किया, और वह भी बिल्कुल अपने आय-साधनोंसे। उन्होंने काग़जों, कठिनता से प्राप्त होने वाली पुस्तकों, चित्रों और अन्य सामग्रियोंको एकत्र किया, जिनसे सतारा का ऐतिहासिक संग्रहालय बना, और जो अब सार्वजनिक प्रयोग* के लिए धरोहरके रूपमें सरकारको सौंप दिया गया हैं। जब कि राजवाड़े ने सरकारसे बिना किसी तरह की मदद लिये, सारा काम अपने आप किया तो दूसरी ओर परसनोस ने सरकारकी सहायता और सहयोगका अधिक से अधिक उपयोग किया। उन्होंन भी «भारतवर्ष» और «इतिहास-संग्रह» नाम की मासिक पत्रिकाओंमें सामग्रियों (ऐतिहासिक) के लगभग ४० खंड छापे हैं, जो मेरे विचारमें मोटे तौर पर गिननेसे लगभग १५,००० पृष्ठोंमें होंगे, और जिनके मुख्य भागमें प्रसिद्ध मराठा राजनीतिज्ञ नाना फ़ड़नीस का «दफ़्तर» या रिकार्ड हैं जो उनकी (नानाकी) मृत्युके बाद महाबलेश्वर की पहाड़ियोंके दक्षिणी भागमें स्थित मेनावली (Menavli) में, उनके घरमें, रख दिये गये थे।

* यह संग्रहालय १९३९ में पूना में स्थापित कर दिया गया।

६. खरे.

दूसरे नमूने और भिन्न साधनोंसे युक्त, परन्तु अध्ययन एवं कार्यमें समान रूपसे रत एक अन्य विद्वान् थे, स्वर्गीय वासुदेव वामन शास्त्री खरे, जो मिराज के हाईस्कूलमें संस्कृत अध्यापक थे। उन्हें मिराज (दक्षिणी महाराष्ट्रमें) के पटवर्धन सरदार के परिवारवालोंके पास लाभदायक पत्र प्राप्त हुए, जिनका सम्बन्ध १८वीं शतीके अंतिम अर्द्ध भागसे था। उन्होंने बुद्धिमानीके साथ उनको छांटा और सुव्यवस्थित एवं सुझाव-पूर्ण भूमिकाओंके साथ उनकी व्याख्या की और उन्हें प्रकाशित किया। अब तक वे १४ पुस्तकें लिख चुके हैं जिनमेंसे हर एकमें ६०० पृष्ठ हैं। खरे की अपूर्व बुद्धि, राजवाड़ेकी अपूर्व बुद्धिकी तरह, ऊँची उड़ान न लेते हुए भी, सामान्य विद्यार्थीके लिए तत्काल अधिक लाभदायक सिद्ध होती है। उनके पुत्र ने अब पंद्रहवीं पुस्तक प्रकाशित की है।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त भारतीय ऐतिहासिक रिकॉर्ड कमीशन (Indian Historical Records Commission) भी, जिसकी बैठकें विभिन्न केन्द्रोंमें होती रहती हैं, उस उत्कट रुचिका परिणाम है जो सरकारने इस राष्ट्रीय विषयके प्रति दिखायी है। व्यक्तिगत प्रयासोंमें, जिनकी चर्चा ऊपरकी जा चुकी है, जो कुछ कमी थी वह बम्बईकी सरकार द्वारा पूरी कर दी गयी। उसके पास पुराने मराठी और अंग्रेजी रिकार्डोंके ढेरके ढेर थे जो बम्बईके सरकारी कार्यालय (Bombay Secretariat) और पूना के एलिनेशन ऑफ़िस (Alienation Office) में रखे हैं। पूना के एलिनेशन दफ़्तरमें वे काग़जात रखे हैं जो «पेशवा का दफ़्तर» कहलाते थे। उनमेंसे परसनीसने छांट-छांट कर काग़ज निकाले और प्रत्येक पृष्ठके निचले भागमें उपयुक्त संक्षिप्त सूचनाओंके साथ, पत्र-व्यवहार तथा अन्य पत्रों (Papers) की नौ सुन्दर पुस्तकें छपवाईं। वे «पेशवाओंके रोजनामचों» के नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु «पेशवा का दफ़्तर» पुराने काग़ज़ोंका, जिनमेंसे अधिकांश शासन-सम्बन्धी और कुछ ऐतिहासिक हैं। अथाह भंडार है। वहां मराठी भाषा और मोड़ी-लिपिमें लिखे हुए २७,००० से अधिक बंडल और लगभग ८,००० अंग्रेजीकी फ़ाइलें हैं। हालमें, सरकारने इन रिकार्डोंकी पूरी तौर पर जांच करवाई है, और अंग्रेजीके फुट-नोटों सहित कई हजार पत्र (letters) छापे हैं। इस कामसे मराठा-इतिहास का बहुत बड़ा उपकार हुआ है। बम्बई-सरकारकी ओरसे इन रिकार्डोंकी एक उप-

योगी हस्त-पुस्तिका (छोटी किताब) या मार्ग-दर्शक भी निकाल दिया गया है, और सच्चे विद्यार्थियोंको अब वहीं जाकर रिकार्डोंका निरीक्षण करनेकी पर्याप्त सुविधाएँ दे दी गई हैं (सरकारकी तरफ़से)।

७. पूना का बी० आई० एड० मंडल.

परन्तु यह सोच कर कि जनता के मनमें उचित ऐतिहासिक प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए व्यक्तिगत प्रयास पर्याप्त न थे, राजवाड़ेने बहुत दिन पहले ही यह सुझाव दिया था कि हमको प्रदेशविशेषमें पाई जानेवाली ऐतिहासिक सामग्रियोंकी पूरी तौरसे छानबीन करनेके लिए, उनको इकट्ठा करने, उनकी विवेचना करने और सुभीतेसे उनको प्रकाशित करनेके लिए, महाराष्ट्रके प्रत्येक मुख्य नगरमें तथा बाहर, विद्वानों और कार्यकर्ताओंको छोटी-छोटी संस्थाएं बना लेनी चाहिए, ताकि अन्तमें उनके द्वारा किये गये कार्योंका एकीकरण किया जा सके। निश्चय ही ऐसी ऐतिहासिक सभाओंका जाल सबसे अधिक लाभदायक होता, पर पूना, सतारा, धूलिया, बड़ौदा, इन्दौर आदि कुछ जगहोंको छोड़ कर, यह सुझाव सब जगह नहीं माना गया। फिर भी, उन सबमें पूना के «भारत इतिहास संशोधक मंडल» ने बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली है। उसके पास विभिन्न श्रेणियोंके, एक हज़ारसे अधिक चंदा देने वाले सदस्य हैं, अग्निसे सुरक्षित एक सुन्दर भवन है और छपी हुई सामग्रीकी ३० से अधिक पुस्तकें हैं, जिनमें पुराने काग़ज़ों, आलोचनात्मक निबन्धों तथा सूचनाओंका एक काफ़ी बड़ा भंडार है। «मंडल» की सीमा बड़ी विस्तृत है जैसा कि उसके गर्वीले नामसे विदित होता है। इस मंडलने केवल इतिहासके लिए ही सारा परिश्रम नहीं किया, वरन् प्राचीन काव्य, घरेलू कथा-कहानियां, और देशमें गाये जानेवाले विरहोंके संकलनकी ओर ध्यान देकर, भाषा-सम्बन्धी अध्ययन भी किये जिनसे उनके आधेसे ज्यादा छपे हुए पन्ने भर गये। परन्तु मंडलकी सबसे बड़ी सेवा नई सामग्रियां उपस्थित करना नहीं है—उसका इससे भी बड़ा काम है—अपनी अर्द्ध मासिक तथा वार्षिक बैठकोंमें वादविवाद करना, असंख्य गूढ़ प्रश्नों एवं समस्याओंका हल निकाल लेना, उनके सम्बन्धकी छोटी-छोटी बातोंका पता लगाना, प्राप्य प्रमाणको अलग करके तिथियों और घटनाओंको निर्धारित करना और इस प्रकार बहुतसे वाद-विवादों को तय करना।

शिवाजी, उनकी माता, उनके पिता और पितामह की जीवन-वृत्तियों की तथा उनके बहुतसे मामलोंकी जांच अच्छी तरहसे कर ली गयी है और उस प्राचीन कालसे सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी लाभदायक बातोंका पता लग गया है। अकस्मात् स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने कठिनाईसे प्राप्त होने वाले उस दस्तावेजको ढूंढ़ निकाला जो «जेधे शकावली» के नामसे प्रसिद्ध है और जिसके कारण शिवाजी के जीवन तथा इतिहासको, और उनकी गतिविधियोंको अधिक निश्चित रूप प्राप्त हो गया है। मंडलमें लोकप्रिय समर्थनका अभाव है, विशेष रूपसे धनी वर्गों का। दक्षिणमें अनेक निर्धन अनुसंधानकर्ता धनाभावके विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं, और यदि पर्याप्त धन मिल जाय तो «मंडल के» प्रकाशनोंकी संख्या में शीघ्र ही अमूल्य वृद्धि हो जायगी। उसका प्रचार भी कम ही है, क्योंकि उसका सारा काम मराठीमें होता है, जो उस भाषा को न जानने वाले लोगोंके पास तक नहीं पहुंच सकती। धूलिया संस्था के कार्यकर्त्ताओं ने पहले अपनी शक्तियों तथा सम्प्रदायके साहित्यकी ओर, जो प्रकृति से बड़ा प्रभावोत्पादक होते हुए भी मराठोंकी मुख्य ऐतिहासिक धारा को केवल आंशिक रूपमें छू पाता है, निर्देशित किया। अब उन्होंने एक भवन बनवा लिया है जहां राजवाड़े द्वारा संकलित सामग्रियाँ सुरक्षित हैं और अध्ययनके लिए दी जाती हैं। वे मराठीमें «संशोधक» नामकी एक साप्ताहिक पत्रिका निकालते हैं और राजवाड़े द्वारा संकलित सामग्रियों को मुद्रित करते हैं।

ये सारे प्रकाशन, और अन्य व्यक्तिगत कार्यकर्त्ताओंके प्रकाशन, सब मिलाकर, मेरे विचारसे, लगभग ३०० छपी हुई पुस्तकें या मराठीके लगभग एक लाख पन्ने हो जायेंगे, और लगभग इसका चौथाई और फ़ारसी, अंग्रेजी तथा दूसरी भाषाओंमें छपा हुआ मिल जायगा, जो विशेष रूपसे मराठा इतिहास से सम्बन्धित है। एक बार कुछ मित्रोंकी सहायता से मैंने विषयके ऊपर लगभग ३०० छपी हुई पुस्तकें गिनी थीं। यह एक बहुत बड़ा, भयंकर बोझ जान पड़ता है, पर उसका वास्तविक रूप क्या है, और उसने किस प्रकारकी सेवा की है, ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनके विषयमें, मैं सोचता हूं कि मुझे कुछ अवश्य कहना चाहिए। शिवाजी-कालके इतिहासका, जिसकी तिथि मोटेतौर पर १६००-१७०७ तक है, क़रीब-क़रीब नव-निर्माण हो चुका है। चूंकि अब लगभग ३० वर्ष पहलेके मुक़ाबिलेमें हमारे पास कहीं अधिक ठोस तथ्य मौजूद हैं, इसलिए पूर्ण और प्रामाणिक विस्तृत वर्णनकी सहायता से शिवाजी और उनके पूर्वजों की जीवन-वृत्तियोंको पूर्णरूप से बदलनेका समय आ गया है। इसका श्रेय मुख्य रूपसे,

महाराष्ट्रके बाहर, सर यदुनाथ सरकार को मिलना चाहिए, क्योंकि उनके बिना, फ़ारसी साधनों तथा योरोपीय रिकार्डोंका प्रयोग पहले न किया जाता; पर वह श्रेय समान रूपसे पूना के «भारत इतिहास मंडल» के गांव-गांव जाकर लगनके साथ काम करने वाले सदस्योंके समूहको भी मिलना चाहिए, जिनके अगुआ राजवाड़े थे। सर यदुनाथ सरकारने हाल में जयपुरके प्राचीन-ग्रंथ-रक्षा-गृह में शिवाजी और उनके उत्तराधिकारियोंके जीवनसे सम्बन्ध रखने वाले बहुतसे मूल्यवान्, तत्कालीन काग़ज़ात और मुग़ल-दर्बारके समाचारवाहक पत्र खोज निकाले हैं। इस समय सरकार अपने बिल्कुल हालके प्रकाशन, «दि हाउस ऑफ़ शिवाजी» में उपयुक्त रूपमें इनको प्रकाशित करनेमें व्यस्त है।

मराठा-इतिहासके दूसरे काल पर भी अर्थात् १७०७ से १८०० तक, जिसको मोटेतौरसे पेशवायुग कहा जा सकता है, काम किया जा चुका है। अभी थोड़े दिन पहले तक, पूर्वार्द्ध, अर्थात् १७६१ में होने वाली पानीपत की लड़ाई तक केवल थोड़ीसी सामग्रियां प्राप्त थीं। राजवाड़ेकी पहली सात पुस्तकोंने इस युगकी पुनर्व्यवस्था सम्भव कर दी। उसके लिए इरविनकी «बादके मुग़ल बादशाह» (Later Mughals) का पहला और दूसरा भाग भी आंशिकरूपमें उपयोगी है। डा० आशीर्वादीलाल की «अवधके पहले दो नवाब» और «शुजाउद्दौला», डा० खानका «निज़ामुलमुल्क», डा० रघुबीरसिंह का «मालवा-परिवर्तनमें» (Malwa in Transition), इस युग पर हालमें लिखी हुई कुछ पुस्तकें हैं। अब बम्बई-सरकार द्वारा अपने पूना के प्राचीन-ग्रंथ-रक्षा-गृह से प्रकाशित होने वाली तमाम सामग्रियोंका सावधानीके साथ अध्ययन और पहले तीन पेशवाओं के उचित इतिहास का निर्माण करनेके लिए उनका एकीकरण किया जा सकता है। इन संकलनोंके कारण बहुतसे ऐसे नये लेखक और घटनाएं प्रकाशमें आ गई हैं, जिनको पहले शायद ही कोई जानता रहा हो। पानीपतके बाद वाले समय पर पहले ही से बहुत अधिक मौलिक सामग्रियां हैं। और जिस प्रकार शतीके पूर्वार्द्धमें काग़ज़ातोंकी कमीके कारण इतिहासकारके काममें बाधा पड़ती रही है, उसी प्रकार यहां पर (उनके आधिक्यके कारण) चुनाव एक कठिन कार्य बन जाता है। पेशवा नारायणरावकी हत्या से लेकर सालबाईकी सन्धि तक, १७७३-८३ के दस वर्ष मौलिक पत्रोंसे भरे पड़े हैं। मुझे गिनकर आश्चर्य हुआ कि उनकी संख्या मराठी और अंग्रेज़ीमें छपे हुए ६,००० पृष्ठोंसे अधिक है। दि पूना रेज़ीडेंसी करेस्पॉन्डेन्स सिरीज़, ग्वालियर द्वारा प्रकाशित महादजी

सिंधिया केकाग़ज़ात, दि गुलगुले दफ़्तर ऑफ़ कोटा और सतारा संग्रहालयके कागजातोंसे तैयार किये हुए सतारा इतिहास सभा के दो खण्ड, ये कुछ और साधन हैं जिनसे विद्यार्थी लाभ उठा सकता है।

जैसा बिल्कुल स्वाभाविक ही है—समयने बहुतसे पुराने रिकार्डोंको नष्ट कर डाला है, पर हम जैसे-जैसे वर्तमान समय के निकट पहुंचते जाते हैं, वैसे-वैसे कागजात केढेरके ढेर हमारे उपयोगके लिए प्राप्त होते जाते हैं। निकट भविष्यमें महाराष्ट्रमें हमारे सामने संग्रह करने के लिए नई सामग्रियोंकी खोज करनेकी समस्या उतनी बड़ी नहीं है जितनी कि खोजी हुई सामग्रियोंका संकलन करने, मुद्रित करने, प्रकाशित करने और उनके आधार पर एक विश्वसनीय इतिहासका निर्माण करनेके लिए उनका उपयोग करनेकी है। एक आध जगह त्रुटि रह जाना तो निश्चित ही है, पर कालकी गतिके साथ-साथ वे दूर की जा सकती हैं। अतएव यदि हम अब तक मराठीमें लगभग ३०० पुस्तकें छाप चुके हैं, तो उन काग़ज पत्रोंकी चर्चा तो छोड़िये जो व्यक्तिगतरूपमें लोगोंके पास हैं और जिनकी अभी तक कोई खोज खबर नहीं ली गई है। पूना, धूलिया, कोटा और दूसरे स्थानोंमें रखे हुए ढेरके ढेर काग़ज़ोंसे जो अभी तक बिना छंटे पड़े हैं, उतनी ही और किताबें आसानीके साथ, लाभदायक ढंगसे निकाली जा सकती हैं।

८. सारदेसाई.

सामग्रियोंके ऊपर जितनी भी किताबें छपी हैं उन सबमें केवल खरे की पुस्तकोंमें सब चीजें सावधानीके साथ क्रमसे रखी गयी हैं और उनकी व्याख्या की गयी है, जब कि राजवाड़े और परसनीसकी रचनाओंमें न तो कोई व्यवस्था है और न तारतम्य। अतएव ऐतिहासिक क्रम और विषयोंके अनुसार उनको पढ़ने, उनका वर्गीकरण करने सूची बनाने और ढंगसे रखनेका एक काम है जो मैंने आरम्भ किया था और जिसको अब «मराठी रियासत» के आठ खंडोंमें पूरा कर लिया है। यह आरम्भसे लेकर १८१८ ई० में मराठा शक्तिके नाश तक है। इस समय में «पेशवा के दफ़्तर*» से प्रकाशित नई सामग्रियोंकी सहायता से अपनी मौलिक मराठी पुस्तकोंको दोहराते हुए,

* मैं अपनी «रियासतों» के संशोधित संस्करण निकालता रहा हूं, और अब शाहूके शासन कालके अन्त तक पहुंच गया हूं। आगेका काम छपाईकी दिक्क़तोंके कारण रुका हुआ है।

मराठा-इतिहासके पेशवा-काल पर काम कर रहा हूं। अभी तक मैंने अपना सारा काम मराठीमें किया है, और इसके सिवा मेरे पास कोई उपाय भी न था, क्योंकि मौलिक पत्र अधिकतर मराठीमें ही मिलते हैं। राजवाड़े के कुछ सबसे अधिक महत्व-पूर्ण काग़ज़ात उनके १, ३, ६ और ८* खंडोंमें छपे हैं—जो दुर्भाग्यसे इस समय नहीं छप रहे हैं। आम तौरसे मराठी दस्तावेज़ोंमें न तो तिथियां हैं और न लिखनेवालों या जिनके लिए वे लिखे गये—उनके नाम हैं। स्थानों, व्यक्तियों तथा घटनाओं की सूची बनानेके लिए मुझे इन सबको पढ़ना और क्रमबद्ध करना पड़ा, उनमें दिये गये संदर्भों अथवा संकेतोंसे उनकी ठीक तिथियां ढूंढ़ निकालनी पड़ीं; और जब इस प्रकार व्यवस्थित कर दिये गये, तब वे अपनी कहानी आप ही सुनाने लगे। इसलिए मैंने नये काग़ज़ोंको ढूंढ़नेकी ओर उतना अधिक ध्यान नहीं दिया जितना कि उनका (काग़ज़ोंका) उपयोग करनेकी ओर, जो पहले छप चुके थे। इस प्रकार मुझे मौलिक साधनों द्वारा प्रकाशमें लाई हुई मराठा-इतिहासकी सम्पूर्ण गति का अध्ययन करनेका अवसर प्राप्त हुआ। जब राजवाड़े परसनीस, खरे और अन्य विद्वान् नये काग़ज़ोंको ढूंढ़ निकालने तथा प्रकाशित करनेके लिए अत्यधिक परिश्रम कर रहे थे, उस समय वे अपनी आंखोंके सामने पूरे मराठा-इतिहासका एक सम्बन्धित चित्र नहीं प्रस्तुत कर सकते थे। विशेष घटनाओं अथवा कालोंमें वे पहलेसे ही इतने अधिक लीन थे कि पूरेकी ओर ध्यान देनेका उनके पास समय ही न था। वास्तवमें उनकी शक्तियां, मुख्य रूपसे, पुरानी मराठी पांडुलिपियां पढ़नेमें लगी हुई थीं। यह किसी तरहसे आसान काम न था। बिना किसी हेरफेरके वे प्राचीन मोड़ी लिखावट में लिखी हैं, जो समय-समय पर बदलती रहती थीं। राजवाड़े लगभग अकेले व्यक्ति हैं जो पुराने समयकी मोड़ी को पढ़नेमें दक्ष हैं। उस युगके एक एक काग़ज़को एक दर्जनसे ज्यादा दफ़े पढ़ना पड़ता है, और कभी-कभी और बहुतसे लोगोंको यह देखने के लिए कि शायद वे कुछ कठिन शब्दों अथवा पत्रोंको बिना अशुद्धियोंके स्पष्ट कर सकें, वह दिखाना पड़ता है। साधारणतः पत्रों पर कोई तिथि नहीं है। कभी कभी सिर्फ़ दिन और महीना लिखा है। सिर्फ़ अधिकारी «सनदों» और रस्मी तौर पर राज्यकी ओरसे भेजे गये काग़ज़ोंके ऊपर तीन संवतोंमें तारीखें पड़ी हैं—मुसलमानी,

* राजवाड़ेका खंड ८, जिसमें अमात्य दफ़्तर के काग़ज़ हैं, बावदा (Bavda) के अमात्य द्वारा फिरसे छापा जा चुका है और बाज़ारमें बिक रहा है।

शालिवाहन शक और १६७४ ई० में अपने राज्याभिषेकके समय शिवाजी द्वारा चलाया हुआ संवत्। परन्तु देश भरमें होने वाली हजारों घटनाओंसे सम्बन्ध रखने वाले साधारण गैरसरकारी समाचार-वाहक पत्र नियमानुसार बिना तिथिके हैं, कभी कभी उनमें लिखनेवालों और पानेवालोंकी कोई चर्चा ही नहीं होती, प्रायः उनका ऊपरी भाग और नीचेका भाग--दोनों ही नष्ट हो गये हैं, और कुछ तो अपूर्ण पाये जाते हैं। राजवाड़े ने इस प्रकारके अपूर्ण काग़ज़ोंके ढेरके ढेर छापे हैं, जो एक साधारण पाठककी समझमें नहीं आयेंगे, किन्तु मैंने चूंकि शुरूसे ही व्यक्तियों, तिथियों, घटनाओं, स्थानों तथा अन्य सन्दर्भोंकी सूचियां बनाली थीं, इसलिए मैं अधिकांश अपूर्ण काग़ज़ोंको उनके ऊपर लिखी हुई बातों या उनके भावकी सहायता से स्पष्ट रूपमें पढ़ सकता था, और लगभग सभी तिथियोंको निर्धारित कर सकता था, जो बिल्कुल ठीक होती थीं या क़रीब-करीब ठीक होती थीं। «काव्येतिहास-संग्रह» का «पत्रेन वादी» खंड और हाल में प्रकाशित «ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार», दोनों ही वास्तवमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं, और सभी संशोधित तिथियों एवं अन्य आवश्यक सन्दर्भों सहित, अब ठीकसे उनका सम्पादन हुआ है और वे फिरसे छापे जा चुके हैं। वास्तवमें मेरी इन पुस्तकोंमें से अधिकांशकी मौलिक प्रतियां पूरीकी पूरी चिह्नित हैं, और बहुत से विद्वान् मुझे इस बातके लिए उत्तेजित कर चुके हैं कि मैं भावी विद्यार्थियोंके उपकारके लिए सभी प्रमाणित तिथियों एवं अन्य संशोधनोंको मुद्रित और प्रकाशित करूं। परन्तु इस समय मुझे इस लाभदायक कार्यको करनेकी छुट्टी नहीं है। बड़ी मुश्किलसे मैं दो बड़े मुद्रित संकलनोंको एक तरहसे कामचलाऊ सूचीपत्र तैयार करके प्रकाशित करानेमें समर्थ हो सका हूं। यहां पर मेरा मतलब है—परसनीस और पूना के बी० आई० मंडलके संकलनोंके साथ-साथ मराठा-इतिहास पर लिखी हुई समस्त मुद्रित पुस्तकोंकी पूरी सूचीसे, जिसमें उन सभी आवश्यक बातोंका सुविस्तृत वर्णन है, जिनकी आवश्यकता* एक अनुसन्धान कार्य करनेवाले विद्यार्थीको किसी समय भी पड़ सकती है। मैं इन सबकी चर्चा इसलिए कर रहा हूं कि बाहरके लोगों को इस बातका अन्दाज हो जाय कि महाराष्ट्रमें हम लोग किस प्रकारका कार्य करते

* सतारा के औंध जिलेके पन्त प्रतिनिधिके पास ये छपे हुए सूचीपत्र नाम मात्रके दाम पर प्राप्य थे; और पुस्तकों की सूची के० बी० धावले, पुस्तक-विक्रेता, बम्बई ४ के द्वारा २ आने प्रति कापी की दरसे बेची जाती है। पर अब सारी प्रतियां बिक चुकी हैं।

रहे हैं। इस क्रिया के लिए तमाम लिखापढ़ी की जरूरत है। और भी बाहरी व्याख्यानों, ऐतिहासिक रुचिकी विवेचनाओं अथवा लेखोंको, जो देश भरकी विभिन्न पत्रिकाओं तथा समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होते रहते हैं, सावधानीके साथ देखते रहना बड़ा जरूरी हो जाता है। अपने पूरे परिश्रमके साथ भी में यह दावा नहीं कर सकता कि मैं सब पूरा कर चुका या अब कुछ बाक़ी ही नहीं बचा। जरूर बहुत सी लाभ-दायक बातें मेरी नजरसे उतर गई होंगी। मेरा अध्ययन बढ़ता जाता है। मेरे अपने नोटों (notes) की सूचियां भी आये दिन बढ़ती जा रही हैं, और एक मनुष्यके काम करनेकी शक्तियोंसे परे होती जा रही हैं। इस काम में मैं दूसरोंकी सहायता का भी उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि विधि और व्याख्या की एकरूपता क़ायम रखनेके लिए, चाहे जैसे भी हो, सारे काग़ज़ात, एक आदमीकी नजरोंके सामने से गुजरना जरूरी हैं। दुर्भाग्यसे भारतीय परिस्थितियोंके अन्तर्गत किसी प्रकारका कार्य-विभाजन सम्भव नहीं है। यहां पर प्रकाशकगण, लेखकोंके परिश्रम में हाथ नहीं बटाते, जैसा कि योरोपमें होता है। मुझे स्वयं अपना क्लर्क, प्रतियां बनाने-वाला, रिकार्ड रखनेवाला, प्रायः स्वयं अपना मुद्रक तथा प्रकाशक बनना पड़ता है और कभी-कभी तो धन भी मुझे ही खर्च करना पड़ता है। मुझे सान्त्वना केवल इस बातकी है कि मेरे बहुतसे भाई—विद्यार्थी इस समय उन्हीं कठिनाइयोंका सामना करते हुए, मेरी तरह संघर्ष कर रहे हैं और यही एक तरीक़ा है जिससे हम सब एक दूसरेकी सहायता कर सकते हैं। मैं आपका ध्यान इन सब बातोंकी ओर इसलिए आकर्षित कर रहा हूं कि हम लोग उन छितरे हुए प्रयासों तथा साधनोंके बीच, जो देश भरमें, विशेष रूपसे महाराष्ट्रके बाहर, इस राष्ट्रीय कार्यमें लगे हुए हैं यथा-सम्भव एकीकरण प्राप्त कर सकें।

भारत एक महाद्वीप है जिसमें ऐसी अनेक भाषाएँ हैं जिन सबके पास थोड़ी बहुत प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रियां हैं। इस समय हमको प्रत्येक जातिके प्रतिनिधि विद्वानोंकी आवश्यकता है, जो उसकी (जातिकी) अपनी भाषा में काम करें और एक सामान्य माध्यमके जरिये अपने परिणामोंको प्रकाशित करायें। उच्चतर विचार तथा विचारोंके लेनदेनके लिए, वह माध्यम अभी काफ़ी लम्बे अरसे तक अंग्रेजी ही रहेगा। मैं केवल अपनी पहलेवाली पुस्तकों को ही अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित करनेके लिए अत्यधिक लालायित नहीं हूं, वरन् पूना में «पेशवा के बहुत बड़े दफ़्तर» को लेकर चार वर्ष तक काम करनेके बीचमें प्राप्त होनेवाले अपने अमूल्य अनुभवको भी

अंग्रेजीका बाना पहनानेके लिए व्यग्र हूं, ताकि वह मराठी* न जानने वाले पाठकों को प्राप्य हो सकें। प्राय: ऐसी परम्पराएं, छोटी-छोटी कहानियां, जनश्रुतियां, रिपोर्टें, कविताएं और बन्दीजनोंके गीत होते हैं जिनमें से हम जो कुछ ले सकते हैं, ले लेते हैं। पर अतीतकी घटनाओंकी शुद्ध व्याख्या करनेमें जो भी कठोर सत्य तथा मानवीय दोष शामिल हैं, उनका ध्यान हमको सदैव रखना चाहिए। इसी ढंगसे हम सब एक दूसरेकी सहायता कर सकते हैं और एक सामान्य उद्देश्यको लेकर अपने परिश्रमोंके बीच उचित मात्रा में सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

६. राष्ट्रीय इतिहासको प्रोत्साहन देनेवाली प्रवृत्ति—राष्ट्रके सम्मुख-कार्य.

इस विषय पर कहते हुए, में उस प्रवृत्तिकी व्याख्या करना चाहता हूं जिसके अनुसार, मेरे विचारसे, राष्ट्रीय इतिहास का अवलोकन किया जाना चाहिए। विदेशी लेखक प्राय: अप्रामाणिक,अविचार-पूर्ण निर्णयोंसे प्रभावित हो जाते हैं। एक इतिहासकार की उदासीनता की भी अपनी सीमाएं होती हैं। उसे अनिवार्य रूपसे इस बातका स्मरण रखना चाहिए कि वह अपने ही लोगोंके लिए लिख रहा है। वह उनके ज्ञानकी उन्नति, वैभव और हितकी इच्छा रखता है। वह जानता है कि राष्ट्रीय दोषों को ठीक करनेके लिए उसे उनकी ओर सहारेसे संकेत करना चाहिए, और सदा के लिए उन्हें उदास बना देनेके वास्ते उनका (दोषोंका) वर्णन कठोरता तथा बिना सहानुभूतिके नहीं करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह उनकी अच्छी बातोंके सम्बन्धमें सुझाव दे —इसलिए नहीं कि वे घमंडी अथवा गर्वीले हो जायं, वरन् इसलिए कि उन्हें अधिक महान् एवं श्रेष्ठ प्रयासोंके लिए प्रोत्साहन मिले। इतिहासकार वास्तवमें राष्ट्रके लिए वैसा ही है जैसा बच्चोंके लिए पिता। पारितोषिक और दंड दोनोंमें ही पिता के हृदय में सदैव बच्चोंके हितका ही ध्यान रहता है। यही कारण है कि सभी देशोंमें राष्ट्रीय इतिहास जनता के किसी व्यक्ति द्वारा ही लिखे गये हैं। निश्चय ही, हमें यह जान लेना चाहिए कि दूसरोंको हमारे लिए क्या कहना है ; पर सहानुभूतिपूर्ण प्रवृत्तिका अस्तित्व बराबर बना रहना चाहिए। क्योंकि दुनिया में न तो कोई इतना पूर्ण और निर्दोष

* मेरा यह स्वप्न अब मेरी «मराठों का नवीन इतिहास» पुस्तकके प्रकाशनसे पूरा हो चुका है।

है कि उसकी वाणी को देववाणी माना जा सके और नहीं कोई इतना अधिक निरर्थक है कि उसको पूर्णतया निन्दनीय ठहराया जा सके। उठती हुई पीढ़ीके सामने सारे राष्ट्रीय नायक, जिस रूपमें हम चाहें, उस रूपमें प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इसीलिए विदेशियों द्वारा लिखे गये इतिहासोंमें, जिन्हें हमारे कुछ अपने विद्वानों ने प्रायः किसी प्रकारका संशय मनमें लाये बिना ही प्रमाण मान लिया है, सम्यक् (right) प्रवृत्ति नहीं दिखायी पड़ती। निश्चय ही बहुतसे ऐसे इतिहास हैं जिनमें यह बात नहीं है। यहां पर में इस बातका एक उदाहरण देना चाहता हूं कि इतिहास प्रायः किस प्रकार ग़लत पढ़ा जाता है। १९वीं सदीके आरम्भमें पाश्चात्य लेखकोंने मराठा जागीरदारोंको रियासतों का संघ बनाते हुए दिखाया है। परन्तु संघका तात्पर्य है—एक विशेष अभिप्रायके लिए स्वतन्त्र तथा बराबरके साझेदारोंकी बीचमें की जाने वाली संधि। डेलॉस का संघ (Confederacy of Delos), यूनानके इतिहासका एक उदाहरण है, और प्रथम महायुद्धमें «एन्टेन्टे कॉर्डियेल» (Entente Cordiale) दूसरा। इस प्रकारका संघ मराठा रियासतमें कभी न था। निस्सन्देह जागीरदार थे, जिन्होंने भारतके विभिन्न भागोंमें अपना प्रभाव तथा सत्ता स्थापित कर रखी थी। परन्तु वे केन्द्रीय शक्तिके अधीन थे, पहले छत्रपतियोंके, और बादको पेशवाओंके; और यदि वे इंगलैंड के सामन्तोंकी भांति बार-बार केन्द्रीय सरकारकी आज्ञा का उल्लंघन करते थे तो उसका कारण यह था कि सरकार अपनी निर्बलता के कारण उनसे अपनी आज्ञा का पालन करानेमें असमर्थ थी। इन्दौर की प्रसिद्ध महारानी अहल्या बाई की मृत्यु १७९५ ई० में हुई। उस समय तक बराबर वे पेशवाओंके पास अपने वार्षिक आय-व्ययका हिसाब भेजती रहीं। पेशवा बाजी राव द्वितीयमें पूरे राष्ट्रका पक्षपातरहित मुखिया बननेके गुण न थे, अतः उसके पेशवा बननेके बाद ही से केन्द्रीय सत्ता खुल्लम-खुल्ला ठुकरायी जाने लगी। यहां तक कि महादजी सिन्धिया भी पेशवा या उसके एजेन्ट नाना फड़नीस की आज्ञा का उल्लंघन हमेशा न करता था। इसलिए लेखकों ने "संघ" शब्दका प्रयोग बाजीराव द्वितीयके इस युगके जागीरदारोंके लिए किया है। यह वह समय था जबकि अंग्रेजोंने पेशवा की राजभक्ति से उनको (मराठों) सदा के लिए दूर करनेके उद्देश्यसे उनके साथ अलग अलग सन्धियां करनी आरम्भ कर दी थीं—जैसे नागपुरके भोंसले, सिन्धिया या गायकवाड़। गायवाड़ पहला मराठा सरदार था जिसने अंग्रेजों के प्रस्तावोंको स्वीकार कर लिया और पेशवा से स्वतन्त्र हो गया।

भारतीय इतिहासके सामने और भी अनेक कठिनाइयां हैं। भारतमें तमाम

जातियां हैं, और विभिन्न सूबों के लेखकोंके बीचमें किसी प्रकारका उचित सम्बन्ध या सहानुभूति न होनेके कारण राष्ट्रकी सामान्य रुचियोंको हानि पहुंचती है। प्रायः एक मराठा या सिख या राजपूत अपनी निजी जातिको अधिक महत्व देनेके लिए तत्पर रहता है, जिसके कारण दूसरे लोग नाराज हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप, जैसा कि हम अपने चारों ओर देखते हैं, आपसमें तनाव और फूट पैदा हो गई है। फिर भी मैं सोचता हूं कि यदि हम अपने ऐतिहासिक अध्ययनमें, उन सभी तत्वोंकी सहायता से जो हमारे विषय में हैं, एक भारतीय राष्ट्रके निर्माणका आदर्श हमेशा अपने सामने रखें तो हम उन सब अच्छी बातों पर जोर देकर अपने को लाभ पहुंचा सकते हैं जो भारतकी हर एक जातिकी तरफ़से अपने अतीतके रिकार्डोंके आधार पर पेश की जा सकती हैं। दूसरे लोग अपने बारेमें जो कुछ कह सकते हैं, उसका हम सबको सहर्ष स्वागत करना चाहिए, बशर्ते कि उसके लिए उपयुक्त प्रमाण मौजूद हों। वास्तवमें भारतकी दो मुख्य जातियां, हिन्दू और मुसलमान, एक साथ रहनेके कारण अपने ऐतिहासिक अतीतमें बराबर एक दूसरेके पूरक रहे हैं, और व्यावहारिक रूपमें उनको नामके अलावा और किसी तरहसे अलग नहीं किया जा सकता। यदि उस मानवता की सेवा के लिए, जिसके लिए सम्पूर्ण पूर्वी जगत् पुकार मचा रहा है, हिन्दुओं का आदर्शवाद और मुसलमानोंकी व्यावहारिक (practical) प्रवृत्ति, दोनों एक साथ मिल सकते तो एशियाई जातियोंका पुनर्जीवन बहुत कुछ आसान हो जाता।

इस क्षेत्रमें काम करनेवालोंको अपने मन में इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी इतिहासको दृढ़ अथवा प्रवाह-हीन नहीं बनने दिया जा सकता। उसे हमेशा राष्ट्रका मार्ग-दर्शक बनना पड़ता है। इसलिए समय-समय पर उसे फिरसे लिखना आवश्यक होता है। ऐसा करना केवल इसलिए जरूरी नहीं है कि नये-नये तथ्य (ऐतिहासिक) खोज निकाले जाते हैं बल्कि इसलिए भी कि नेताओं और पात्रोंका मार्ग-प्रदर्शन करनेके लिए किसी समाजके जीवनमें उत्पन्न होनेवाले नये प्रसंगों, नई स्थितियों, और नये आदर्शोंका नये ढंगसे वर्णन करना अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त एक कारण और भी है—युगकी उन्नतिमें भाग लेनेवाला कुछ ऐसे सिद्धान्तों तक पहुंच जाता है जिनकी सहायता से अतीतके ऊपर नये ढंगसे विचार और निर्णय किया जा सकता है। इसीलिए इतिहासको हमेशा बढ़ते रहना चाहिए। वह एक उन्नतिशील विज्ञान है। उसके अन्दर, विश्वमें होने वाले परिवर्तन पुराने तथ्योंको एक नया महत्त्व प्रदान करते हैं और ऐसे प्रत्येक व्यक्तिको, जिसमें मौलिकता है और जो

सचमुच एक मर्मज्ञ विद्वान् है, पुराने तथ्योंमें कोई ऐसी चीजें दिखायी पड़ती हैं जो पहले नहीं देखी गयी हैं। बड़े लेखकों ने इतिहासके इस रूप पर हमेशा जोर दिया है।

अभी तक मैंने आप लोगोंको समझाया कि दक्षिण और पश्चिममें हम लोग किस प्रकार व्यस्त हैं; अब हम उत्तर और पूर्व की सहायता चाहते हैं। मैंने सुना है कि पूरे उत्तरी भारतमें फ़ारसी काग़ज़ोंके ढेरके ढेर हैं, जो तमाम बड़े-बड़े नगरों, संस्थाओं और व्यक्तिगत परिवारोंके पास पड़े हुए हैं; और यदि महाराष्ट्रकी तरह कार्यकर्त्ताओंका झुंड वहां पर भी जगह-जगह जाकर काग़ज़ोंको ढूंढनेका प्रयास करता तो न जाने कितने काग़ज़ और मिल जाते। यदि ये फ़ारसी काग़ज़ात ढंगसे रख दिये जायं और प्रकाशित कर दिये जायं, तो उनसे उत्तरी भारतकी जातियों तथा उनके कारनामोंकी एक नई जीवन-वृत्ति प्राप्त हो जायगी, और मराठी, अंग्रेज़ी तथा दूसरी भाषाओंके स्रोतोंसे जो सामग्री पहले मिल चुकी है उसकी अशुद्धियोंको दूर किया जा सकेगा, उसकी कमियोंको पूरा किया जा सकेगा। वास्तवमें हमें प्रत्येक भाषा में प्रतिनिधि कार्यकर्त्ता मिलने चाहिए, और प्राप्य साधनोंसे अपनी निजी कहानीके निर्माण करनेका काम उसके भरोसे पर छोड़ दिया जाना चाहिए। इस तरह, हम प्रत्येक परिवार, जाति या सम्प्रदायके उसके अपने विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किये हुए समस्त ऐतिहासिक अतीतको सर्वोत्कृष्ट, नवीनतम ढंगसे, एक साथ ही, प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार अलग-अलग योगदान करनेसे अन्तमें भारतका एक समझने योग्य संयुक्त एवं प्रमाणित इतिहास तैयार हो जायगा, पूरा का पूरा मौलिक साधनों से। हमको अब यही करना* है।

अंग्रेज़ी रिकार्डोंके भी ढेरके ढेर पड़े हैं, जिनका अध्ययन हम भारतीयोंको अपने दृष्टिकोणसे करना चाहिए। ईस्ट इंडिया कम्पनीके रिकार्ड कई खंडोंमें छापे जा चुके हैं और सचमुच मूल्यवान् हैं; परन्तु उनसे हमको उस प्रकारकी सूचना नहीं मिलती जो हमारे अपने इतिहासके लिए आवश्यक है। नई दिल्ली के इम्पीरियल रिकार्डस् (Imperial Records) और कई प्रान्तोंके सरकारी कार्यालयोंके रिकार्ड, अभी यों ही पड़े हैं। भारतीय विद्वानोंके हाथों उनका अनुसन्धान होना अभी

* भारतकी वर्तमान बदलती हुई राजनीतिमें भारतीय राष्ट्र का इतिहास लिखनेके लिए इस प्रकार की योजना पहले ही आरम्भ हो चुकी है। महाराष्ट्र के तमाम परिवारों ने अपने निजी इतिहास प्रकाशित कर लिये हैं।

बाक़ी है। जब इनके ऊपर सावधानीसे काम किया जायगा तब फ़ारसी और मराठी रिकार्डोंको उनके साथ मिलाकर एक ऐसी कहानी तैयार हो जायगी जो सबको मान्य होगी।

तत्काल अभी हमको जिस चीज़की सबसे ज्यादा जरूरत है वह है—पूरे पेशवा-कालके लिए, विशेष रूपसे १७०७ से लेकर १७७२ ई० तक के «कैलेन्डर ऑफ़ परशियन करेस्पांडेंस» (Calendar of Persian Correspondence) के छपे हुए खंडोंकी तरहके रिकार्ड; क्योंकि इस युगमें मराठोंका प्रभाव अपनी उच्चतम सीमा तक फैल चुका था। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि फ़ारसीके ये कैलेंडर अंग्रेजीमें मिलना सुलभ हो गया है। मैं जानता हूं कि यदि मराठीके कुछ सबसे महत्वपूर्ण काग़ज़ात अंग्रेजीमें प्रकाशित कर दिये जांय तो उन विद्यार्थियोंके लिए, जो मराठे नहीं हैं, वह समानरूपसे एक बड़ा वरदान होगा। इस तरहसे भारतके विचार और भाषा की दो मुख्य धाराओंके बीच पारस्परिक लेन-देन सम्भव हो सकता है। परन्तु मराठी काग़ज़ोंका अंग्रेजीमें अनुवाद करना क़रीब-क़रीब असाध्य है, क्योंकि अब तक उसकी लगभग ३०० किताबें तो छप ही चुकी हैं, जिनके बारेमें मैं पहले ही कह चुका हूं। अभी हालमें ही कुछ विश्वविद्यालयोंने बी० ए० से ऊपर वाली कक्षाओंमें भारतीय इतिहासको अध्ययनका एक विषय बनाया है; यदि उन्होंने बहुत पहले यह काम शुरू कर लिया होता, तो इस समय तक निश्चय ही परिणाम अधिक उत्साहप्रद होते। इस प्रकार आप देखेंगे कि यदि हमारे राष्ट्रीय इतिहासका निर्माण निश्चित एवं वैज्ञानिक आधारों पर होना है, तो विचार और वाद-विवाद के लेन-देन की कितनी बड़ी आवश्यकता है।

परन्तु इस प्रकारके राष्ट्रीय इतिहासको पूर्ण तथा सर्व-पक्षीय बनानेके लिए उसमें सभी विषयोंका हाल अनिवार्य रूपसे होना चाहिए। राजनीति तो उनमें से केवल एक विषय है, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि वह उसका एक आवश्यक अंग है। मराठी काग़ज़ोंमें सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सैनिक, व्यावसायिक, न्याय-सम्बन्धी तथा अन्य विषयोंके ऊपर उपयोगी सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है; किन्तु जब तक राजनीतिक क्रियाओंकी मुख्य धाराएं निर्धारित नहीं कर दी जातीं तब तक इन अन्य विषयोंके ऊपर सन्तोषजनक ढंगसे विचार नहीं किया जा सकता। महाराष्ट्र में अत्यधिक वाद-विवाद पहले ही हो चुका है; और कुछ प्रकाशित पुस्तकोंमें, विशेष रूपसे पूना के बी० आई० मंडलकी पुस्तकोंमें, पूरे भारतसे सम्बन्ध रखनेवाले तमाम

समाचार मिलते हैं। निश्चय ही इन पुस्तकोंका अंग्रेज़ीमें अनुवाद किया जायगा, ताकि महाराष्ट्रने जो कुछ देनेका प्रयास किया है, उसमें भारतीय महाद्वीपके दूसरे भाग, अपनी तरफ़से कुछ जोड़ने या सुधार करनेमें समर्थ हो सकें। एक बार धूलिया के एक सज्जनने प्राचीन न्यायसम्बन्धी काग़ज़ों तथा निर्णयोंका अध्ययन किया और उनकी सहायता से मराठोंके क़ानूनी शासनके ऊपर कुछ लाभदायक लेख छापे। कलकत्ता-विश्वविद्यालयके तत्वावधानमें प्रकाशित डॉ० एस० एन० सेन की «मराठोंकी शासन-सम्बन्धी तथा सैनिक प्रणालियां», दूसरी दिशा में मार्ग-दर्शक (Pioneer) का काम करती हैं। यद्यपि उनमें वर्णित विषय अभी तक अप्रौढ़ (crude) अवस्था में हैं, और बहुत सी ऐसी जरूरी बातोंमें उन्नति करनेकी आवश्यकता है, जिनके ऊपर नये अनुसन्धान आये दिन प्रकाश डाल रहे हैं, तथापि यह प्रयास हर तरहसे प्रशंसनीय हैं। भारतीय विश्वविद्यालयोंमें विद्यार्थियोंने विभिन्न विषयोंके ऊपर थीसिसें (Theses) तैयार की हैं, जो राष्ट्रीय इतिहासके लिए बड़ी लाभदायक हैं।

इतिहास उन महान् योद्धाओं और राजनीतिज्ञोंके कारनामोंका वर्णन करता है, जो अतीतके महत्त्वपूर्ण व्यक्ति रहे हैं, और यही उसका मुख्य उद्देश्य होता है। परन्तु छोटे-छोटे सैकड़ों और हज़ारों ऐसे व्यक्तियोंकी इच्छित सेवाओं एवं बलिदानोंके बिना, जिनमें थोड़ी बहुत योग्यता थी, और जो मुख्य धारा को अपना योगदान बराबर करते रहते थे, उस तरहका कोई भी कार्य पूरा नहीं हो सकता था। ग्रांट डफ़ और उन्नीसवीं सदीके आरम्भिक भागके कुछ दूसरे लेखकोंने मराठा-इतिहासमें प्रमुख भाग लेनेवाले कुछ व्यक्तियों तथा परिवारोंका यों ही थोड़ा सा जिक्र कर दिया है; किन्तु जब मैंने उन काग़ज़ोंके ढेरके ढेर, जिनका मिलना अब सुलभ है, जांचने शुरू किये, तब मुझे पता चला कि वे उस कालके तमाम बड़े और अच्छे नाम हैं जिनके कार्योंका वर्णन इतिहासको अनिवार्य रूपसे करना चाहिए। इस प्रकार मैं पाठकोंके सामने सभी जातियोंके सौ से अधिक परिवारोंका नया वर्णन प्रस्तुत करनेमें समर्थ हुआ हूं। उस वर्णनमें मैंने उनकी वंशावलियां, तिथियां और अन्य छोटी-छोटी बातें भी दे दी हैं, ताकि जब किसी काग़ज़में नये नाम मिलें, तो हम उन्हें तुरन्त पहचान सकें। इसके अतिरिक्त मैंने उन परिवारों और उनके सदस्योंके सभी व्यक्तिगत तथा सामाजिक विवरणोंको एकत्र करनेकी चेष्टा की है, ताकि हम उन दिनोंके, जब कि महाराष्ट्र व्यावहारिक रूपमें « स्वराज्य » का उपभोग कर रहा था, अपने सामाजिक जीवन और उसकी गतियों के सम्बन्धमें कुछ शिक्षाप्रद निष्कर्ष निकाल लेनेमें समर्थ हो सकें। यदि इन सब सौ

परिवारों और उनकी वंशावलियोंका सावधानीके साथ परीक्षण किया जाय, तो उनमें से बहुत-सी लाभदायक बातें निकल आयेंगी। जैसे उदाहरणके लिए उस समय के पुरुषोंका दैनिक जीवन सामान्य रूपसे किस तरह का था; जनसंख्या बढ़ने या घटनेके लिए दशाएं कहां तक अनुकूल थीं; किस प्रकारकी शिक्षा प्रचलित थी, और राष्ट्रके नैतिक एवं शारीरिक हितके ऊपर उसका प्रभाव किस तरहका पड़ता था। केवल यही एक तरीक़ा है जिससे हमारे राष्ट्रीय इतिहासका निर्माण धीरे-धीरे हो सकता है।

आगेके व्याख्यानोंमें, मैं हालमें होने वाले अनुसन्धान कार्यके द्वारा स्थापित की गयी कुछ मुख्य बातोंकी विवेचना करना आरम्भ करूंगा, ताकि आप लोगोंको इस बातका आभास मिल सके कि इस विस्तृत भारतीय महाद्वीपके एक सर्वमान्य राष्ट्रीय इतिहास की रचना करनेमें समर्थ होनेके पूर्व हमें अभी कितना अधिक काम करना बाक़ी है।

३

हिन्दू-समाज के सम्बन्ध में शिवाजी की धारणा

१. शिवाजी अपने पिता से संकेत प्राप्त करते हैं.

महाराष्ट्रकी परम्परा के अनुसार बहुत पहले ही यह माना जा चुका है कि शिवाजी का जन्म चित्तौड़के सूर्यवंशी सिसोदिया कुल में हुआ था। बीजापुर ज़िले में मुधोल (Mudhol) नामक स्थानके स्वर्गीय राजा, जिनका कुल-नाम घोरपदे* था, के पास फ़ारसीकी अनेक सनदें थीं। हालमें उन सनदोंकी प्रतिलिपियां प्रकाशित हो जानेके कारण उपर्युक्त धारणा और पुष्ट हो गयी है। मुधौलके इस परिवार और सतारा के छत्रपतियोंके पूर्वपुरुष एक ही थे, जिनका नाम था सज्जनसिंह। वे चित्तौड़के राणा लक्ष्मणसिंहके पोते थे। पठान बादशाह अलाउद्दीन खिलजीके आक्रमण ने चित्तौड़में जो भीषण विप्लव मचा दिया था, उसीके बाद सज्जनसिंह १३२० ई० के लगभग अपना घरबार छोड़ कर दक्षिण चले गये थे। कहा जाता है कि सज्जनसिंह, उनके भाई क्षेमसिंह, और उन दोनोंके उत्तराधिकारियोंने बहमनी राज्यमें गवर्नरों के पद पर काम किया था और समय-समय पर उनसे तमाम जागीरें पाई थीं जिनके मौलिक लेख-प्रमाण (दस्तावेज) अब अध्ययन† के लिए प्राप्त हैं। १४७० ई० के लगभग करणसिंह और शुभकृष्ण नामके दो भाइयोंने, जो सज्जनसिंहके वंशज थे, अपनी जायदाद (भूमि) का बंटवारा कर लिया; पहले अर्थात् बड़ेको मुधौलका दक्षिणी

* इन फ़रमानोंकी प्रामाणिकता के ऊपर गम्भीरता के साथ सन्देह किया जाता है। वे जाली कहे जाते हैं।

† डॉ० बालकृष्ण द्वारा लिखित « शिवाजी महान् » खंड १, भाग १।

भाग मिला, और छोटेको उत्तरी भाग, जो दौलताबाद और पूना के बीचमें स्थित था। खेलना (Khelna) या विशालगढ़ (एक दुर्ग विशेष), जो उस समय बहमनी बादशाहोंके प्रसिद्ध मंत्री महमूद गवां के अधिकारमें था, की दीवारोंको « घोरपद » (एक प्रकारकी छिपकली) की सहायता से सफलतापूर्वक लाँघ जानेके कारण मुधोल शाखा का कुल नाम घोरपदे पड़ गया था। शिवाजी के बाबा, मालोजी भोंसलेका, छोटे भाई शुभकृष्णके खानदानमें पांचवां नम्बर था। इस तरह यह जान पड़ता है कि सज्जनसिंह और मालोजी के बीचके तीन सौ वर्षोंमें (१३२०-१६२०) लगभग बारह पीढ़ियां हुईं। एक बार अलग हो जानेके बाद, भोंसले और घोरपदे अपनी-अपनी जीवन वृत्तियोंमें अपने-अपने भाग्यका अनुसरण करते रहे, और प्राय: एक दूसरे के प्रति घोर शत्रुता दिखाते रहे। हम जानते हैं कि जिंजीके निकट शाहजी भोंसलेको बन्दी बनानेमें बाजीघोरपदे ने किस प्रकार प्रमुख भाग लिया था और किस तरह बाद को शिवाजी ने बदला लेनेके अभिप्रायसे उसके ऊपर आक्रमण किया था और उसे मार डाला था। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि भोंसलें और घोरपदेकी तरह, दक्षिणके अनेक मराठा परिवार जैसे पवार (Pawars), जाधव, मोरे (Moreys) आदि भी अपनेको राजपूतोंका वंशज बताते हैं।

शिवाजी के पहलेके ढेरके ढेर मराठी और फ़ारसीके पुराने काग़ज़ात, जो हालमें प्रकाशित किये गयेहैं, शिवाजी और उनके पिता शाहजी तथा मालोजी की प्रारम्भिक क्रियाओं के ऊपर अत्यधिक प्रकाश डालते हैं। शाहजीने अहमदनगरके बादशाहोंके योग्य मंत्री मलिक अम्बरकी अधीनता में रहकर विशेष योग्यता तथा बहादुरीसे काम किया। छापामार (guerilla) युद्धकला से लाभ उठाकर, जो पश्चिमी दक्षिणके पहाड़ी प्रदेशोंके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है और जिसका प्रयोग बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगरकी सेवा में कार्य करनेवाले मराठा सर्दार बड़ी योग्यता से कर रहे थे, मलिक अम्बरने जहांगीर के दक्षिणमें अपना राज्यविस्तार के लिए लगातार किये जाने वाले प्रयासोंका पचीस वर्ष तक सफलतापूर्वक अवरोध किया।

अनेक विद्वानोंको इन घटनाओंमें एक विलक्षण तथ्य दिखाई पड़ा। वह यह है कि जिस प्रकार शिवाजी औरंगजेब ने अपने बीचमें, सत्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धका इतिहास बनाया, कुछ हद तक उसी तरह उनके पहले उनके पिताओंने भी उसी शताब्दीके प्रारम्भिक भागमें इतिहास का निर्माण किया। शाहजी (१५९४-१६६४) और शाहजहां (१५९२-१६६६) ने, जो आयु और व्यवहार (activity) दोनोंमें सम-

कालीन थे, युद्ध किया, जिसे बादको उनके लड़कोंने जारी रखा। उनके पितामह—जहांगीर और मालोजी ने सबसे पहले एक दूसरेका विरोध आरम्भ किया था। लखजी जाधोराव, निजामशाह के नीचे, जो उस समय दौलताबादमें रहकर शासन करता था, एक प्रभावशाली पद पर काम करता था। वह लड़ाईके आरम्भमें ही मुग़लोंसे जा मिला, जहां उसे अपने दामादका कई बार खुल्लमखुल्ला लड़ाईमें सामना करना पड़ा। १६२४ के अन्तमें होनेवाली भतवदीकी लड़ाईमें मलिक अम्बर शाहजी और दूसरे मराठोंकी सहायता से मुग़ल और बीजापुर की संयुक्त सेनाओंको बुरी तरहसे परास्त करनेमें सफल हुआ। इस काममें उसे गुरिल्ला युद्धकला से, जो उस समय बहुत विकसित हो चुकी थी, सबसे अधिक सहायता मिली। अगले तीन वर्षो (१६२४-१६२७) में शाहजहां और शाहजी दोनों को बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ीं। शाहजहां ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया; पिता की फौजोंसे बचनेके लिए शरणकी खोजमें हिन्दुस्तान भरमें घूमता रहा और लगभग एक वर्ष तक गुप्तरूपसे जुनार में, जिसके निकट शिवाजी का जन्म हुआ था, छिपा हुआ पड़ा रहा। उसी कालमें (१६२५-१६२७) शाहजीने मलिक अम्बरके व्यवहारसे रुष्ट होकर बीजापुरके सुल्तान आदिलशाहके यहां नौकरी कर ली। १६२७ ई० में जहांगीर और इब्राहीम आदिलशाह दोनोंकी मृत्यु हो गयी, और शाहजहां ने चन्द महीनोंमें अपने पिता की गद्दी प्राप्त कर लेनेके बाद दक्षिणके ऊपर दो बार महत्त्वपूर्ण आक्रमण किये (जनवरी १६३१--जून १६३२, और फ़रवरीसे जून १६३६)। दक्षिण पर विजय पानेके अधूरे कामको पूरा करनेके लिए उसने अपने साम्राज्यके सभी द्रव्यसाधनोंका प्रयोग (इन लड़ाइयोंमें) कर डाला। शाहजी ने, जो बीजापुरकी नौकरी छोड़ चुका था, सम्राटकी सेना का सात वर्ष तक (१६२६—१६३६) बहादुरी और निर्भयता के साथ डट कर मुक़ाबिला किया। इस घटना ने आगे चलकर युद्ध और नीतिकौशल दोनोंमें ही, उसके लड़के (शिवाजी) के लिए, अपनी जाति तथा धर्मको स्वतंत्र करानेके अभिप्रायसे विशाल योजनाओंका आरम्भ करनेमें एक जीतेजागते उदाहरणका काम किया। इस जमानेमें शिवाजी की बुद्धिमती माता जीजाबाईको जिन बिकट अनुभवों तथा अवर्णनीय दुःखोंका सामना करना पड़ा, उन्होंने शिवाजी के कोमल हृदयपटल पर एक अमिट छाप छोड़ी और उसे एक ऐसी प्रवृत्तिसे प्रेरित किया, जिसकी बराबरी करनेवाला इतिहासका शायद ही कोई उदाहरण मिल सके। शाहजी ने पूना को अपनी क्रियाओंका केन्द्र बनाया, वहां पर अपने रहनेके लिए बाग़ और घर बनवाये और प्रकृतिने उस पहाड़ी प्रदेशमें, जो मावल (Mavals) या अस्ताचल-

सूर्यकी भूमिके नामसे प्रसिद्ध था, जो विशेष स्थिति पैदा कर दी थी उससे पूरा-पूरा लाभ उठाया। वह पहाड़ी प्रदेश सह्याद्रि (Sahyadri) पर्वतमाला के दो ढालू टीलोंके किनारे पर फैला हुआ था। मोटे तौर पर उसकी स्थिति उत्तरमें जुनार और कल्याणसे लेकर दक्षिणमें वाई और रायगढ़ तक थी। इस कठिन प्रदेशको अहमदनगर और बीजापुरके बहमनी बादशाह या उनके उत्तराधिकारी सुव्यवस्थित शान्तिपूर्ण शासन के अन्तर्गत पूरी तरहसे कभी नहीं ला सके। वहां पर ज़मींदारोंकी बस्ती थी जो देशमुख कहलाते थे और आपसमें बराबर लड़ते-झगड़ते रहते थे। इस प्रकार उस प्रदेशके ऊपर एक तरहसे किसीका अधिकार न था। बल्कि यों कहना चाहिए कि वह एक ऐसे खूंटेकी तरह था जो दो राज्योंके बीचमें दबा हुआ था। शाहजहां एक बुद्धिमान् बादशाह था। उसने स्थितिकी विषमता को शीघ्र ही समझ लिया, इसलिए अहमदनगर* के अन्तिम अवशेषोंको निश्चित रूपसे नष्ट करनेके बाद वह वापस लौट पड़ा। आनेके पहले उसने शाहजीको महाराष्ट्रसे निकाल दिया; और उसको बीजापुरमें नौकरी करनेकी आज्ञा दे दी, ताकि वह अपनी बाक़ी ज़िन्दगीके लिए कर्नाटकमें अपने लिए दूसरा कार्य-क्षेत्र बना ले। इस तरह यह पता चल जायगा कि शिवाजी की आश्चर्यजनक जीवनवृत्ति अचानक होनेवाला कोई नवीन प्रवर्तन (innovation) या सह्याद्रि पर्वतमाला में उठने वाले दावानलकी तरह संयोगसे होनेवाला विस्फोट न थी, जैसा कि डफ़ ने दिखाया है। इसके विपरीत वह उस क्रिया का उचित विकास मात्र थी, जिसका आरम्भ मलिक अम्बरने किया और जिसे शिवाजी के पिताने योग्यतापूर्वक जारी रखा। उसीके कारण उनको (शिवाजी के पिताको) तत्कालीन लेखकों ने राज-निर्माता (kingmaker) की पदवी दी है जो बिल्कुल उपयुक्त है। इस दृष्टिकोणसे देखने पर यह विदित होता है कि शिवाजी की कृतियां केवल एक पग आगे थीं। उनकी माता चतुराईके साथ पिता और पुत्रके बीच सम्बन्ध स्थापित करनेवाले एक सूत्रके रूपमें कार्य कर रही थीं।

२. शिवाजी के जीवन की मुख्य घटनाएं.

अच्छा होगा कि मैं इस अवसर पर आपको उन मुख्य घटनाओंकी याद दिलाऊँ जिन्होंने शिवाजी को महाराष्ट्रका, और शायद पूरे भारतका, एक विलक्षण नायक बना

* बंटवारेकी सन्धि सरकारके «औरंगज़ेब», भाग प्रथममें दी हुई है।

दिया था। उनका प्रारम्भिक जीवन साहसिक कार्यों तथा धृष्टता से भरा हुआ था। चूंकि जन्म लेनेके बादसे शिवाजी अपने पिता से व्यावहारिक रूपमें अलग ही रहे, इसलिए उन्होंने जिन्दगीकी तमाम जरूरी बातोंकी तालीम अपनी मा और अभिभावक दादाजी कोंददेव (Kondadeo) से प्राप्त की। उनकी अपूर्व जीवन वृत्तिका आरम्भ जनता की नजरोंसे दूर पहाड़ी क़िलोंके बीच में हुआ, जहां उन्होंने स्थानीय जमींदारों से दोस्ती की, पुराने क़िलोंकी मरम्मत कराई, बहुतसे पुराने क़िलों पर अधिकार जमाया और नये क़िलोंका निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त पिता की जागीर* के उन सभी लोगोंको, जिन्होंने उनकी (शिवाजी) सत्ता का विरोध किया, अपना आधिपत्य स्वीकार करनेके लिए बाध्य किया। पहली महत्त्वपूर्ण घटना, जिसने उन्हें एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बना दिया, थी जावली के मोरे लोगोंपर १६५६ ई० में उनकी विजय। तीन वर्ष बाद, उन्होंने मुख्य रूपसे, सतर्क युद्धकौशल एवं चतुर कूटनीतिके द्वारा बीजापुरके शक्तिशाली सेनापति अफ़ज़लखां के विरुद्ध एक देदीप्यमान सफलता प्राप्त की, जिसके फलस्वरूप न केवल उनके सारे प्रतिद्वन्द्वियोंके हृदय भयसे कांप उठे, बल्कि एक मेधावी (gifted) और निर्भय नायकके रूपमें, जो सभी कुछ करने में समर्थ था, उनकी प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी। अगले चार वर्षोंमें उन्होंने औरंगजेब के सेनापति जसवन्तसिंह और शाइस्ताखां द्वारा अपने ऊपर (शिवाजी) विजय पानेके लिए किये जाने वाले प्रयासोंको विफल कर दिया, प्रसिद्ध मिर्जा राजा जयसिंह के साथ मित्रतापूर्ण समझौता कर लिया, और उसकी मंत्रणा के अनुसार १६६६ में आगरा जाकर सम्राट् के दर्बारके दर्शन किये। सर्वशक्तिमान् सम्राट् को खुल्लम-खुल्ला ललकारना और बन्दीगृहसे चमत्कारी ढंगसे भाग निकलना--ये दो बातें ऐसी थीं जिनके कारण वे तुरन्त भारतवर्ष भरमें मुग़ल-साम्राज्यके एक दुर्निवार (irresistible) शत्रुके रूपमें विख्यात हो गये, और यह समझा जाने लगा कि हिन्दू राष्ट्र की मुक्तिके लिए जरूर ही उन्हें ईश्वर की ओरसे प्रेरणा मिली है। इसके बाद वे बिना किसी रुकावटके नये-नये प्रदेश जीतते रहे और १६७४ ई० में रस्मी तौर पर एक स्वतन्त्र शासकके रूपमें राजमुकुट धारण किया और एक क्षत्रिय राजा के समस्त परम्परागत सम्मानको प्राप्त किया। अपने जीवनके अगले छः वर्षोंमें शिवाजी ने

* उनके महत्वपूर्ण जीवनके आरम्भकी पहली निश्चित तिथि १ अगस्त, १६४४ है जब दादाजी ने पश्चिमी प्रान्तकी राजधानी सिंघद पर अधिकार किया था; और शिवाजी का पैतृक स्वराज्य १६५३ तक पूरा हो गया था।

अपने राज्यका विस्तार कावेरी नदीके मुहाने तक कर लिया, परन्तु १६८० ई० में युवावस्था में ही अचानक उन्हें कालका ग्रास होना पड़ा। वे अपने पीछे एक अतुल विजेता, राष्ट्रनिर्माता तथा प्रेरक मूर्ति, और हिन्दुओंके बीचमें रचनात्मक कार्य करने वाले अभूतपूर्व बुद्धिके अन्तिम व्यक्तिके रूपमें अपनी जातिके लिए एक श्रेष्ठ उत्तरदान (legacy) छोड़ गये।

यहां पर मैं यह बताना चाहता हूं कि शिवाजी की महत्ता किस बातमें है और उनका उदाहरण किस प्रकार हर कालमें मनुष्योंके नेताओंको व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करता है।

मेरी रायमें शिवाजी की महत्ता यह थी कि उन्होंने मराठा जातिकी मानसिक दशाका रूप बदल दिया, और उसको अपने असाधारण नेतृत्वके ज़रिये भारतकी विभिन्न जातियोंके बीच सर्वश्रेष्ठ मान प्राप्त करनेमें समर्थ बना दिया। यह सभी जानते हैं कि शिवाजी के उत्कर्षके पूर्व एक शताब्दीसे अधिक समय तक पश्चिमी पहाड़ियोंमें रहनेवाली मराठा जातियोंका जीवन कितना कलहकारी, उपद्रवी और अराजकता से पूर्ण रहा था। वे एक दूसरेको बर्बाद करनेवाले पारस्परिक झगड़ोंमें पड़ कर अपनी शक्तिको नष्ट किया करते थे और किसी सत्ता का आधिपत्य न मानते थे। उनकी जान तथा माल बिल्कुल असुरक्षित दशा में थे। शिवाजी ने स्थितिका ठीक-ठीक अन्दाज लगा लिया। पहले तो उन्होंने उनकी अराजकतापूर्ण क्रियाओंमें हृदयसे भाग लिया और थोड़े ही दिनोंमें उनके विश्वासपात्र बन गये। उसके बाद फिर उन्होंने उनकी कलहप्रिय एवं साहसी प्रवृत्ति पर पूर्णरूपसे इस प्रकार अधिकार कर लिया कि उन्होंने शंकाहीन होकर उनकी आज्ञा का पालन और अपने देशकी स्वतंत्रता की रक्षा करनेके लिए संयुक्त राष्ट्रीय प्रयास आरम्भ कर दिया। झुंड बनाकर इधर-उधर घूमने वाले अनुशासनहीन मराठे शीघ्र ही इच्छासे की हुई मैत्रीका मूल्य समझ गये और दुःख-सुख दोनोंमें अपने नेता का अनुसरण करने लगे। इस प्रकार लगभग बीस वर्ष की छोटी सी अवधिमें देश भरमें लोग मराठोंके नामका आदर करने और उनसे डरने लगे। अन्तमें शिवाजी ने रस्मी तौर पर शास्त्रोंमें बताये हुए नियमोंके अनुरूप मराठा-राज्यकी नींव डाली और छितरे हुए, कलहकारी तत्वोंके बीच आवश्यक दृढ़ता स्थापित करके, एक अल्पकालीन परन्तु देदीप्यमान जीवनवृत्तिके पश्चात् एक अपूर्व बुद्धि वाले रचनात्मक कार्यकर्ता का जो उदाहरण छोड़ा वह अपने ढंगका अकेला ही है।

हम भारतीयोंको लड़ाई झगड़े और फूटसे उत्पन्न होनेवाले अपने वर्तमान कष्टों में, इस देदीप्यमान उदाहरणसे बहुत कुछ सीखना है। हमें आशा करनी चाहिए कि वह हमें प्रेरणा प्रदान करेगा।

३. रामदास तथा अन्य सन्तोंका प्रभाव.

चूंकि हमारे लिए यह समझना आवश्यक है कि मराठोंकी नीति क्या थी और वह समय-समय पर किस तरह बदलती रही, इसलिए हमें अनिवार्य रूपसे इतिहासका अध्ययन करना चाहिए और पुराने काग़ज़-पत्रों तथा लेखोंसे प्राप्त प्रमाणोंकी सहायता से यह निश्चित करना चाहिए कि जब शिवाजी ने एक स्वतंत्र मराठा-राज्यकी स्थापना करनेका कार्य आरम्भ किया उस समय उनका मौलिक उद्देश्य क्या था। शिवाजी ने भारतकी तमाम जातियोंके सभी लोगोंके लिए एक हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेका विचार किया था अथवा उनका ध्यान महाराष्ट्रमें अपने लिए केवल एक छोटा सा राज्य बनानेकी ओर ही लगा हुआ था ?—यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके ऊपर अत्यधिक मतभेद है। इसलिए प्राप्त प्रमाणों पर विचार करनेके बाद इस प्रश्न पर में जिस निर्णय पर पहुंच सका हूं, उसे आप लोगोंके समक्ष रख देना चाहता हूं। शिवाजी के राज्यका श्रीगणेश अपने पिता की छोटीसी «जागीर» से हुआ जिसके अन्दर आजकलके हिसाबसे क़रीब-क़रीब दो छोटे ताल्लुके अर्थात् जुनारसे सूपा (Supa) तक थे। शिवाजी ने, १६८० में अपनी मृत्युसे पहले, अपने राज्य को, जैसा कि में पहले ही कह चुका हूं, मोटे तौर पर पश्चिमी सागरसे, पूर्वमें भीमा नदी तक और उत्तरमें ताप्ती से लेकर दक्षिणमें कावेरी तक फैला लिया। मैं पहलेही दिखा चुका हूं कि शिवाजी अपने को हिन्दू धर्मका नेता मानते थे; अपने धर्मकी रक्षा के ही लिए उन्होंने मुसलमानोंकी छेड़छाड़के विरुद्ध युद्ध करने आरम्भ किये थे। शिवाजी का उद्देश्य निश्चित करनेमें हमको उनके चारों ओरके उस वातावरणका विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिएजिसमें उनका जन्म तथा पालन-पोषण हुआ और जिसका वर्णन उन भारतीय सन्तोंकी तत्कालीन रचनाओंमें बहुतायतसे पाया जाता है, जिन्होंने राजनीतिका उपदेश धार्मिक शब्दों में दिया। इन महात्माओं ने समझ लिया था कि मुसलमानी शासन पूरे उत्तरी भारत के लिए असह्य हो रहा था; दक्षिणमें शिवाजी ने, जो अपने को हिन्दू धर्मका नेता कहते थे, पुनर्जीवन का कार्य आरम्भ कर लिया था। इनमेंसे अधिकांश महात्माओंने

हिन्दुस्तान भरमें दूर-दूर यात्रा की थी और विभिन्न स्थानोंके लोगोंके साथ स्वतंत्रता-पूर्वक मिलकर बातचीत की थी। इस सिलसिले में उन्होंने अपनी आंखोंसे हिन्दुओंके कष्टमय जीवनको देखा, और देखा उनके मंदिरों, अलौकिक पदार्थों एवं पवित्र स्थानों का नाश। साथ ही उन्होंने उनके साथ, अपने ढंगसे, बिना किसी हिचकके इस बातकी विवेचना की कि अपने धर्मकी रक्षा करने तथा अपने ऊपर होने वाले अत्याचारोंसे मुक्ति पानेके लिए सम्भवतः कौनसे उपाय किये जा सकते थे।

रामदास ने, जिनका जन्म शिवाजी से २० वर्ष पूर्व और मृत्यु दो वर्ष पश्चात् हुई, धार्मिक पुनर्जीवनके अभिप्रायसे अपना स्वतंत्र आन्दोलन आरम्भ किया। इसी उद्देश्यसे उन्होंने अनेक स्थानोंमें रामदासी «मठ» स्थापित किये, और अपने ढंगसे राजनैतिक नेताओंके प्रयासोंको यथासम्भव सहायता देते रहे। कहा जाता है कि रामदास ने पूरे भारतवर्षमें कुल मिलाकर लगभग ८०० «मठ» क़ायम किये, जिनमें से ७२ के क़रीब मठ ज़्यादा मशहूर रहे हैं। भारतके सुदूर-दक्षिण तक उनके उपदेशों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। सुदूर दक्षिणमें तंजौरके सूबेमें, रामदास-सम्प्रदायके अनुयायियोंकी संख्या बहुत अधिक थी, और उनके बाद २०० वर्षों तक, रामदास के इस तंजौरी वर्गके अनुयायी अपार मराठी-साहित्यका उत्पादन करते रहे। तंजौरके सूबेमें मराठी की बहुत-सी कविताएं, शब्दकोष, व्याकरण, नाटक, आल्हे और इतिहास लिखे गये। इसका मुख्य कारण यह था कि वहां के राजा स्वयं विद्वानोंके आश्रयदाता थे और उन्होंने इन रचनाओं में व्यक्तिगत रूपसे अत्यधिक भाग लिया था। इस प्रकार मराठी-साहित्यमें होनेवाली उन्नति के परिणाम तंजौरके सरस्वती-मन्दिरमें स्पष्ट रूपसे दिखायी देते हैं। आनन्द-तनय और रघुनाथ पण्डित तंजौरके सबसे प्रसिद्ध मराठी कवि थे। वे रामदास के उपदेशोंके अनुयायी माने जाते हैं। वहां उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक भागमें बृहदेश्वर (Brihadeshwar) के मन्दिरकी पत्थरकी दीवारों पर, बड़े-बड़े सुन्दर देवनागरी अक्षरोंमें एक मराठी लेख उत्कीर्ण किया गया था। उस लेखमें तंजौरके मराठा-राज्यके पूरे इतिहासका वर्णन मिलता है। अब वह छोटे छापेकी लगभग १३० पृष्ठोंकी पुस्तक के रूपमें फिरसे लिखा गया है। इतना बड़ा ऐतिहासिक शिलालेख संसार भरमें और कहीं नहीं मिलता। शिवाजी की मृत्युके समय महाराष्ट्रमें रामदासी सम्प्रदायके अनुयायियोंकी संख्या लगभग १,२०० थी। एक विशेष प्रकारके लोगोंको इतनी बड़ी संख्या में देशके उत्थानके लिए कार्य करते हुए तथा महाराष्ट्रके भावी भाग्यको ढालनेमें जनता के हृदयको प्रभावित करते हुए

देख कर याद आ जाता है कि यह सब रामदास के अति उत्तम निर्माण कार्यका ही परिणाम है।

रामदास की अपनी रचनाएं उत्साहपूर्ण एवं मनको प्रभावित करने वाली हैं और उनकी एक-एक उक्ति राष्ट्रीय प्रवृत्तिसे ओत-प्रोत है। उनका क्षेत्र विस्तृत है और व्यावहारिक जीवनका कोई भी अंग उनसे अछूता नहीं बचा है। वे सत्य, भक्ति तथा आत्मविश्वास जैसे गुणों की शिक्षा देती हैं। रामदास अपने लिए « समर्थ » शब्द का प्रयोग किया करते थे। वे राष्ट्रके सर्वांगीण पुनर्जीवन (regeneration) तथा लोगों के शारीरिक एवं नैतिक साधनोंकी सुरक्षा के पक्षपाती थे। लोगोंने मठोंमें इकट्ठा होना आरम्भ किया, जहां उनके ऊपर रामदास के उन उपदेशोंका गहरा प्रभाव पड़ा जिनकी व्याख्या उनकी श्रेष्ठ रचना «दास-बोध» में की गयी है। (दास-बोध = एक दास को मंत्रणा।) ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि दास बोध ने लोगोंको शिवाजी के राष्ट्रीय कार्यमें हाथ बटाने के लिए अग्रसर किया। चूंकि उन्हें दिन प्रति दिन सफलता प्राप्त होने लगी थी इसलिए उन्होंने शिवाजी की गतियों (moves) में निहित सिद्धान्तों को शीघ्र ही अपना लिया। राजनैतिक प्रचारके दृष्टिकोणसे इन मठोंको कौनसा विशेष काम सौंपा गया था, उसके कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते; बल्कि इस सम्बन्धमें तो यह प्रश्न उठता है कि रामदास की शिक्षाओंने राष्ट्रीय उत्थानके कार्यमें सचमुच कितनी मदद की। प्रत्येक «मठ» में राम और हनुमान् का एक-एक मंदिर होता था। हमारा अनुमान है कि हर एक मंदिरके लगाव में कई अखाड़े होते थे। अतएव इन «मठों» का मुख्य कार्य लोगोंकी शारीरिक एवं नैतिक शक्तिका निर्माण और संरक्षण करना ही रहा होगा। जैसे-जैसे « दास-बोध» रोज-रोज बढ़ता गया, वैसे-वैसे इन «मठों» में लोग उसे पढ़ने और उसका अध्ययन करने लगे और समाजके ऊपर सामान्य रूपसे उसका बड़ा गहरा असर पड़ने लगा। रामदास इस बात पर जोर देते थे कि जिस तरह भी सम्भव हो, राष्ट्रकी शक्तिको बढ़ानेके लिए यह आवश्यक है कि हर तरफ़ छोटी बड़ी संस्थाएं क़ायम की जायं। « मठों » में धार्मिक उपदेश सुनने के लिए बड़ी-बड़ी सभाएं जुटा करती थीं, और हम जानते हैं कि शिवाजी के प्रमुख साथियोंमें से अधिकांशने रामदासी सम्प्रदाय को स्वीकार कर लिया और उनकी शिक्षाओंका अनुसरण करने लगे। इस प्रकार स्वराज्य-आन्दोलनके सम्बन्धमें यह समझा जाता है कि शिवाजी ने राष्ट्रकी शारीरिक और रामदास ने नैतिक-शक्ति का प्रतिनिधित्व किया। शिवाजी ने प्राचीन विजयनगरके परम्परागत नीति-कौशल,

युद्धकला, दर्शन और कलाओंको अपना लिया था और उनको अपने निजी नवीन आदर्शोंके साथ मिला लिया था; रामदास ने अपने अनुभव और यात्रा के जरिये भारत के बड़े-बड़े महात्मा—नानक, कबीर, चैतन्य और तुकाराम आदि की शिक्षाओंके सिद्धान्तों को ग्रहण कर लिया, ताकि वे उन्हें अपने राष्ट्रको सिखा सकें। दोनोंके बीच केवल एक अन्तर था——वह यह कि रामदास बहुत ही अधिक व्यावहारिक, सरल प्रकृतिवाले थे। वह स्पष्ट रूपसे बात करनेवाले तथा समझदार थे। उनका एक-एक शब्द जोश और ताक़तसे भरा हुआ है। शिवाजी आरम्भसे ही सब जातियोंके लोगोंके साथ खुलकर मिलते जुलते थे, और उनके हृदय में रामदास तथा दूसरे महात्माओं और विद्वानोंके प्रति, जो संसारका अनुभव प्राप्त कर चुके थे, विशेष श्रद्धा थी। इसमें सन्देह नहीं कि दोनोंके उद्देश्य ऊंचे थे, परन्तु मनमें यह शंका पैदा होना स्वाभाविक ही है कि उन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए उन्होंने जान बूझकर कहां तक सहयोग किया। शिवाजी की माता और पिता पहले से ही मुसलमानों की अधीनता में रहते रहते घबरा उठे थे, और अपने धर्म तथा देशकी रक्षा के लिए निरन्तर उपाय सोचा करते थे। शिवाजी को अपनी राजनीतिक गतियों अथवा आदर्शोंमें रामदास से प्रत्यक्ष प्रेरणा मिली, इस बातको सिद्ध करने के लिए कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

४. राज्याभिषेक संस्कार तथा उसका उद्देश्य.

दूसरी बात यह है कि जब हम उनकी देदीप्यमान जीवनवृत्तिके लगभग पैंतीस वर्षोंके बीच होनेवाले उनके युद्धों और चढ़ाइयों, योजनाओं और चेष्टाओं, तथा शब्दों और व्यवस्थाओंका सूक्ष्म परीक्षण करते हैं तो इस बात का तनिक भी आभास नहीं मिलता कि उन्होंने अपनी दृष्टि केवल महाराष्ट्र अथवा दक्षिण तक सीमित कर रखी थी। वह यह नहीं जानते थे कि असामयिक मृत्युके कारण उनका जीवन इतना छोटा हो जायगा। यदि उनके भाग्यमें अपने विपक्षी औरंगजेब की तरह बहुत बूढ़ा होना नहीं बदा था, तब भी वे कमसे कम बीस वर्ष और आसानी से ज़िन्दा रह सकते थे। शिवाजी की नीवें (foundations) इतनी चौड़ी थीं कि उनके ऊपर एक अखिल-भारतीय भवन खड़ा किया जा सकता था। उनके समस्त उपाय निश्चित रूपसे इस बातकी ओर लक्ष्य करते थे। उन्होंने ठीक उत्तर वैदिक कालीन क्षत्रिय-प्रथा के अनुसार सावधानी के साथ, बनारसके प्रसिद्ध भट्ट परिवारके एक पंडित के निर्देशन में अपना राज्याभिषेक

संस्कार बड़ी धूमधामके साथ सम्पन्न करवाया और उन सभी रीतियों तथा शान-शौकत का अनुसरण किया जो अशोक, चंद्रगुप्त अथवा हर्षवर्धन के समयमें पाई जाती थीं। शिवाजी के पूर्वज चित्तौड़ के क्षत्रिय वंशके थे, जो अपने को श्रीरामचन्द्र का वंशज मानते थे। शिवाजी ने « क्षत्रिय-कुलावतंस » «सिंहासनाधीश्वर», छत्रपति-जैसी महत्त्वपूर्ण उपाधियां धारण कीं, स्पष्ट रूपसे यह प्रतिज्ञा की कि गौ और ब्राह्मण की रक्षा करना उनका मुख्य लक्ष्य है। अपनी सरकारी मुद्रा पर वह आदर्श-वाक्य अंकित करवाया जिसकी रचना में वाक्पटुता के साथ-साथ पूर्णता की झलक मिलती है; विचार-विमर्श के बाद दर्बारमें प्रयोग किये जाने वाले फ़ारसी पदों (terms) के स्थान पर संस्कृतके पर्यायवाची पदोंको ग्रहण किया; मराठोंको दर्बारकी भाषा के रूप में स्वीकार किया; प्राचीन «शास्त्रों» में आठ मंत्रियों तथा उनके कर्तव्योंके विषयमें दिये गये आदेशोंको व्यवहार रूपमें प्रचलित किया। खुले तौर पर हिन्दुओंकी चार जातियोंकी प्रणालीको स्वीकार किया और अपने लिए क्षत्रिय होने का दावा किया। ये सब बातें स्पष्ट रूपसे उनके सर्व-हिन्दू-आदर्श की ओर संकेत करती हैं, जिसका दक्षिण तक सीमित छोटे से मराठा राज्यके अन्तर्गत कोई स्थान न होता। उस दशा में तो वह बहमनी राज्यकी शाखाओं में से किसी एक की तरह का छोटा सा राज्य बनता।

तीसरी बात यह है कि, शिवाजी ने जिस विधि से एक छोटे से स्वतन्त्र राज्य की स्थापना एवं विस्तार किया, यह स्वयं ही उनके भावी उद्देश्यों का संकेत (clue) प्रदान करती हैं। जैसे «सरदेशमुखी» और « चौथाई» दो चीजोंके लिए अपना अधिकार जताना। इन दोनोंके बारे में मैं ही कुछ देर में बताऊंगा। १६४८ में उन्होंने सम्राट् शाहजहां से सरदेशमुखी मांगी, जिसके ऊपर मराठा जातिके सरदेशमुख अथवा प्रधान प्रादेशिक पदाधिकारी के पद पर होने के नाते उनका पैतृक अधिकार था। उत्तरी कोंकण पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने १६६० ई० के लगभग चौथाई को पुनर्जीवित किया। कोंकण में रामनगर के राजा लोग आसपास के ज़िलोंसे यह कर वसूल किया करते थे। आरम्भ से ही, उन्होंने चतुराई के साथ ये दो सुविधाजनक हथियार गढ़ डाले, जो आगे चलकर मराठों को पूरे भारतीय महाद्वीप में एक हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना करने के लिए उपयोगी साधन बन सकते थे।

५. अन्य हिन्दू राजाओं से मेल करना.

चौथी बात यह है कि जब कभी सम्राट् या अन्य मुसलमान बादशाहोंकी

शिवाजी से लड़ाई होती तो वह बड़ी सावधानीके साथ अपने विपक्षियोंको अलग कर लेते थे। आमतौर पर वह सम्राट्के हिन्दू-सेनापतियोंसे कभी न लड़ते थे। उन्होंने जसवन्तसिंह से मित्रता करनेकी चेष्टा की और जयसिंह को खुल्लम-खुल्ला अपनी ओर मिला लिया। वे दोनों ही उच्च कुलके राजपूत थे, और शिवाजी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। बाबू जगन्नाथदास ने «नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका» में फ़ारसीको शेरमें लिखा हुआ एक पत्र प्रकाशित किया है जो जयसिंह के नाम लिखा हुआ शिवाजी का पत्र माना जाता है। उसका तात्पर्य है—स्पष्ट और जोरदार शब्दों में शिवाजी के उद्देश्योंकी चर्चा करना। यदि पत्रकी प्रामाणिकता के विषयमें सन्देह किया जाय तो भी हमें यह मानना पड़ेगा कि काव्य-रचना के सहारे हमें इस बातका सच्चा आभास मिल जाता है कि शिवाजी ने सम्राट्का विरोध करके जो संकट मोल लिया था उसके विषयमें उस समय सामान्य रूपसे प्रचलित विचार क्या थे। वह हमारा ध्यान उस समयकी वास्तविक परिस्थितिकी ओर भी आकर्षित करता है। शिवाजी अपने पत्रमें लिखते हैं—"ओ महाराज, यद्यपि आप एक बड़े क्षत्रिय हैं तथापि अपनी शक्तिका प्रयोग बाबर के वंशकी वृद्धिके लिए करते आये हैं। और रक्त-वर्ण वाले मुसलमानोंको विजयी बनानेके लिए हिन्दुओंका खून बहा रहे हैं। क्या आप इस बातको नहीं समझ पा रहे हैं कि इस तरहसे आप पूरे जगत्के सामने अपनी कीर्तिको कलंकित कर रहे हैं? यदि आप मुझे जीतनेके लिए आये हैं तो मैं आपकी राहमें अपना सिर बिछा देनेके लिए तैयार हूं; पर चूंकि आप सम्राट्के प्रतिनिधि होकर आये है, इसलिए मैं इस बातका निश्चय नहीं कर पा रहा हूं कि आपके साथ कैसा व्यवहार करूं। यदि आप हिन्दू धर्मकी ओरसे लड़ें तो मैं आपके साथ सहयोग करने और आपकी सहायता करनेके लिए तैयार हूं। आप वीर एवं पराक्रमी हैं। एक शक्तिशाली हिन्दू राजा की हैसियतसे, आपके लिए सम्राट्के विरुद्ध नेतृत्व ग्रहण करना ही शोभा देता है। आइये हम लोग चलें, और दिल्लीके ऊपर विजय प्राप्त कर लें। हमारा मूल्यवान् रक्त अपने प्राचीन धर्मकी रक्षा और अपने प्यासे पूर्वजोंको सन्तुष्ट करनेके लिए बहे। यदि दो दिल मिल सकें तो वे कठोरसे कठोर अवरोधको तोड़ कर फेंक देंगे। मुझे आपसे किसी प्रकारकी शत्रुता नहीं है और मैं आपके साथ लड़नेका इच्छुक नहीं हूं। मैं आपके पास अकेले आने और भेंट करनेके लिए तैयार हूं। तब मैं आपको वह पत्र दिखाऊंगा जो मैंने शाइस्ताखां को जेबसे जबर्दस्ती निकाल लिया था। यदि आप मेरी शर्तें स्वीकार नहीं करते तो मेरी तलवार उद्यत है।"

इसी प्रकार रत्नाकर भट्ट नामके एक कविने जो क़रीब क़रीब शिवाजी का सम-सामयिक (contemporary) था, जयपुरके राजाओंका वर्णन करते हुए एक संस्कृत की कविता की रचना की है। वह उसमें मिर्ज़ा राजा जयसिंह (१६२१-१६६७) के विषयमें, जिनको औरंगजेब ने शिवाजी के ऊपर विजय प्राप्त करनेके लिए नियुक्त कर रखा था, इस प्रकार लिखता है। कवि कहता है, "मिर्ज़ा राजा* ने शिवाजी तथा उन सभी राजाओंको जीतनेमें बड़ा पराक्रम दिखाया, जो « दिल्ली के राज्य सिंहासन पर अधिकार करनेकी इच्छा रखते थे।"» बहुतोंने इसीको शिवाजी की अभिलाषाओंका तत्कालीन प्रभाव समझ लिया है।

मेरे पास इतना समय नहीं है कि में इस तरहके बहुतसे पत्र इस स्थान पर उद्धृत कर सकूं। जजिया के विषयमें सम्राट् औरंगजेब को शिवाजी द्वारा लिखे गये एक पत्र में बड़ी वाक्पटुता दिखाई देती है। उसका अनुवाद प्रो० सरकारके « शिवाजी » में पढ़ा जा सकता है। शिवाजी ने अपने भाई के नाम जो पत्र लिखे, और मालोजी घोरपदे, जिसके पिता बाजी घोरपदेकी हत्या कर दी गयी थी, के नाम जो पत्र (एक पत्र) लिखा—उन सबसे वे उद्देश्य स्पष्ट रूपसे प्रकट हो जाते हैं जिनकी प्राप्तिके लिए वे चेष्टा कर रहे थे। उन सब लोगोंको, जिन्हें उनके उद्देश्यकी सचाईके बारेमें सन्देह था, ये पत्र देखकर अनिवार्य रूपसे विश्वास हो जाना चाहिए। वे ऐसी भावनाओंसे पूर्ण हैं जो मुख्य रूपसे शिवाजी के «हिन्दू-पद-पादशाही» के उद्देश्यकी स्थापना करती हैं। शिवाजी के भाई इकोजी (Ekoji) अपने को बीजापुरके आदिलशाह के अधीन और उनका एक जागीरदार मानते थे, जो उनके (शिवाजी के) लिए असह्य था। वे इकोजी को न तो एक स्वतंत्र शासकके रूपमें रहने देना चाहते थे, और न ही बीजापुरके अधीनस्थ शासक के रूपमें, क्योंकि उनकी हिन्दू-साम्राज्यकी योजना में इस प्रकारकी स्थिति बर्दाश्तसे बाहर थी। यही कारण है कि शिवाजी को इकोजीके ऊपर चढ़ाई करनी पड़ी, और उसे पराजित करके अपना आधिपत्य स्वीकार कराना पड़ा। उन्होंने इकोजीको दक्षिण में एक जागीर दे दी। वह अपने

* येन श्री जयसिंहेन दिल्लीन्द्रपदलिप्सवः।
शिवप्रभृतिभपाला वशं नीताः स्वतेजसा॥

—ग्रंथमाला, राजवाड़े सं०
लेख, जयपुर
वंशावली

भाईको लिखते हैं: "ईश्वरने कृपा करके मुझे अपना दूत बनाकर एक काम करनेके लिए भेजा है। उसने मुझे अखिल-भारतीय साम्राज्य («सार्वभौम-राज्य») सौंप दिया है। उसने मुझे मुसलमानोंको कुचलनेकी शक्ति दी है---जिनकी शरण तुमने ली है। तुम मेरे विरुद्ध कैसे सफल हो सकते हो, और मुसलमानोंको किस तरहसे बचा सकते हो? यदि तुम मेरी सलाह मानते हो, तब तो भला ही भला है; और नहीं तो, तुम्हें निश्चय ही पछताना पड़ेगा।" मालोजी घोरपदेके नाम लिखे हुए अपने पत्रमें शिवाजी कहते हैं: "मराठा सरदारोंकी रियासतोंकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे मैंने सब मराठा सरदारोंका एक संगठन बनाया है ताकि अपने घरके मालिक हम स्वयं बने रहें: और हमारी खुशी हो तो मुसलमानी राज्योंको बनाये रखें अन्यथा उन्हें नष्ट कर दें। मैं इस बातकी पूरी कोशिशमें हूं कि सब मराठे संगठित हो जायं और अपने को मजबूत बना लें। तुम्हें विदेशियोंके बीजापुर राज्यसे इतना अधिक प्रेम क्यों है? वह तो यों ही धूलमें मिल चुका है। बीजापुरका बादशाह तुमको दे ही क्या सकता है, और तुम अपनी राजभक्ति एक मुसलमान बादशाहके ऊपर क्यों लुटा रहे हो? वह पठान तुमको किसी तरहका लाभ पहुंचानेवाला नहीं है। हम मराठे तो उन्हें पहले ही निगल चुके हैं। तुमको याद रखना चाहिए कि तुम एक मराठे हो, और मेरा उद्देश्य है—तुम सबको संयुक्त करना, और एक शक्तिशाली राष्ट्रके रूपमें ऊंचे उठाना।"

निस्सन्देह यह स्पष्ट है कि शिवाजी के हृदय-पटल पर उत्तरी भारतकी गुप्तों, चालुक्यों, राष्ट्रकूटों और यादवों जैसी प्राचीन क्षत्रिय जातियों तथा उनकी सफल कृतियोंकी स्मृति अंकित थी। बुन्देला राजा छत्रसाल उनके मित्र थे, और उनसे सलाह लेनेके लिए दक्षिण आये थे। शिवाजी के आगरे से निकल भागनेके बाद उत्तरी भारत के चारण और कवि, विशेषरूपसे उनके दर्बारमें आये, और उनका संरक्षण प्राप्त किया। ये सारी बातें शिवाजी के कार्यकी अखिलभारतीय प्रवृत्तिकी ओर संकेत करती हैं।

परन्तु यह आदर्श राजनीतिक नहीं, धार्मिक था। शिवाजी तथा उनके अनुयायिओं की प्रणाली का मुख्य उद्देश्य था—मुसलमानोंके धार्मिक अत्याचारों अथवा हस्तक्षेपके बिना, हिन्दुओंके धार्मिक रीति-रिवाजों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना, दिल्ली के सिंहासन पर हिन्दू-सम्राट् बैठानेका वहां कोई इरादा न था। बेसीन में पुर्तगालियोंके विरुद्ध लड़ने में चिम्मन अप्पा या पानीपतमें अब्दाली के विरुद्ध लड़ने

में सदाशिवराव भाऊ को, विदेशियोंकी मूर्तिभंजक प्रवृत्ति से भारतको स्वतंत्र करने के उसी धार्मिक लक्ष्यसे उत्तेजना मिली थी। हालमें जयपुर के ऐतिहासिक-ग्रंथ-रक्षा-गृह में, वहां (जयपुर) के राजा रामसिंह के नाम संस्कृत में लिखा हुआ, शिवाजी के पुत्र सम्भाजी का एक पत्र मिला है जो स्पष्ट रूपसे उसके धार्मिक स्वतंत्रता के आदर्शकी चर्चा करता है। इस सम्बन्धमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब तक मराठे भारत में राजनीतिक प्रभुता का उपभोग करते रहे, अर्थात् १८ वीं शताब्दीके बिल्कुल अन्त तक, तब तक किसी हिन्दू राजा ने अंग्रेजोंका संरक्षण प्राप्त करनेकी परवाह न की। पहले-पहल चार मुसलमान नवाबोंने, अर्थात् अर्काट्, बंगाल, अवध और हैदराबाद के नवाबोंने ही अंग्रेजोंसे सहायता मांगी और १८वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में भारतमें अंग्रेजोंकी शक्तिको मजबूत बनाया। उन्होंने दूसरों* के सामने भारतकी स्वतंत्रता को बेच दिया।

६. अखिल-भारतीय यात्रा तथा अनुभव.

पांचवीं बात यह है कि शिवाजी जब सम्राट्से मिलनेके लिए आगरे गये थे, उस समय उन्होंने स्वयं उत्तरी भारतको देखा था। उन्होंने जान-बूझ कर इस तरह भेंट करनेकी व्यवस्था की थी, सम्राट्की तरफ़से इसके लिए कोई जोर नहीं दिया गया था। उन्होंने उस अवसरका उपयोग सुदूर-उत्तर तथा साम्राज्यकी राजधानी (दिल्ली) की स्थितिका अध्ययन करनेमें किया। घरसे चलनेके पहले वे जयसिंह के साथ इस यात्रा की अच्छाइयों-बुराइयों के ऊपर गम्भीरता-पूर्वक विचार-विमर्श कर चुके थे। जयसिंह के साथ उनकी जो बातचीत हुई, उसमें शिवाजी ने कुछ योजनाएं बना ली थीं जिनकी पुष्टि उनकी बाद की गतियोंसे होती है। शिवाजी की उत्कट इच्छा थी कि वे अपनी आंखोंसे देखें कि सम्राट् और उसके दर्बार की शान-शौकत कैसी है, किन-किन बातोंके कारण वे इतने शक्तिशाली हैं, और उन्हें अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए स्वयं किस तरहका आचरण करना चाहिए। इस बातको पूर्णतया समझनेके लिए उन्होंने सम्राट्के दर्बारमें जानेका निश्चय किया। वे ५ मार्च, १६६६ को रायगढ़ से चले, १२ मई को आगरे पहुंचे, १७ अगस्त को बन्दीगृह से भाग निकले और २०

* यदुनाथ सरकारके «शिवाजी का घराना» (House of Shivaji) में जयपुर के पत्र देखिये।

नवम्बरको घर पहुंच गये। सम्राट्के कारावाससे जिस आश्चर्यजनक ढंगसे वे भागे वह सभी लोग अच्छी तरहसे जानते हैं। इसलिए यहां पर उसके वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं। आगरे से घर लौटते समय उन्होंने मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, बनारस आदि बहुतसे पवित्र स्थानोंके दर्शन किये। वे आठ महीने बाद घर लौट कर आये। इस बीच उन्होंने पूरे देशका भ्रमण किया, हर तरहके लोगोंसे बात-चीत की, और अमूल्य अनुभव प्राप्त किये, जिनसे बादको उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। इस बात से यह मालूम पड़ता है कि शिवाजी की योजना में एक अखिल-भारतीय-आन्दोलन शामिल था। तो भी, इसका मतलब यह नहीं कि वे अपने को तुरन्त दिल्ली का सम्राट् बनाना चाहते थे; ऐसा होना उस समय असम्भव था। परन्तु उनका आदर्श यह जरूर था कि वे दक्षिणके छोटेसे राज्यको मौलिक आधार मानकर धीरे-धीरे उसे इस तरहसे बढ़ा ले जायं कि अन्तमें एक ऐसे हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना हो जाय जिसका आधिपत्य पूरे भारतके ऊपर हो। ऐसा निश्चित सा जान पड़ता है कि यदि वे अधिक दिनों तक जीवित रहते, तो उनका यह उद्देश्य पूरा हो गया होता।

७. मराठा तत्वों को संयुक्त करने के उपाय.

उस समयके काग़ज़ातोंमें बहुत सी ऐसी छोटी-छोटी बातें मिलती हैं जिनसे मेरे विचार की पुष्टि होती है। शिवाजी की गोलकुंडा-यात्रा, उनकी कर्नाटक-विजय और अपने भाईके विरुद्ध तंजोर पर चढ़ाई, ये सारी ही घटनाएं साम्राज्य-सम्बन्धी उद्देश्योंको संयुक्त करनेवाली विशाल शृंखला की कड़ियां मात्र हैं। इन कड़ियोंको ठीकसे रख देने पर वे उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाते हैं। शिवाजी, स्नेहपूर्ण सहानुभूति एवं सद्भावना के द्वारा जेधे और बन्डल (Bandals) जैसे दक्षिणी मराठोंको अपनी ओर मिलानेके लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे। पर साथ ही साथ, मोरे और खोपदे जैसे उन लोगोंको कठोर दंड देनेमें भी नहीं हिचकते थे, जो उनके उद्देश्योंका विरोध करनेका साहस करते थे। उन्होंने आठ विवाह किये, पर केवल इंद्रिय-तृप्ति अथवा आनन्दके लिए नहीं, वरन् एक निश्चित उद्देश्यकी पूर्तिके लिए। वह युग सामाजिक असमानताओंका युग था। अतः शिवाजी ने वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा दक्षिण के अनेक क्षत्रिय परिवारोंको एक साथ मिलानेके उद्देश्यसे ये विवाह-सम्बन्ध पक्के किये। उदाहरणके लिए भोंसले, उन दिनों किसी तरहसे ऊंचे न समझे जाते थे।

शिवाजी ने बालाजी निम्बलकर को, जिसे आदिलशाह ने जबर्दस्ती मुसलमान बनवा दिया था, फिरसे हिन्दू कर लिया, और उसके बाद उसके लड़के (बालाजी) के साथ अपनी लड़कीका विवाह कर दिया। सारे मराठा परिवारोंमें केवल मोरे लोग ही ऐसे थे जिनके साथ शिवाजी ने कुछ सख्ती का बर्ताव किया; वरना वे किसी हिन्दू सेनापति से नहीं लड़े और विदेशी दरबारोंमें रहनेवाले हिन्दू राजनीतिज्ञोंसे, जैसे गोलकुंडा के मदन्ना (madanna) और अकन्ना—दोस्ती करते रहे। तो भी इस बातको स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिए कि यद्यपि हिन्दूधर्मकी रक्षा करना शिवाजी का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य था, तथापि एक धार्मिक सम्प्रदायके रूपमें मुसलमानोंके प्रति अथवा मुसलमानी राज्योंके प्रति उनके मनमें दुर्भावना न थी। इस सम्बन्धमें केवल एक शर्त थी—वह यह कि वे भी हिन्दू धर्मके प्रति वही श्रद्धा दिखाते हों जो उन्हें अपने निजी धर्मके लिए हो। वे अपनेको सभी धर्मों और सम्प्रदायोंका संरक्षक समझते और सबके साथ एकसा व्यवहार करते थे। जैसा हम जानते हैं, वे मुसलमानी दरगाहों तथा संस्थाओंको सालाना खर्चा और «इनाम» की जमीनें दिया करते थे, वे केलसी (Kelsi) के सन्त बाबा याकूत का उतना ही आदर करते थे जितना कि रामदासका करते थे। उनकी सेवा में अनेक सच्चे मुसलमान कार्य करते थे, जिनकी नियुक्ति बड़े-बड़े विश्वसनीय तथा सम्मानित-पदों पर होती थी। जैसे क़ाज़ी हैदर, जिसको बादमें औरंगजेब ने दिल्ली के प्रधान न्यायाधीशके पद पर नियुक्त किया। जब शिवाजी आगरे में सम्राट्के बन्दी थे, तब एक मुसलमान «फ़र्राश» ने, जिसका नाम मदारी मेहतर था, उनकी जान बचायी थी। उनका प्रधान नाविक पदाधिकारी, सिद्दी मिसरी नामका एक मुसलमान था। वे सभी से सहायता लेते थे और धर्मकी परवाह किये बिना सभीको अपने यहां नौकरी देते थे। उनको मुसलमानोंसे घृणा न थी। उल्टे उनकी धार्मिक भावनाओं के प्रति समान आदर दिखानेके लिए, उन्होंने रायगढ़में अपने महलके ठीक सामने एक खास मस्जिद बनवाई थी।

८. औरंगजेब द्वारा भय का उचित मूल्यांकन.

और अन्तिम बात यह है कि शिवाजी के उद्देश्य का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण सम्राट् औरंगजेब ने स्वयं प्रस्तुत कर दिया है। क्या कारण था कि इतने बुद्धिमान् तथा

सूक्ष्म बुद्धिवाले सम्राट् ने अपने जीवन के सर्वोत्कृष्ट भाग, और साम्राज्य के समस्त आय-साधनों को दक्षिणकी विजयमें लगा दिया? कोई यह नहीं कह सकता कि वह बिना सोचे-विचारे या निराधार ढंगसे ऐसा कर रहा था। औरंगजेब ने अपने साम्राज्य के खतरेको स्पष्ट रूपसे देख लिया था। वह शिवाजी के उद्देश्योंको अच्छी तरह से जानता था। उसको इस बातका पूरे तौर पर विश्वास हो चुका था कि शिवाजी का उद्देश्य साम्राज्यके ही ऊपर वार करना था। यही कारण है कि जैसे ही उसे पता चला कि शिवाजी की मृत्यु हो गयी है और उसके (औरंगजेब का) पुत्र अकबर ने सम्भाजी के साथ मिलकर उसकी अपनी ताक़तके खिलाफ़ खतरनाक योजनाएं बनाई हैं, त्यों ही वह सदा-सर्वदा के लिए उस आयोजनका, जो इतने दिनसे रुका पड़ा था, अन्त कर देनेके अभिप्रायसे नीचे उतर आया (अर्थात् दक्षिण पर चढ़ाई कर दी)। उसका यह प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुआ, यह तो दूसरी बात है। परन्तु उस बुद्धिमान् बादशाह की नीति स्पष्ट रूपसे उन उद्देश्योंको सिद्ध कर देती है जो शिवाजी ने बनाये थे, और जिनकी पूर्तिके लिए उनके उत्तराधिकारी उनकी मृत्युके बाद बहुत दिनों तक निरन्तर प्रयास करते रहे।

६. स्वतंत्रता का युद्ध.

मराठा इतिहासके दो महान् निर्माताओं, मेरा मतलब है, शिवाजी और औरंगजेब की मृत्युओंके बीचका जो समय है, उसमें मैं आपको बहुत देर तक अटकाये रखनेकी आवश्यकता नहीं समझता। इस युगमें जहां एक ओर मराठोंके गौरव एवं कीर्तिसे चारों दिशाएं देदीप्यमान हो उठीं, वहां दूसरी ओर उस हानिकारक प्रणालीका उदय हो गया जो «सरंजामी» के नामसे प्रसिद्ध है। शिवाजी ने बड़े परिश्रमके बाद इसको दबा पाया था। अन्तमें इसीके कारण मराठा राष्ट्रकी सजातीयता का नाश हुआ। शिवाजी की मृत्यु अचानक होनेके साथ-साथ समयसे पहले भी हो गयी। उनका पुत्र सम्भाजी बहादुर एवं उत्साहपूर्ण होते हुए भी इतना योग्य न था कि एक ही समयमें अनेक शत्रुओंके आक्रमणोंका वार सहन कर पाता। औरंगजेब उसके शत्रुओं में मुख्य था जो पहाड़ परसे खिसक कर नीचे आ जाने वाले बरफ़ और मिट्टीके ढेरकी तरह मराठा-राज पर चढ़ आया। यद्यपि सम्भाजी ने बड़ी बहादुरीके साथ शत्रुका मुक़ाबला किया, तथापि वह पकड़ लिया गया और बड़ी क्रूरता के साथ तिरस्कृत ढंग

से मार डाला गया। इस प्रकार अपने प्राणघातक जीवनमें वह जो कुछ प्राप्त करने में असफल रहा था, उसे शूरता के साथ मृत्युका आलिंगन करके सहज ही में पा लिया। तो भी, इन विपदाओंने देशभक्तों, ब्राह्मणों, मराठों एवं प्रभुओंके एक दलको राष्ट्रीय स्वतंत्रता की रक्षा के सामान्य लक्ष्यके लिए संगठित होनेका उत्साह प्रदान किया। इन देशभक्तोंमें अधिक प्रसिद्ध नाम इस प्रकार थे—प्रह्लाद निरजी, रामचन्द्र पन्त अमात्य, परशुराम त्र्यम्बक प्रतिनिधि, धनजी जाधव, सेनापति सन्तजी घोरपदे, खण्डू बल्लाल चिटनिस, शंकरजी नारायण सचिव आदि। इन सबका मुखिया था शिवाजी का छोटा लड़का राजाराम जो एक खुशमिज़ाज राजा था। घोर असुविधाओंके बीच कार्य करते हुए भी ये देशभक्त औरंगज़ेब के विरुद्ध होनेवाले दीर्घकालीन युद्ध में सफल हुए। शक्तिशाली सम्राट् (औरंगज़ेब) लड़ाईमें इस तरहसे पराजित हुआ कि उसे अपने समस्त दुःखों एवं विपत्तियोंसे निश्चित रूपमें छुटकारा पानेके लिए मृत्यु देवीकी शरणमें जाना पड़ा। रानाडे लिखते हैं: "बिना लगान, बिना सेनाओं, बिना क़िलों और बिना किसी प्रकारके आय-साधनों के, मराठा नेताओंने सेनाएं बना लीं, क़िलोंके ऊपर पुनः अधिकार कर लिया और विजय करनेकी एक ऐसी प्रणालीका विकास कर लिया जिसके द्वारा उन्होंने केवल स्वराज्यको ही फिरसे प्राप्त नहीं कर लिया, वरन् चौथाई एवं सरदेशमुखी वसूल करनेका अधिकार भी पा लिया। जिन देशभक्तोंने युद्धोंकी इस योजना को बनाया और उसे कार्यान्वित किया, उनमेंसे बहुतेरे संघर्षके बीचमें ही कालके ग्रास हो गये, परन्तु दूसरे लोगोंने उसी तल्लीनता एवं सफलता के साथ उनकी जगह ले ली। इस सबका श्रेय अनिवार्य रूपसे औरंगज़ेब की महत्त्वाकांक्षा को दिया जाना चाहिए। उसने महाराष्ट्रके लोगोंकी उत्तेजना को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया, और उसके साथ होनेवाले इस बीस वर्ष के लम्बे युद्धके कठोर अनुशासनने उनके नेताओंकी राष्ट्रीय एवं राजनैतिक शक्तियोंको दृढ़ बना दिया, तथा आगेकी तीन पीढ़ियोंमें उन्हें भारतके सुदूरवर्ती भागों तक विजेताओंके रूपमें पहुंचा दिया। उनमें उच्चतर नैतिक शक्तिका विकास हुआ, और ऐसी आशा का सचार हुआ जो प्रत्येक निराशा के साथ बढ़ती जाती थी। सभीके ऊपर सामान्य रूपमें आने-वाले खतरेको देखकर बन्धुत्वका ज्ञान हुआ और यह सोच कर कि वे जो कुछ कर रहे थे, वह अपने धर्मके हितमें कर रहे थे, उनमें इस बातका विश्वास पैदा हुआ कि अन्त में सफलता उन्हींके चरण चूमेगी। ये सारी बातें ऐसी थीं जिन्होंने राष्ट्रके सर्वोत्कृष्ट पुरुषोंके पराक्रम, अतीव सहनशीलता एवं शासनसम्बन्धी चातुर्य जैसे समस्त गुणों

े प्रकट कर दिया। अतएव स्वतंत्रता-संग्रामका यह काल, मराठा-इतिहासका सबसे हृत्वपूर्ण युग माना जाता है।

०. शिवाजी के उदाहरण ने किस प्रकार दूसरों को प्रेरणा दी.

अब हम सरलता से इस बातका अनुमान लगा सकते हैं कि मराठे एक ऐसे समय जबकि वे बिल्कुल शक्तिहीन थे, किस प्रकार भारतकी सभी लड़नेवाली जातियों प्राण फूंकनेमें समर्थ हुए। उन सबको (जातियोंको) शिवाजी तथा उनके अनु- ायिओके उदाहरणसे केवल मराठा प्रवृत्ति और उत्साह ही नहीं मिला, वरन् उनको ाशा और देशभक्ति भी मिली, और मिली—युद्ध एवं स्वतंत्रता की वह व्यावहारिक ाक्षा, जिसने शीघ्र ही लोगोंको प्रभावित किया। सिख, जाट, राजपूत और बुन्देले ्रचित्त हो गये और औरंगजेब की मृत्युके बाद उन सबने एक राष्ट्रीय विद्रोह करने ी ठान ली। अब मैं मराठा संविधानके सम्बन्धमें शिवाजी की धारणा क्या थी, यह मझानेके लिए दो चार बातें बताऊंगा।

हम जानते हैं कि शिवाजी ने एक छोटे-से प्रदेशको लेकर मराठा राज्यकी नींव ाली थी, जिसके संविधानकी व्याख्या लोगोंने अलग-अलग ढंगसे की है। कुछ उनके ष्ट-प्रधान के विधान की उपमा वर्तमान मन्त्रिमंडलोंसे देते हैं; परन्तु इन आठ मंत्रियों ो किसी प्रकारके स्वतंत्र अधिकार नहीं मिले थे, और शिवाजी से ऐसी किसी ्यवस्था की आशा भी न करनी चाहिए जिसमें उन्हें मंत्रियोंको अपनी रत्ती भर सत्ता ी देनेकी आवश्यकता होती। शिवाजी ने अपने राज्यका शासन चाहे कितनी ही ्धिमानी से क्यों न किया हो, फिर भी वे एक निरंकुश एवं उदार स्वेच्छाचारी ासक थे। उनकी इच्छा ही क़ानून थी, यद्यपि उसका लक्ष्य राष्ट्रकी सर्वोत्कृष्ट चियोंकी ही ओर निर्दिष्ट हुआ करता था। हम पूर्वी देशोंके निवासी, सदा से अपने भी राजनैतिक, सामाजिक या किसी दूसरी तरहके मामलोंमें, व्यक्तिगत प्रभावों से ासित होते रहे हैं। हम लोग उस अनुशासनके अन्तर्गत कभी नहीं रहे हैं जो स्वास्थ्य- द ढंगसे वैधानिक संस्थाओंका संचालन करनेके लिए आवश्यक होता है। यहां तक क "विधान" शब्द भी हमारे लिए विदेशी है। मराठोंके साथ तो विशेष रूपसे यही ात रही है। यदि हमारे भाग्यका संचालन करनेके लिए सौभाग्यसे हमें एक बुद्धिमान् ासक मिल जाता तब तो हमारा प्रबन्ध सुचारु रूपसे चलने लगता, और हम वैभव-

सम्पन्न हो जाते : यदि संयोगसे राजा बुरा होता या उसका अस्तित्व नहींके बराबर होता, तो पतन होने लगता। "यदि अच्छा हो तो सब भला ही भला; यदि दुष्ट, निर्दयी और अत्याचारी हो, तब भी उसके सामने सिर झुकाये रहें और उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहें जब कि उस अन्यायपूर्ण शासनका अन्त हो जायगा।" जब तक शिवाजी जीवित रहे, पूरे राष्ट्रने उनका समर्थन किया और उनकी आज्ञा मानी ; पर ज्यों ही उनकी मृत्यु हुई और शासनका भार उनके पथ-भ्रष्ट पुत्रके कन्धों पर पड़ा, त्यों ही पूरा राष्ट्र अपने हित और अहितके लिए उसकी दया पर आश्रित हो गया। बादके दिनोंमें, उनके द्वितीय पुत्र राजाराम ने अपने मंत्रियों तथा सेनापतियोंको पूरी आजादी दे दी। शिवाजी के नेतृत्वमें प्रशिक्षित होनेके कारण वे सभी असाधारण योग्यता रखते थे जिसके फलस्वरूप मराठे सबसे अधिक दृढ़ संकल्पवाले मुग़ल सम्राट् (औरंगजेब) के विरुद्ध एक सफल युद्ध करनेमें समर्थ हो सके। औरंगजेब की मृत्युके बाद जब शाहू लौटकर आया तब सारी बातें एकदम बदल गयीं और मराठा-राज्य की शासन-विधि की मौलिक योजना का पूर्णतया रूपान्तर हो गया। अब मैं आपको उसीके बारेमें कुछ समझाना चाहता हूं।

११. चौथाई, उसकी उत्पत्ति और उद्देश्य.

शिवाजी ने बुद्धिमानीके साथ एक बड़ा लाभदायक राजनैतिक यंत्र गढ़ डाला और स्वयं उसको कार्यरूपमें परिणत किया। वह यंत्र था—शत्रु-देश पर «चौथ» एवं «सर-देशमुखी» नामके करोंको लगानेकी प्रणाली। चौथ तो एक प्रकारका वह कर था जो शत्रु अथवा विजित प्रदेशोंसे वसूल किया जाता था, और सरदेश-मुखी लगान लगानेका एक तरहका वह अधिकार था जिसे वे लोग «वतन» के नामसे पुकारते थे और जिसके ऊपर प्राचीन बहमनी कालमें मराठा दलोंके सर्दार अपना दावा करते थे, और जिसे वे बादके दिनोंमें भी बराबर वसूल करते रहे। हालमें प्रकाशित नये प्रमाणोंके आधार पर यह समझा जाता है कि चौथ, यानी मिलने वाले लगान का एक चौथाई भाग, वसूल करनेकी प्रथा, शिवाजी के बहुत पहलेसे, भारतके पश्चिमी भागमें प्रचलित थी। गोआ के प्रो॰ पिसूरलेंकर (Pissurlencar) और कलकत्तेके डॉ॰ सुरेन्द्रनाथ सेन ने, वहां पर (गोआ के) पुर्तगालियोंके प्राचीन-ग्रन्थ-रक्षा-ग्रह का परीक्षण करनेके पश्चात् कुछ कागज़ात प्रकाशित किये हैं जिनकी

तिथियां १५९५, १६०४-१६०६, और १६३४ हैं। उनमें यह दिखाया गया है कि उत्तरी कोंकणमें रामनगरके राजाने पुर्तगालियोंके अधीनस्थ राज्य डामनसे, इस आधार पर यह चौथ वसूल की थी कि पुर्तगालियों* के हाथमें आनेके पूर्व वे प्रदेश रामनगरके राजाओंको चौथ दिया करते थे। शिवाजी ने उस प्रथा को जल्दीसे जल्दी अपना लिया, और जीते हुए अथवा अधीनस्थ प्रदेशों एवं राज्योंमें उसको लागू कर दिया। उन्होंने इस बातकी गारंटी ली कि इस रूपमें धन चुकानेके बदलेमें उनको और करोंसे मुक्ति मिल जायगी और साथ ही किसी दूसरी ताक़तके द्वारा सताये जाने पर उनकी रक्षाकी जायगी। बाहरी प्रदेशों पर, चाहे वे पूरी तरहसे जीत लिये गये हों या आंशिक रूपमें या कभी-कभी केवल पदाक्रान्त ही किये गये हों, चौथ लगानेकी यह प्रथा शिवाजीके उत्तराधिकारियोंके हाथमें एक तैयार अस्त्र सिद्ध हुई और उसके कारण वे भारतके दूरस्थ भागों तक अपनी शक्तिका विस्तार करनेमें समर्थ हुए। औरंगजेब द्वारा सम्भाजी के बन्दी बनाये जानेके बाद चारों ओर गड़बड़ी फैल गयी और एक संकट-पूर्ण स्थिति पैदा हो गयी। ऐसे कुसमयमें चौथ लगानेकी यह प्रथा, इधर-उधर भटकनेवाले मराठा दलोंके विभिन्न सरदारोंके लिए एक लाभदायक उपाय सिद्ध हुई, और इसी के बल पर वे सफलतापूर्वक सम्राट् का अवरोध करनेमें समर्थ हो सके। मराठा शक्तिके जिस विलक्षण प्रभावने मुग़ल-साम्राज्यको धीरे-धीरे खोखला बनाना आरम्भ कर दिया था, उसका मूल कारण छापामार-युद्ध-प्रणाली के साथ-साथ यह उपाय (चौथ) ही था। मराठा संविधानमें होनेवाले उन परिवर्तनोंको समझनेके लिए, जो बादमें अर्थात् औरंगज़ेब के आक्रमणके पिछले दिनोंमें और उसकी मृत्युके समय हुए, उचित यही होगा कि हम विषयका परीक्षण और अधिक बारीकीके साथ करें और महाराष्ट्र की स्थितिमें जो विभिन्न बातें मौजूद थीं उनको अच्छी तरहसे समझ लें।

१२. अपनी पैतृक सम्पत्तिके लिए मराठा देशमुखोंका प्रेम.

मराठे स्वभावसे ही अपने «वतनों» या पूर्वजोंसे प्राप्त जमीनोंसे बड़ा प्रेम रखते थे, और बहुधा उनके लिए उन्हें भारी मूल्य, यहां तक कि अपनी जानें तक देनी पड़ती थीं। बहमनी शासन कालमें, या शायद उससे भी पहले, जब महाराष्ट्रकी जमीन अव-

* डा० सेन की «मराठोंकी सैनिक प्रणाली» देखिये, जिसमें विषयकी पूरी तौर पर लिया गया है।

स्थित कर दी गयी थी और वहां खेती की जाने लगी थी, तब विभिन्न मराठा परिवारों को जो लालच दिया गया था वह था «वतन» जमीनोंका स्थायी रूपमें दान। दूसरी जगहोंसे आये हुए अनेक क्षत्रियोंने, जो आमतौरसे "मावल" कहलाते हैं, अपने रहने के लिए पश्चिमी घाटोंके पहाड़ी ढालोंको, जो इतिहासमें मावल देशके नामसे प्रसिद्ध हैं, साफ़ किया। वहांके जंगल काट डाले गये और हिंसक पशुओंका नाश कर दिया। आरम्भमें मावल लोग छोटे-छोटे स्वतंत्र शासकोंकी तरह से उन प्रदेशों पर शासन करते थे, जिनके ऊपर देशमुखोंके रूपम उनका अधिकार था। देशमुखोंका अर्थ था—«देश» के मुखिया लोग, या हमारे हिसाबसे जागीरदार। बादको शिवाजी ने इन्हीं लोगोंको अपने अधीन कर लिया और अपना सहायक बना लिया। ऐसा करनेमें उन्होंने मुख्य रूपमें तो युक्तिसे ही काम लिया, यदाकदा आवश्यकता पड़ने पर तलवारका भी प्रयोग किया। मोरे, शरके (Shirkes), दलविस, जेधे, जाधव, निमबलकर, खोयदे और अन्य मराठे, जिनमें से सभीने शिवाजी की प्रारम्भिक क्रियाओं में प्रमुख भाग लिया, परम्पराप्राप्त देशमुख अथवा वतनदार थे, जिनका कर्तव्य यह था कि वे देशमें बस्तियां बसायें, उसकी व्यवस्था करें और उसे आबाद करें, ताकि सरकारको वहां से लगान मिले। यह प्रतिक्रिया दीर्घकालीन एवं कष्टदायक थी। इसके अन्तर्गत असंख्य लोगोंकी जानें गई, अतीव धन एवं परिश्रमका व्यय हुआ, और जैसा कि स्वाभाविक ही था, भू-स्वामियों के हृदयमें अपनी उस पैतृक भूमिके लिए, जिसकी सेवा और सुधार वे पीढ़ी दर पीढ़ी करते आये थे, अत्यधिक प्रेम तथा रुचि पैदा हो गई। देशकी सरकारने साहसिक कार्य करनेवाले इन मराठोंको पट्टे पर जमीन दे दी, और वे टैक्सोंसे मुक्त कर दिये गये। जब भूमिमें निश्चित रूपसे सुधार हो गया और वह सालाना लगान देने लायक हो गयी, तब लगान वसूल करनेका काम इन्हीं देश-मुखों को सौंप दिया गया। उनसे यह कह दिया गया कि जितना लगान मिलनेकी आशा हो, उसका ९०% वे सरकारको दे दें और बाक़ी १०% अपने परिश्रमके पारितोषिकके रूपमें, अपने लिए रख लें। यही १०% का भाग सर-देशमुखी कहलाने लगा और शुरूसे लेकर आखिर तक वंशपरम्परागत आयका एक ऐसा निश्चल साधन बना रहा, जिसके ऊपर छत्रपति से लेकर नीचेके छोटेसे छोटे जागीरदार तक सभी मराठा सरदार पूर्व-पुरुषोंसे प्राप्त पैतृक-धनके रूपमें दावा करते रहे। उन्होंने पूरी ताक़तसे उसकी रखवालीकी और अपनी जान तककी बाजी लगाकर उसकी रक्षा की। मराठा इतिहासके पाठकगण इस बातका स्मरण कर सकते हैं कि जब १७१८

ई० में पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने सैयद भाइयोंसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेके लिए सम्राट् की सनदें प्राप्त कर ली थीं उस समय छत्रपति शाहू ने किस कठोरता एवं दृढ़ता के साथ सरदेशमुखी-कर का यह १०% भाग अपने लिए सुरक्षित कर लिया था, और किस प्रकार उसने उस रूपमें वसूल हुए धन को अपने उन अनेक प्रियजनों तथा व्यक्तियोंके बीचमें बांटा था जिन्होंने मुसीबतके समय उसकी मदद की थी। जाधव और मोरे लोगोंके मुक़ाबले में भोंसले स्वयं पहले देशमुख ही थे। हाँ बादको जरूर वे लोग स्वतंत्र मराठा राज्यकी स्थापना करनेमें सफल हुए। इस बातको स्पष्ट रूपसे ध्यानमें रखना उचित है कि सरदेशमुखी और चौथका स्वरूप अलग-अलग था। सरदेशमुखी तो बिल्कुल फ़र्क-मद (item) था, जिसकी योजना मुख्य रूपसे विदेशी प्रदेशोंको अपने अधीन करनेके अभिप्रायसे बनाई गयी थी। वह एक तरहका कर था।

इस प्रकार शिवाजी के उत्कर्षसे शताब्दियों पहले तक मराठा देशमुख दक्षिणकी जमीनोंमें रुचि रखते आये थे। व्यावहारिक रूपमें वे शासक अधिकारियोंसे स्वतंत्र रहते थे, क्योंकि वे लोग उन्हें केवल उसी दशा में दंड दे सकते थे जब कि वे सरकारी लगान न चुकायें। मावल देशमें एक लम्बे अरसे तक वे कितना भयपूर्ण एवं साहसिक-कार्यों से युक्त जीवन व्यतीत करते रहे हैं, इसकी झलक उन तमाम पुराने कागजोंमें मिलती है, जो हाल ही में खोज निकाले, और प्रकाशित किये गये हैं। इस बातका मुख्य श्रेय राजवाड़ेको हे जिन्होंने उनको अपनी उन पुस्तकोंमें छापा है, जो शिवाजी-काल के ऊपर लिखी गयी हैं, अर्थात् १५ से २० तक २० और २२। शिवाजी के उत्कर्षसे लगभग एक शताब्दी पहले वहां पर अधिकारों और धन-सम्पत्ति पर अधिकार जमा लेनेके विषयमें, उत्तराधिकारियों और उत्तराधिकारके विषयमें, चोरियों और डकैतियोंके विषयमें, हत्या और तमाम तरहकी छेड़खानियोंके बारेमें कितने अधिक और कितने भयंकर लड़ाई झगड़े हुआ करते थे, इसका विस्तृत वर्णन उन कागजोंमें मिलता है। उनको पढ़कर स्पष्ट रूपसे इस बातका आभास मिल जाता है कि उस समय देशकी दशा कैसी थी और शिवाजी ने किस तरह अपने लाभके लिए उसका उपयोग किया था। शिवाजी सूक्ष्म-बुद्धि के तो थे ही। अतएव उन्होंने मावलोंकी प्राकृतिक योग्यता का अन्दाज लगा लिया, और यह बात मालूम कर ली कि उनके अन्दर राष्ट्र-निर्माण-सम्बन्धी क्रियाओंकी सामग्री प्रस्तुत थी। उस समय तक ये मावलदेश-मुख, एक दूसरेको नष्ट करनेवाले झगड़े बखेड़ों और पारिवारिक कलहोंमें, हत्या करने, आग लगाने, घात लगा कर लोगोंको लूट लेने और इसी तरह

के दूसरे पाप कर्म करनेमें ही अपनी शक्ति एवं पराक्रमको नष्ट किया करते थे। वह सब वहां आये दिन हुआ करता था। परन्तु देशकी प्राकृतिक विषमता तथा आने जाने की सुगमता के अभावके कारण बीजापुर और अहमदनगरके दूरवर्ती शासक न तो उन्हें रोक पाते थे और न ही उनकी ये बातें बन्द कर पाते थे। फिर—वहां के लोगों की प्रवृत्ति भी तो बड़ी कलहकारी थी। सच तो यह है कि तेजीके साथ आगे बढ़ते हुए मुग़लों के विरुद्ध होनेवाले अपने युद्धोंमें, शिवाजी के पिता शाहजी ने, पहले ही इनमें से कुछ मावल-देशमुखों की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी और बचे हुए कामको पूरा करनेका भार अपने कार्य-कुशल पुत्र शिवाजी के लिए छोड़ दिया था। जब शिवाजी ने महाराष्ट्रमें अपना राष्ट्रीय कार्य आरम्भ किया और उनके पिता ने पुरानी जगह छोड़ कर सुदूर दक्षिणको अपना कार्य-क्षेत्र बना लिया, उसके बाद भी वे जेधे और बन्दल लोग, जो शाहजी के पास नौकर थे, बराबर उसके पुत्र शिवाजी की सहायता करते रहे। संयोगसे बीजापुरमें नौकरी करनेवाले मावल देशमुखोंमें मोरे लोग सबसे अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली थे। उन्होंने शिवाजी की प्रारम्भिक क्रियाओं का भरसक अवरोध किया, और प्रत्यक्ष रूपसे दोनोंके बीच लड़ाईकी नौबत आ गयी, जिसका नतीजा यह हुआ कि शिवाजी के हाथों से उन्हें कठोर दंड भुगतना पड़ा। शिवाजी की द्रुतगामी एवं अद्भुत सफलता का कारण बताते समय, हमको मावल देशमुखोंकी इस कलहकारी प्रवृत्ति तथा अपनी मौलिक पैतृक-सम्पत्ति के लिए उनके अगाध प्रेमका ध्यान रहना चाहिए। मराठा शासनके पिछले दिनोंमें हम अक्सर देखते हैं कि ग्वालियरके सिंधिया, धारके पवार अथवा बड़ौदा के गायकवाड़, महाराष्ट्र से बाहर मालवा और गुजरातमें अपने लिए बड़े-बड़े राज्य बना लेनेके बाद भी, किस लगन और सतर्कता के साथ, दक्षिणमें अपने वंश-परम्परागत छोटे-छोटे वतनों या देशमुखियोंकी रखवाली किया करते थे। हम बादको देखेंगे कि पेशवाओं द्वारा चलाई हुई «सरंजामी» प्रणाली, दक्षिणमें मराठों के अपनी वंश-परम्परागत भूमियोंके प्रति होनेवाले इस प्रेम पर आधारित है।

१३. सरदेशमुखी तथा सरंजामी की उत्पत्ति.

सरदेशमुखी के वास्तविक रूपको समझने के लिए हमको उन तमाम सामग्रियों की सहायतासे महाराष्ट्रमें प्रचलित ग्राम्य-सरकारकी बनावट तथा व्यवहारों का अध्ययन करना चाहिए जो तत्कालीन झगड़ोंके क़ानूनी निर्णयोंके रूपमें छापी गयी हैं।

«वतन»-सम्बन्धी अधिकार बहुत तरहके रहे हैं। «पटेल» या «पटिल» गांव का मुखिया होता था, जो उसकी सभी बातोंकी देखभाल रखता था, और «कुलकर्णी» उसका लेखक था जो गांवके रिकॉर्ड रखता था। पटेल और कुलकर्णी को उनकी सेवाओंके बदलेमें जमीन दे दी जाया करती थी, जिनको एक अर्थमें हम «वतन» भी कह सकते हैं। पटवारी और पांडे, गौदास और नदगौदास, और कुछ नहीं हैं, वरन् प्रान्तोंमें प्रयोग किये जानेवाले, पटेल तथा कुलकर्णी के पर्यायवाची शब्द हैं। पहले दो का प्रयोग केन्द्रीय-प्रान्तोंमें और बाद वाले दो (शब्दों) का प्रयोग, दक्षिणमें कनाड़ी देशमें किया जाता था। «देसाई», संस्कृत पद «देश-स्वामी» या कदाचित् «देशपति» का बिगड़ा हुआ रूप है। उसको देशमुख भी कहा जाता है। देशमुख कई देसाइयों अथवा देशमुखोंके ऊपर होता था, अर्थात् कई गांवोंके एक समुदायकी देख भाल करता था। बादके दिनोंमें «सरंजाम» का अर्थ उस जमीनसे लगाया जाने लगा जो सैनिक सेवा के लिए दी जाती थी। «सरंजाम» शब्द जिसका अर्थ है—तैयारी, शिवाजी के समयके काग़जोंमें मिलता है। जब राजा अपने योग्य अनुचरों या प्रजा के लोगोंको उपाधि देता अथवा हाथी, घोड़ा या पालकी देकर सम्मानित करता तो उन सबके रखरखाव के लिए सामग्री जुटाना अर्थात्, «सरंजाम» उन्हींका काम समझा जाता था। तो भी, बादके दिनोंमें, इस शब्दका अर्थ केवल सैनिक सेवा के लिए तैयारी रखना—सरकारकी लड़ाइयां लड़ने के लिए सैनिकों को नौकर रखना और उनका बोझ सम्भालना रह गया। जिन लोगोंको इस तरहके सरंजामके लिए जमीन मिली हुई थी, वे सरंजामदार कहलाते थे। उनका उत्कर्ष विशेषरूपसे शिवाजी के पुत्र राजाराम के समयसे हुआ। बादको पेशवाओंके समयमें मराठा शक्तिका विस्तार मुख्यरूपसे इन्हींके कारण हुआ। लोकप्रिय भाषा में सरंजाम और जागीरका मतलब करीब-करीब एक ही है। वर्तमान राजा-महाराजा जैसे ग्वालियर, इन्दोर, बड़ौदा, धार, मध्य भारतमें देव, या दक्षिणमें मिराज, सांगली, जमखिंदी और रामदुर्ग आदि के राजा-महाराजा, सभी एक तरहके सरंजामदार थे। उनकी सेवाके विषयमें निश्चित व्यवस्था तथा नियम थे जिनके उदाहरण हमको पूना दफ़्तरसे छपे हुए पेशवा के रोजनामचोंमें—विशेष रूपसे उन खंडोंमें जिनका सम्बन्ध माधवराव प्रथमसे हैं—पर्याप्त मात्रामें मिलते हैं। चूंकि मराठोंकी उन तमाम राजधानियोंके सहित, जो उनके शासनका केन्द्र थीं, सरंजामदारोंकी यह प्रणाली, पेशवाओंकी विशेष रचना के नामसे प्रसिद्ध हो गयी है और मराठोंके पतनका बहुत कुछ उत्तर-

दायित्व उसके ऊपर डाला जाता है, इसीलिए यह समझ लेना जरूरी है कि मराठा राज्यके संविधानके अन्तर्गत उसका यथार्थ रूप क्या है और उसकी ठीक-ठीक उत्पत्ति किस तरहसे हुई। चूंकि विषय जटिल है और मामूली विद्यार्थी इसको ठीकसे नहीं समझ पाते, इसीलिए मैंने जान बूझकर इसे इतने विस्तारके साथ समझानेकी चेष्टा की है।

शिवाजी स्थायी रूपसे ज़मीन दे देनेके बिल्कुल खिलाफ़ थे, चाहे वह किसी भी उद्देश्यसे क्यों न दी जाती हो। उन्होंने दृढ़ता के साथ पुरानी रीतिको बन्द किया। इस सिलसिलेमें वे बहुधा उन सब ज़मीनों और जागीरोंको ज़ब्त कर लिया करते थे जो उनसे पहलेके शासकोंद्वारा सेनापतियोंको दे दी गयी थीं, और उनके बदलेमें नक़द तनख्वाहें दिया करते थे। राजवाड़ेकी वे पुस्तकें जिनमें शिवाजी के शासनकालका वर्णन है, ऐसे काग़ज़ातोंसे भरी पड़ी हैं जो यह दिखाते हैं कि शिवाजी ने किस प्रकार उन सब ज़मीनोंको हस्तगत कर लिया था जो जागीरके रूपमें दी जा चुकी थीं। वे जागीरदार बनानेकी प्रणालीसे होनेवाली हानियोंको स्पष्टरूपसे समझते थे। अशान्ति और दुर्व्यवस्था के उस युगमें जागीरोंका उपभोग करनेवाले सैनिक सरदारोंके ऊपर कठोर नियंत्रण रखना, अच्छी सड़कों और पत्रव्यवहारके साधनोंके अभावमें विशेषरूपसे कठिन था। वे प्राय: शासकके विरूद्ध विद्रोह कर देते, खुल्लम-खुल्ला दुश्मनसे मिल जाते, स्थायी रूपसे लड़ने के लिए कुशल सैनिक रखनेकी परवाह न करते, और राज्यके मूल्य पर धन एवं शक्तिका संचय करनेकी चेष्टा करते। इस प्रकार उनका रंग-ढंग क़रीब-क़रीब योरोपकी सामन्तशाहीकी तरह का था। यद्यपि जागीरके रूपमें ज़मीन पानेके लालचसे काफ़ी समय तक ऐसे सैनिक और सर्दार मिलते रहे जो बहादुरीके साथ राज्यकी महत्वपूर्ण सेवा करते थे, और इस प्रकार यह प्रणाली निश्चय ही सफल रही; पर यह कुछ ज़रूरी तो था नहीं कि उनके उत्तराधिकारी भी अपनी सेवामें उतने ही बहादुर, खुशीसे काम करनेवाले और सच्चे होते। वे बदलेमें राज्य की पर्याप्त सेवा किये बिना ही अपनी पैतृक-सम्पत्तिका उपभोग करने का हक़ जताते थे। जिस किसी ने पहलेपहल जागीर पाई होगी, वह ज़रूर एक योग्य व्यक्ति रहा होगा जो राज्यके प्रति की गयी अपनी सेवा एवं बलिदानके लिए पुरस्कार पानेका उचित अधिकारी था; परन्तु उसके उत्तराधिकारी साधारणत: बिल्कुल अयोग्य सिद्ध हुए। वे सैकड़ों तरीक़ोंसे राज्यको तकलीफ़ पहुंचाने और उसके साथ दग़ाबाजी करने लगे। शिवाजी ने अपनी जीवनवृत्तिमें बहुत पहले ही इस प्रणालीसे होनेवाली

हानियोंको समझ लिया था। इसीलिए वे हर तरहकी सेवाके लिए नक़द रुपया दिया करते थे और इस बातका हमेशा ध्यान रखते थे कि उनके पास खूब रुपया भरा रहे। उन्होंने विभिन्न धार्मिक संस्थाओंको अथवा दानके रूपमें दी हुई जमीनों तक को जब्त कर लिया था और बदलेमें उनको नक़द रुपया देने लगे थे।

किन्तु शिवाजी की मृत्युके बाद एक साथ बहुत सी प्रतिकूल परिस्थितियां आ जानेके कारण यह विवेकपूर्ण नीति छोड़ देनी पड़ी। अब मुझे उन परिस्थितियोंके विषयमें बताना चाहिए। अपने तीन गौरवशाली पूर्व-पुरुषों द्वारा आरम्भ किये हुए दक्षिण-विजय के अधूरे कार्यको पूरा करनेका पक्का इरादा करके, शक्तिशाली सम्राट् औरंगजेब ने एक विशाल एवं सुसज्जित सेना के साथ १६८३ में महाराष्ट्र के ऊपर आक्रमण कर दिया और अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अपने सुविस्तृत साम्राज्यके अपार आय-साधनोंको लड़ाईमें लगा दिया। वह जिन लोगोंको भी जीतनेका इरादा करता था वे उसके नेतृत्वमें काम करनेवाले सेनापतियोंका नाम सुन कर ही भयसे कांप उठते थे। थोड़े समयमें उसने बीजापुर और गोलकुंडा, दोनों राज्योंको मिला लिया, मराठा राजा सम्भाजी को पकड़ लिया और मरवा डाला, उसकी पत्नी और पुत्रको बन्दीगृहमें डाल दिया और एक ही झोंकमें अपना महान् उद्देश्य लगभग पूरा कर डाला। ऐसी शोचनीय परिस्थितिके मध्यमें शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम ने चारों ओर हाथ-पैर मारने आरम्भ किये और जो भी साधन उसके हाथ लगे उनकी सहायता से अपने राष्ट्रकी रक्षा करने, तथा मराठा शक्तिका विस्तार करनेके लिए चौथ प्रणालीको चलानेका कार्य आरम्भ किया। राजाराम के पत्रोंका एक नमूना नीचे दिया जाता है। यह पत्र उसने जुलाई, १६९६ में, गोआ के दक्षिण-पूर्व में स्थित एक छोटी-सी रियासत सुन्दा (Sunda) के शासक, सदाशिव नायक के नाम लिखा था। उसको पढ़ कर यह बात अच्छी तरहसे समझमें आ सकती है कि अपने हितकी रक्षा करनेके लिए उसने सहारा किस तरहसे प्राप्त किया। पत्र जिंजी से उस समय लिखा गया था जब कि सम्राट् न केवल मराठों को, वरन् दक्षिणी भारत भरके, दूसरे राज्यों और प्रदेशोंको भी, जो एक तरहसे स्वतन्त्र ही थे, जीत लेनेकी धमकी दे रहा था। पत्र इस प्रकार है: "हम आपका पत्र तथा उन सन्देशोंको पाकर प्रसन्न हैं जो आपने अपने दो विश्वसनीय प्रतिनिधि, कोन्हर पन्त और रायजी रुक्मांगदके हाथ भेजे हैं। हमारी वर्तमान स्थितिमें, आपकी ओरसे पारस्परिक सहायता एवं स्थायी मित्रता का जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है उसके सम्बन्धमें होनेवाले सौदेकी सारी

बातें विस्तारके साथ, उन लोगोंने हमें बता दी हैं और उन्हें स्पष्ट कर दिया है। हमने अपने मंत्री, शंकरजी पंडित सुमन्त और नीलकृष्ण के साथ बैठकर प्रस्ताव पर पूरी तरहसे विचार कर लिया है, और जैसा कि आपने प्रार्थना की है, हम प्रसन्नता के साथ इस समझौतेकी लिखापढ़ी कर रहे हैं और अपनी ओर से उसका पालन करनेके लिए धर्मके नाम पर शपथ लेकर उसे आपके पास भेज रहे हैं। हमलोगोंको विश्वास है कि आप भी अपनी ओरसे उसका पालन करनेकी चेष्टा करेंगे। आपका प्रस्ताव था कि २२,२०० हॉस (७८,००० रू०) सालाना कर के बदलेमें, वही रक़म जो इस समय आप मुसलमान शासकोंको दे रहे हैं, आपको और आपके उत्तराधिकारियोंको, अपने सारे क़िलों और महलोंके सहित पंचमहलोंका प्रदेश, स्थायी रूपसे दे दिया जाय। हम इस प्रस्तावको स्वीकार करते हैं, और मुसलमानोंको पराजित करने तथा उनसे या आपको सतानेवाले दूसरे शत्रुओंसे आपकी रक्षा करनेका वचन देते हैं। जब आपके शत्रु इस तरहसे पराजित कर दिये जायेंगे तब आपको हर साल नियमित रूपसे सालाना कर की रक़म हमको चुकानी होगी। इसके अतिरिक्त आपको मुसलमानों के साथ लड़ाई भी करनी चाहिए। इस तरहसे आप जो नये प्रदेश जीत लेंगे वह आपको दे दिये जायंगे। पर उस कृपाके लिए एक शर्त होगी। वह यह कि हमारी अधिपति शक्तिकी स्वीकृतिके रूपमें आपको उन प्रदेशोंके लिए पहलेसे निर्दिष्ट कर हमें चुकाने पड़ेंगे। जब कभी कोई बाहरी ताक़त आपको धमकायेगी या सतायेगी, तो हमारी फ़ौजें तुरन्त आपकी सहायता के लिए दौड़ा दी जायंगी और वे आपके लिए शांति एवं सुरक्षा की व्यवस्था कर देंगी। इस प्रकार हमलोग सदैव आपके राज्यके साथ मित्रवत् आचरण करते रहेंगे। इसी बातके लिए धर्मके नाम पर की हुई अपनी प्रतिज्ञा के चिह्न के रूपमें हम आपके पास अलगसे «बिल्व» की पत्तियां तथा महादेव जी पर चढ़े हुए फूलोंके हार और रोटी भेज रहे हैं। हमें विश्वास है कि आप इन्हें स्वीकार करेंगे और इस पवित्र मैत्रीको निरन्तर बढ़ाते* रहनेकी चेष्टा करेंगे।"

जब राजाराम महाराष्ट्र छोड़कर जिंजी चले गये, उस समय उनके खजानेमें बिल्कुल रुपया नहीं था। मराठा राज्यकी राजधानी, रायगढ़, सम्राट् के हाथमें थी। मराठों की न कोई सेना थी और न सरकार। यह राजाराम के कुछ चतुर समर्थकों, योद्धाओं और राजनीतिज्ञोंके निर्भीक दिमाग़ोंका ही काम था, जो परिस्थितिका सामना

* शिवा चरित्र साहित्य III, ४५२

करनेके लिए उठ खड़े हुए और स्थिति पर क़ाबू करनेके लिए अपनी सामर्थ्यके अनुसार अच्छेसे अच्छे साधन और उपाय ढूंढ़ निकाले। दूसरी ओर सम्राट् अपने विरोधियोंके उपायों और क्रियाओंकी पूरी तौरसे निगरानी करता रहा, और मराठा सैनिकोंको अपनी सेना में मिल जाने तथा भागे हुए छत्रपति के साथ लड़नेके लिए हर तरहके लालच दिखाकर तोड़नेकी भरसक चेष्टा करता रहा। उसने सम्भाजी द्वारा सताये हुए मराठा सर्दारोंको इनाम और जागीरें देकर मराठोंका पक्ष बहुत कमजोर कर दिया। ऐसी विपत्तिमय परिस्थितियों में पड़ कर राजाराम तथा उसके परामर्श-दाताओंको इस बातके लिए बाध्य हो जाना पड़ा कि वे अपने सहायकोंकी सेवाएं प्राप्त करने तथा उनको अपने अधीन बनाये रखनेके लिए अपनी ओरसे भी उनको उसी तरहके प्रलोभन दें। राजाराम ने मराठा सर्दारोंको जो कुछ लिखा उसका एक नमूना में आपको यहां दे रहा हूं—"हम यह जानकर प्रसन्न हैं कि तुमने देशकी रक्षा की है और भक्तिपूर्वक राजा की सेवा की है। तुम बड़े बहादुर और काममें आने वाले हो। हम जानते हैं कि तुम्हारे पास सम्राट् की दी हुई इनामकी जमीनें हैं, पर तुम अब उसका साथ छोड़ने और हमारे लिए लड़ने एवं हमारे तथा हमारे राष्ट्रके लिए यातनाएं सहनेके लिए तैयार हो। सम्राट् ने देशमें प्रलय मचा रखी है। उसने सारे हिन्दुओंको मुसलमान बना लिया है। अतः, तुमको (हिन्दुओंके) बचाव और प्रतिशोध के लिए सतर्कता के साथ उपाय ढूंढ़ निकालने चाहिएं। इस सम्बन्धमें तुम जो कुछ करो उसकी सूचना हमारे पास बराबर भेजते रहो। यदि तुम राजभक्तिसे विमुख न होगे, और इस घोर विपत्तिके समय राज्यकी (मराठा) सहायता करोगे तो, धर्मके नाम पर हम इस बातकी प्रतिज्ञा करते हैं कि तुम्हारी वंश-परम्परागत भू-सम्पत्ति तुम्हारे, तुम्हारे पुत्रों और उत्तराधिकारियोंके पास बनी रहने दी जायगी।"

इस तरह, मराठा दरबारसे इनाम और जागीरें प्रदान करनेवाले पत्र एवं सनदें लगातार भेजी जाने लगीं। उनका (पत्रों और सनदों का) मुख्य अभिप्राय यह था कि मराठोंके दल जहां तहां घूमते रहें, साम्राज्यके खजाने और प्रदेशोंको लूट लें और शत्रुको हर तरीकेसे परेशान करते रहें। ये सनदें और कुछ न थीं, केवल भावी पुरस्कारकी प्रतिज्ञाएं थीं, जिनके अनुसार मराठा सरदारोंको इस बातका विश्वास दिलाया गया था कि भारत के किसी भागम वे जो भी प्रदेश जीत लेंगे वे उन्हींके समझे जायेंगे। कुछ समय तक इधर-उधर घूमनेवाले मराठोंके दल इस खेलसे लाभ उठाते रहे; वे रुपया उधार लेते, सेनाएं तैयार करते और दूरस्थ प्रदेशों पर चढ़ाई

कर देते। इस प्रक्रिया से बंक और लड़ाईके व्यापारको अचानक प्रेरणा मिल गयी। मैं आपके सम्मुख केवल एक उदाहरण देता हूं। रामचन्द्र पंत, जो राजारामके महामात्य—(महान् अमात्य) थे, एक पत्रमें अपने स्वामीसे एक पतांकरकी सेवाएं प्राप्त करनेकी सिफ़ारिश करते हैं। वह पत्र इस प्रकार है: "इन पतांकरोंके पास वंश-परम्परागत «वतन» है। उन्होंने ५,००० सैनिक इकट्ठा करनेका वचन दिया है और उसके बाद वे पंच सहस्री कहे जायंगे। यह राज्य देवताओं, मराठों और ब्राह्मणोंका है। शत्रुकी सेनाओंको कुचलनेमें पतांकरोंको बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। इस कामके लिए उन्होंने अपने पास जो कुछ था वह तो खर्च कर ही दिया, पर उसके अलावा तमाम रुपया कर्ज लिया है। अतः उनके त्यागके लिए उचित पुरस्कार मिलना ही चाहिए, और इसीलिए हम «इनाम» के तौर पर आगे दिये हुए १२ गांव स्थायी रूपसे दे देंगे।" उस समयके मराठा प्रशासकों के सम्मुख इस तरहके «इनामों» और पुरस्कारोंके लिए हजारों प्रार्थनापत्र आने लगे। वे विशेष-रूप से छत्रपतिका ध्यान, उनकी पंचमुखी सेवा को ओर आकर्षित करते हैं। उनमें लिखा है: (१) "हमलोग मुग़लोंकी ओर नहीं मिल गये; (२) हमलोग किसी न किसी तरहसे खेतीका काम चला रहे हैं; (३) हम सरकारको लगान देते हैं; (४) हमलोगोंने डाकुओं और लुटेरोंसे देशकी रक्षा करनेके लिए बड़ी-बड़ी फ़ौजें रख छोड़ी हैं; और इसके अलावा (५) हम अपनी जानको बाजी लगाकर छत्रपतिकी लड़ाइयां लड़ते हैं।" इतना ही नहीं, वे उन प्रलोभनोंको दुहराते भी हैं जो सम्राट् की ओरसे उन्हें दिये गये थे, और अपने स्वामीके सामने इस बातकी मांग पेश करते हैं कि वह उनको कुछ और दें। वे कहते हैं: "हम आप ही के भाई-बन्द हैं। हमारी हालत कम से कम उन लोगोंसे बदतर तो न होनी चाहिए जो (आपको छोड़कर) चले जाते हैं और उससे (सम्राट् से) बढ़िया-बढ़िया इनाम पाते हैं।" इस तरह हम स्पष्ट रूपसे देख लेते हैं कि जागीरकी वह प्रणाली तथा सैनिक «सरंजाम», जिसे शिवाजी ने बड़ी कठोरता के साथ दबा रखा था, किस प्रकार पुनर्जीवित हो उठे; और दक्षिणमें होनेवाले सम्राट्के दीर्घकालीन युद्धों तथा उनसे पैदा होनेवाली गड़बड़ीके युगमें किस प्रकार उसकी जड़ें गहराई तक पहुंच गयी। वास्तवमें अविवेकपूर्ण ढंगसे असंख्य इनाम दिये जानेके कारण इतनी ज्यादा गड़बड़ी पैदा हो गयी थी कि जब राजाराम जिन्जी से सतारा लौटकर आया तो उसे मालूम हुआ कि एक जिलेके एक ही समयमें कई हक़दार थे। इसीलिए उसको एक विशेष न्यायालयकी स्थापना करनी पड़ी जो

«वतनों» की जमीनके सारे हक़ोंकी जांच करके उनको ठीक-ठाक कर सकें, और कुछ निश्चित सिद्धान्तोंके अनुसार उनका «हक़ोंका» खंडन अथवा उनकी पुष्टि करनी पड़ी। जब १७०० ई० में राजाराम की मृत्यु हो गयी, और अगले कुछ वर्षों तक उसकी रानी ताराबाई ने शासनका काम संभाला तब उसने इस बातकी पूरी कोशिश की कि नये «सरंजाम» प्रदान करनेकी प्रथा बन्द कर दी जाय और जो सरंजाम दिये जा चुके थे उनमें से भी कुछ काट दिये जांय। वह और उसके सलाहकार इस बातसे पूर्णतया अनभिज्ञ थे कि शिवाजी के स्वास्थ्यप्रद नियमोंसे विचलित होनेके कारण राज्य किस तरह विनाशके गर्तकी ओर बढ़ता चला जा रहा था, परन्तु आत्म-रक्षा के लिए तथा परिस्थितियोंकी विषमता के कारण वे उस प्रथा को बन्द करनेमें असमर्थ थे जो वर्षोंसे प्रचलित होनेके कारण दृढ़ हो गयी थी।

१४. मौलिक उद्देश्य से विमुख होना.

शीघ्र ही, इन जागीरदारों को अपने वशमें रखना और उनसे अनुशासन तथा सेवा प्राप्त करना केन्द्रीय सरकार के लिए बड़ा कठिन हो गया। वे अपने क्षेत्र के अन्तर्गत इनाम के रूप में मिली हुई अपनी जमीनें तक जिसे चाहते उसे दे डालते थे। मैं यहां पर उन सनदों का एक नमूना पेश करता हूँ जो छत्रपति की ओरसे उन आवेदन-पत्रों के जवाब में जारी की जाती थीं, जिनमें «इनामों» की जोरदार मांग होती थी। इस तरह के आवेदन-पत्र लगातार आते रहते थे। वे इस प्रकार हैं—

"इस-इस स्थान पर तुम हिज़ हाईनेस छत्रपति के पास यह प्रार्थना लेकर आये थे कि तुम्हारे पूर्वज बहुत दिनों तक बराबर राज्यकी सेवा करते रहे थे, और अब तुम स्वयं भी भक्ति सचाई के साथ सदैव उसकी सेवा करना चाहते हो; तुम्हारे पास एक बड़ा परिवार है, और हिज़ हाईनेस को कृपा करके उसके (परिवार के) भरण-पोषण की व्यवस्था करनी चाहिए। तुम्हारी इस प्रार्थना पर दयापूर्ण दृष्टि से विचार करके, हिज़ हाईनेस ने यह-यह गांव «इनाम» के तौर पर तुमको, तुम्हारे वारिसों और उत्तराधिकारियों को स्थायी रूप से देने की कृपा की है। हम शपथ लेकर अपने सब उत्तराधिकारियों को इस बात का आदेश देते हैं कि यह इनाम वापस न लिया जाय"। प्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार की प्रार्थनाओं का अर्थ है, कि पहले जो कुछ विपत्तिजनक एवं सच्ची सेवा के लिए दिया जाता था, वही बाद को उत्तराधिकारियों-द्वारा केवल इसलिए मांगा जाने लगा कि वे अपने बड़े से परिवार को चला सकें और उसके (परिवार के) वे निकम्मे

लोग मौज उड़ा सकें जो सरकार की कोई सेवा न करते थे और मुफ़्त में इनाम का दावा करते थे। व्यक्तिगत योग्यता के बिना, और बदले में किसी प्रकार की मेहनत किये बिना, मिल जाने वाली भूमि का उपभोग करने की इस आदत ने, जनसेवा के आधारों को, और स्वयं समाज के आचरणों तक को जड़ से उखाड़ डाला। ब्राह्मण लोग सरकार से बराबर रुपया ऐंठते रहते थे। चूंकि सरकार अपने को गौ-ब्राह्मणोंका संरक्षक समझती थी अतः उन्हें (ब्राह्मणोंको) एक रुपये से लेकर एक लाख रुपये तक और उससे भी अधिक मिलने में किसी तरह की कठिनाई न होती थी। प्रत्यक्ष रूप से वे राज्य की कोई सेवा न करते थे। बस उनका काम सिर्फ़ इतना ही था कि वे धार्मिक पूजा-पाठ करते रहें, राजा और राज्य के ऊपर आशीर्वादों की वर्षा करते रहें और उनकी सफलता एवं कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहें। यह निम्नतम ढंग की भिक्षा-वृत्ति थी, जिसके अन्तर्गत जन्म, वंश, परम्परा और आदेश अधिकारों की प्रधानता थी। फलस्वरूप राज्य के पास नये गुण और व्यक्तिगत योग्यता को स्वीकृति देने के लिए कोई गुंजाइश न रह गयी थी। पूरी ही मराठा रियासत इस तरहसे दूसरोंको दे दी गई। जिन्होंने सेवा की और अपनेको बलिदान कर दिया, और जिन्होंने कुछ भी नहीं किया, धीरे-धीरे दोनों ही बराबर एक पलड़े में तौले जाने लगे। यह «सरंजामी» प्रणाली का सबसे बड़ा दोष था। यह प्रणाली उस राज्यरूपी भवन के पतन का एक बहुत बड़ा कारण बनी जिसको शिवाजी ने इतनी चतुराई के साथ बनाकर खड़ा किया था।

तत्कालीन परिस्थितियों में ये सारे दोष किस प्रकार स्थायी बन गये, इस बात को जान लेना भी एक रोचक विषय है। औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् मुग़ल साम्राज्य के अन्तर्गत पैदा होनेवाली दुर्व्यवस्था एवं दुर्बलता के बीच अनेक घमंडी और महत्त्वाकांक्षी मराठा सरदार इधर-उधर घूमने लगे, और जो भी प्रदेश उनके हाथ लग जाते, उनके ऊपर अपना अधिकार जमाने लगे। पर यह विजय किसी तरह भी उस प्रकार की विजय नहीं कही जा सकती जैसी कि शिवाजी ने अपने राज्य के लिए की थी—वह राज्य जिसे उसने उन सेनाओं की सहायता से जीता था जिनको वेतन वह स्वयं देता था और जो प्रत्यक्ष रूप से उसके नियंत्रण में थीं। बाद के दिनों में विभिन्न मराठा सरदार किसी एक शक्ति के नियंत्रण में न रह गये और उनकी अलग-अलग इकाइयां बन गयीं जिनमें किसी प्रकार की एकता न थी। अमात्य रामचन्द्र पंत ने, जो अपने कार्य में बड़े कुशल थे, कुछ हद तक उनके ऊपर नियंत्रण रखने की चेष्टा की; पर वे प्रायः

हठी सिद्ध हुए। वे लोग अपने निजी स्वार्थपूर्ण रुचियोंको देखते रहते और शत्रु-पक्ष की ओर से कुछ अधिक पा जाने की आशा दिखायं पड़ते ही उधर जा मिलने के लिए हर समय तैयार बैठे रहते थे। यदि रामचन्द्र पंत ने उनके ऊपर और कठोर अनुशासन क़ायम करने की चेष्टा की होती, तो इस बात की पूरी सम्भावना थी कि वे खुल्लमखुल्ला मुग़लों की नौकरी मंजूर कर लेते। इन कठिनाइयों के कारण मराठे धीरे-धीरे एक उस तरह का दृढ़ संविधान न बना सके, जैसा कि अंगरेज़ों ने अपने देश में बना लिया।

तो भी, हमें इस बातका ध्यान जरूर रखना चाहिए कि इस तरहकी तुलना प्रायः निराधार होती है, क्योंकि स्थितिसे सम्बन्ध रखनेवाले सारे तथ्य हमारे सामने नहीं हैं। इतिहासकी अनेक समस्याओंका हल निकाला जा सकता है, बशर्ते कि हमारे मन में उन परिस्थितियों एवं उस वातावरण की ठीक-ठीक धारणा हो जो उन्हें प्रभावित करती हैं। हम अच्छी तरहसे इस बातको जान सकते हैं कि शिवाजी द्वारा स्थापित की हुई सरकार उसके बाद बहुत दिनों तक क्यों न क़ायम न रह सकी और पेशवाओं द्वारा निर्मित प्रणाली शिवाजी की मौलिक धारणा से किस प्रकार पूर्णतया भिन्न थी। इसलिए, ऐसे समयमें, जब कि कार्यकर्ताओंको चारों ओरसे अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ रहा था, किसी निश्चित संविधानकी कल्पना भी न की जा सकती थी।

पेशवाओंके कालमें देशभरमें विभिन्न स्थानों पर जागीरें या सैनिक अड्डे बनानेकी प्रणाली नितान्त आवश्यक क्यों बन गयी, इसका एक कारण यह था कि उस समय किसी स्थान पर खतरा पैदा होते ही राजधानीके साथ शीघ्रता से पत्र-व्यवहार करने तथा सेना भेजनेके लिए कोई सैनिक मार्ग न थे। शिवाजी के समयमें केन्द्रीय मुग़ल सरकार शक्तिशाली थी और वह किसी महात्वाकांक्षी योजना के लिए, नर्वदा पार करके आगे बढ़नेका साहस न करता था; शिवाजी खास महाराष्ट्र और सुदूर दक्षिण में जो भी सफलता प्राप्त कर सका उसी में उसको सन्तुष्ट रहना पड़ा। परन्तु औरंगज़ेब की मृत्युके उपरान्त विजय और शक्तिके लिए सामान्यरूपसे सभी उत्कट प्रयत्न करने लगे, जिसमें पश्चिमी जातियों तक ने भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। यदि पेशवाओंने अपने प्रयासोंको केवल दक्षिण तक ही सीमित रखा होता तो इस बातकी पूरी सम्भावना थी कि उत्तरके राजपूत, प्रान्तीय सूबेदार और स्थानीय सरदार अपना-अपना स्वतंत्र शासन स्थापित कर लेते। उस हालतमें पेशवाओंको उस समय, जब कि वे «हिन्दू-पाद-पादशाही» के आदर्शको पूर्ण करनेकी चेष्टा कर रहे थे, उसके (शासनके) ऊपर विजय प्राप्त करनेके लिए अधिक प्रयास एवं धन लगाना

पड़ता। इसलिए यह समझ कर कि उस आदर्शको कार्यरूपमें परिणत करनेका उप-युक्त समय आ गया है, औरंगजेब की मृत्यु हो जाने पर सर्दार लोग शाहू के दर्बारमें जमा हुए। सबने मिलकर सलाह की, और शाहूकी आज्ञा से विजयकी योजनाएं बनायीं, विभिन्न कार्यकर्ताओंके बीच क्रिया-क्षेत्रों का विभाजन किया, और किसी स्पष्ट आयोजन अथवा सबको निर्दिष्ट करने या एक सूत्रमें बांध कर रखने वाली नियमावली के बिना ही, अपने अपने मिशनके लिए चल पड़े। विचार यह था कि सैनिक नियंत्रणके लिए एक केन्द्र चुन लिया जाय, और वहां पर दृढ़ पारिवारिक रुचियोंके सहित स्थायी रूपसे मराठों की बस्तियां बसा दी जायं। यह एक ऐसा तरीक़ा था जिसकी वजहसे थोड़े ही दिनोंके अन्दर देश भरमें मराठों की छोटी-छोटी राजधानियां बन गयीं। हर एकमें एक दीवार या किला था, और सैनिक तथा लगान-सम्बन्धी कार्योंके लिए पर्याप्त व्यवस्था थी। प्रणालीकी मौलिक धारणा एवं रूपरेखा में किसी प्रकारके अन्तर्वर्ती दोष न थे। यदि केन्द्रीय सरकारकी ओरसे पर्याप्त नियंत्रणकी व्यवस्था होती और काम करने वालोंमें आज्ञा-पालन की प्रवृत्तिका अभाव न होता, तो यह प्रणाली सफल होती। सच तो यह है कि जब तक केन्द्रीय सरकार दृढ़ रही, और जब तक विशिष्ट संगठन एवं युद्ध-सामग्री से युक्त योरोपीय शक्तियोंके साथ किसी प्रकारकी स्पर्धा न रही, तब तक यह प्रणाली सन्तोषजनक ढंगसे काम करती भी रही।

इस प्रकार «सरंजामी» प्रथा ने सतारा और पूना से बाहरके तमाम केन्द्रों तक जानेवाली अच्छी सैनिक सड़कोंके अभावको पूर्ण कर दिया। पेशवाओंके लिए थोड़े से समयमें और अपने अल्प आय-साधनों के साथ, इस तरहके मार्ग बनवाना सम्भव न था। चढ़ाई, या पारिभाषिक शब्दोंमें जिसे «मुलुकगीरी» कहते हैं, आरम्भ करनेके पहले ही से सर्दारोंने उन प्रदेशोंमें जिनके ऊपर वे चढ़ाई* करनेवाले थे, जागीरोंके लिए सनदें प्राप्त करनेकी चेष्टा की। शाहू के आगमनसे स्थितिमें कोई सुधार न हो पाया। पेशवाओंने पुराने मंत्रियों और शिवाजी के समयके सर्दारोंको अपना आज्ञा-कारी बनानेकी चेष्टा तो जरूर की, लेकिन इस कामको पूरा करनेके लिए उन्हें अपने लिए नये सर्दार बनाने पड़े, जैसे सिन्धिया और होल्कर। पर बादको उन्होंने अपने पूर्वपुरुषोंका अनुकरण किया और जब उनकी अपनी बारी आई तब वे भी दुर्बल पेशवाओं के नियंत्रणका विरोध करने लगे। यदि पेशवा लोगोंने और अधिक कठोर अनुशासन

* एस० सी० साहित्य V. ७६७ देखिए।

लादनेकी चेष्टा की होती, तो उन लोगोंने जो कुछ कर लिया वह भी न कर पाते। वास्तवमें, केन्द्रीय मुग़ल सरकारके कमज़ोर हो जानेके कारण १८ वीं सदीके भारतने अनेक महात्वाकांक्षी तथा मारे-मारे फिरनेवाले व्यक्तियोंको विशेष रूपसे अनुकूल क्षेत्र प्रदान किया। उत्तरमें सम्राट्के प्रान्तीय सूबेदार, जैसे सफ़दर जंग, अलीवर्दीखां, निज़ामुल्मुल्क, विभिन्न बुन्देला राजा और सिख सरदार, जाट और रुहेला सरदार, और दक्षिणमें अर्काट, सवानूर (Savanur), कदप्पा, और करनूल (Karnool) के नवाब और मैसूर, बेदनूर और दूसरी जगहोंके शासक जो थोड़े बहुत शक्तिशाली थे, इन सभी ने, अपने-अपने ढंगसे स्वतंत्र शक्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा की, और अपनेसे श्रेष्ठतर शक्तिके सम्मुख केवल उतने ही दिनों तक सिर झुकाया जब तकके लिए उन्हें मजबूरन ऐसा करना पड़ा। मराठा सेनाएं अक्सर उनको दबा देतीं, पर ज्योंही सेनाएं उनकी सीमाओंसे हट जातीं, त्यों ही उनकी पहलेवाली क्रियाएं फिर आरम्भ हो जातीं। पेशवा को सालाना कर वसूल करनेके लिए हर साल पूरे भारतवर्ष में सेनाएं भेजनी पड़ती थीं ; इस प्रकार यह मानना पड़ता है कि पेशवा लोग जिस "हिन्दू-पद-पादशाही" की स्थापना करना चाहते थे, उसके नाम बड़े, पर दर्शन थोड़े थे।

४

शाहू और मराठों का विस्तार

१. शाहू का प्रारम्भिक जीवन,—औरंगज़ेब की मृत्यु के बादकी स्थिति.

मराठा-राज्यको जन्म देनेवाली परिस्थितियों तथा सम्भाजी और राजाराम के खतरनाक शासनकालमें विकसित होने वाली «सरंजामी» प्रथा की समालोचना कर लेनेके उपरान्त, अब हम अपना ध्यान मराठा नीतिके दूसरे अंगकी ओर लगायेंगे। उस अंग का सम्बन्ध उन परिवर्तनोंसे है जो औरंगज़ेबकी मृत्युके फलस्वरूप महाराष्ट्र की स्थिति में पैदा हुए। उस स्थितिके अन्तर्गत कुछ ऐसी मुख्य बातें हैं जिन्हें मराठा इतिहासके विद्यार्थी ठीकसे नहीं समझ पाये हैं। उनको जानकर ही वे पेशवाओंकी नीति एवं कृतियोंका उचित मूल्यांकन करनेमें समर्थ हो सकते हैं। इस सम्बन्धमें पहली और सबसे जरूरी बात जो ध्यान देने योग्य है, वह है शाहूके व्यक्तित्व का स्वरूप। उसने जिस आरामतलबीके साथ लगभग पचास वर्ष तक शासन किया उसके कारण उस युग में मराठा नीतियां तो उसके व्यक्तित्व से प्रभावित तथा नियंत्रित होती ही रहीं, पर साथ ही साथ, मराठा राज्य की भावी प्रगति का भी एक निश्चित रूप निर्धारित हो गया।

महान् संस्थापक शिवाजीके बाद, शाहूने मराठा राज्य के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भाग लिया। शाहू का जन्म मई, १६८२ ई० में हुआ। बाल्यावस्था से ही वह अपनी सावधान माता ईशूबाई (Yesubai) और साहसी पिता सम्भाजी के साथ इधर-उधर भटकता और कठोर से कठोर विपत्तियां और दुःख सहन करता रहा। इन यातनाओं का अन्त तभी हुआ जब रायगढ़ का दुर्ग जीत लेने के बाद औरंगज़ेब

ने सात वर्ष की अवस्था में उसे बन्दी बना लिया। वहां पर वह शाही शिविरके साथ-साथ सुरक्षित बंदीकी भांति ले जाया जाता था। औरंगज़ेब की पुत्री ज़िन्तुन्निसा बेगम के दयापूर्ण व्यवहार के कारण शाहू को सारे व्यक्तिगत सुख उपलब्ध थे। औरंगज़ेब स्वंय, मराठों के राजाके साथ क्रूरताका व्यवहार करके, उनकी शक्तिको चकनाचूर करनेके प्रयासमें विफल हो चुका था। उसने मृत शत्रुके इस निर्दोष पुत्रके लिए अपने दुष्ट अभिप्रायों को चतुराईके साथ मन ही मन छिपाकर, अपने निजी शिविरमें उसका पालन-पोषण किया, ताकि मराठोंके ऊपर विजय प्राप्त करनेमें, आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर उसका उपयोग किया जा सके। शाहू ने अपने जीवन के १८ वर्ष कारावासमें बिताये। यह लम्बी अवधि उसकी युवावस्था का सर्वोत्कृष्ट भाग थी, और यही उसके लिखने-पढ़ने का समय था—फिर उसका पालन-पोषण भी शाही ज़नानखानेमें हुआ। इन सबका परिणाम यह हुआ कि यद्यपि उसके हृदयमें अपने सगे सम्बन्धियों के लिए सहज प्रेम तथा भावनाएं बनी रहीं तथापि उसका स्वभाव धीरे-धीरे बड़ा कोमल और स्त्रियों जैसा बन गया। पर साथ ही उसमें कई एक गुण भी थे--उसमें पर्याप्त सामान्य बुद्धि थी, पुरुषों और विषयों का निर्णय करने का व्यावहारिक ज्ञान था, और सबसे बढ़कर उसका अत्यन्त उपकारी तथा उदार स्वभाव था। वह कोई बुरा काम या पाप कर्म करने से हमेशा डरता था। उसकी एक बड़ी भारी और एकमात्र कमी यह थी कि वह आराम-पसन्द था और युद्धक्षेत्रमें सैनिकों का नेता बनकर क्रियाशील सैनिक-जीवन व्यतीत करने से घृणा करता था। इस प्रकार वह सदैव उन तमाम जगहों की भौगोलिक दशा तक से अपरिचित रहा, जहां उसके मंत्री और सेनापति उसकी योजनाओं एवं आदेशों को कार्यान्वित कर रहे थे। औरंगज़ेब ने मराठों के साथ होने वाले अपने युद्धमें उसका प्रयोग सदैव एक अस्त्र के रूपमें किया था। उसने उसको मुसलमान बनाने की निष्फल चेष्टा की और यहां तक प्रस्ताव रखा कि यदि वह चाहे तो शाही निगरानीमें रहकर शिविर से बाहर जाने और मुग़लों के अधीनस्थ शासक की तरह राज्य करने की आज्ञा प्राप्त कर सकता है। शाहू को सन्देह हुआ कि कहीं सम्राट् उसके साथ कुछ और बेईमानी न कर बैठे इसलिए उसने अपनी मुक्ति की इस अधूरी आशा से लाभ उठाने से इन्कार कर दिया। सम्राट्की मृत्यु के पश्चात् जब आज़मशाह अपनी सेना सहित उत्तर की ओर रवाना हुआ, तब शाहू भी उसके साथ हो लिया और भोपाल के निकट वह मुग़ल शिविर से अलग हो गया, और अपनी चाची ताराबाई से मराठा राज्य जीत लेने के लिए दक्षिण

लौट आया। यह वह स्कीम की जिसका आयोजन बृद्ध सम्राट् मराठों के बीच फूट डालने के उद्देश्य से बहुत पहले ही कर चुका था। मराठा सिंहासन प्राप्त करने के लिए उसे अपने चचेरे भाई शिवाजी और अपनी चतुर चाची ताराबाई के साथ लड़ना पड़ा। इस भयसे कि कहीं शाहू सम्राट् की अधीनता छोड़ कर अपने को स्वतंत्र न घोषित कर बैठे, उसकी माता, पत्नियां और चचेरे भाई बन्धक के रूपमें दिल्ली ले जाये गये थे। सच तो यह है कि जब उसने इस बातकी प्रतिज्ञा की कि वह सदैव दिल्लीके अधीन रहकर उसके प्रति राजभक्ति दिखाता रहेगा और आवश्यकता पड़ने पर सम्राट् की आज्ञाओंका पालन करेगा, तभी उसे मुक्ति मिली और उसे नर्वदा पार अपने देशको लौट जाने की आज्ञा मिली।

शाहू स्वभाव से धर्म-भीरु और ईश्वरसे डरनेवाला था, अत: उसने सचाईके साथ अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, और इसके बाद जब कभी उसके सलाहकारोंने मुग़ल साम्राज्यके विरुद्ध खुल्लमखुल्ला लड़ाई छेड़ने का लालच दिखाया या उससे प्रार्थना की तो उसने दृढ़ताके साथ सबका अवरोध किया। उसके पितामह शिवाजीने डंके की चोट पर मुसलमानी शासन का विरोध करके अपना जीवन-कार्य आरम्भ किया था, और इस बातकी पूरी आशा की थी कि उसका दमन करके वह अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर लेगा। शाहू ने दूसरी ओर, इस स्थिर सिद्धान्त को बिल्कुल ही छोड़ दिया, और यहां तक कि उस भयंकर युद्धको भी भुला बैठा जो उसके पिता और चाचा ने सम्राट् के साथ पचीस वर्षों तक लड़ा था। उसने अपने सेनापतियों तथा मंत्रियों को आदेश दिया कि वे केन्द्रीय मुग़ल सत्ता को हानि पहुंचाये बिना, अपने लिए नये प्रभाव एवं क्रिया-क्षेत्र स्थापित कर लें। यह असम्भव कार्य शाहू के पेशवाओंके कंधे पर आ पड़ा, जिन्होंने इस बातकी भरसक चेष्टा की कि एक ओर वे शाहू को आराम के साधन जुटाएं, और दूसरी ओर अपनी स्थितिकी परिवर्तित दशाओं में, शिवाजी के आदर्श को पूर्ण करने का अधिक से अधिक प्रयत्न करते हुए यथाशक्ति « हिन्दू-पद-पादशाही » का कार्य करते रहें। वास्तव में सम्राट् फ़र्रुखसियर को विपद-कालमें सहायता करनेकी उत्कट इच्छासे प्रेरित होकर ही शाहू ने पेशवा बालाजी विश्वनाथ को १७१८ ई० में सबसे पहिली बार सेना सहित दिल्ली रवाना किया था। अक्सर यह सवाल उठता है कि निजामको एक मुस्तक़िल और खतरनाक पड़ोसी की तरह से क्यों छोड़ दिया गया, और दक्षिणमें पेशवाओंने उसे निश्चित रूपसे पराजित करके बिल्कुल शक्तिहीन क्यों नहीं बना दिया। इस प्रकार की अव्यवस्था को समझनेके

लिए पेशवा की इस अनिश्चित स्थिति को हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए। सचमुच यह एक विचित्र-सी बात लगती है कि जब पेशवाओं की सेनाएं अटक और मैसूर जैसे दूरवर्ती स्थानों को विजय कर रही थीं, तो घरसे बिल्कुल पास अहमदनगर, त्र्यम्बक और जुनार जैसी जगहों में मुसलमान शासक निर्विघ्न होकर राज्य कर रहे थे। आजकल के राजनैतिक सम्भाषणमें, शाहू को उसकी ईश्वरसे डरने वाली, दयापूर्ण प्रकृतिके कारण अहिंसाका प्रवर्तक कहना अनुचित न होगा। उसीकी (अहिंसा) शक्तिसे, मराठा राज्यका विस्तार और शक्ति दोनों ही तेजीके साथ बढ़ गये। उसकी मृत्यु के बाद यह नीति ऐसी पलट गयी कि उत्तरी भारतके मुसलमानोंकी तरफ़से एक जबर्दस्त विरोध उठ खड़ा हुआ, जिसका अन्त पानीपत की भयंकर विपत्तिके रूप में हुआ।

२. मराठाराज्यका विभाजन—पेशवा लोग उत्तर की ओर क्यों निहारते थे.

सम्राट् को आशा थी कि शाहू के कारावाससे मुक्त होते ही दक्षिणमें घरेलू युद्ध आरम्भ हो जायगा और इस तरहसे अप्रत्यक्ष रूपमें, मराठे आपसमें लड़-भिड़ कर शक्तिहीन हो जायंगे। पर ऐसा न हुआ। शाहू ने इस बुद्धिमानीके साथ घरेलू युद्ध रोक दिया कि देखते ही बनता था। उसने जनवरी, १७०८ में अपने राज्याभिषेकके तुरन्त बाद, जितना भी राज्य उस समय था, उसका आधा अपने चचेरे भाई शिवाजी के लिए अलग कर दिया, यद्यपि ताराबाई पूरे ही पर अपने लड़केका अधिकार जताती थी। कारावाससे छूटनेके बाद दक्षिणमें शाहू को स्थिति पहले चार-पांच वर्षों तक बड़ी ही भयपूर्ण रही। ताराबाई ने उसको एक ठग घोषित कर दिया और दृढ़ता के साथ यह कहना आरम्भ किया कि शिवाजी महान् ने जिस राज्यकी स्थापना की थी, वह उसके (शिवाजी के) पुत्र सम्भाजी के हाथसे निकल गया था; उसके पति राजाराम ने एक बिल्कुल नया राज्य बनाया था, इसलिए क़ानूनी तौर पर वह पूरा का पूरा उसके लड़के को मिलना चाहिए। शाहू का उसके ऊपर कोई अधिकार नहीं है। तो भी शाहूने अपनी चाची और चचेरे भाई के साथ होनेवाले प्रथम संघर्ष में अद्भुत क्रियाशीलता दिखायी। यह युद्ध लगभग चार वर्ष तक चलता रहा। अन्तमें राजाराम के द्वितीय पुत्र सम्भाजी ने उसको और उसके पुत्रको (शिवाजी को) बन्दी बना लिया। बाद को शाहूने सम्भाजी के साथ सन्धि कर ली। उसने राज्यके दो भाग कर लिये; कृष्णानदी के दक्षिणका राज्य उसन सम्भाजी को दे दिया और उसके उत्तर का भाग

स्वयं ले लिया। उस समय मराठा राज्यका विस्तार आजकल के सतारा और पूना जिलों से अधिक न होगा। यद्यपि उसके दो बराबर-बराबर भाग कर देने के कारण शाहूके पास बिल्कुल छोटा-सा भू-भाग रह गया था, तथापि उपर्युक्त व्यवस्था के द्वारा उसे उत्तरमें राज्यविस्तारके लिए एक नया क्षेत्र प्राप्त करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई थी, क्योंकि दक्षिणका राज्य चचेरे भाईको सौंप दिये जानेके कारण उधरका मार्ग उसके लिए बन्द हो गया था। जो लोग शाहूको इस बातका दोष देते हैं कि उसने दक्षिणमें अपने घरकी व्यवस्था करनेके पहले ही उत्तरमें तमाम रुपया खर्च करके दूर-दूर की जगहोंको जीतनेके लिए सेनाएँ भेजीं, उन्हें अपने मनमें यह बात स्पष्ट रूपसे रख लेनी चाहिए। शाहूके प्रतिनिधि और उसके पेशवा बाजीराव प्रथमके बीच होनेवाला प्रसिद्ध वाद-विवाद, जिसका वर्णन ग्रान्टडफ़ और अन्य लोगोंने बड़े सजीव ढंगसे किया है, और जो शायद एक कोरी कल्पना मात्र है, मराठा-राज्यके इसी विभाजनके ऊपर केन्द्रित है और उसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार शाहूके सामने उस विषयमें और कोई उपाय न था। उसके सामने दो ही उपाय थे—एक यह कि वह कलहकारी तत्त्वोंके बीचमें रह कर अपने छोटे-से पैतृक राज्यसे सन्तुष्ट रहे और राज्य-विस्तारकी आशा सदा के लिए छोड़ दे, और दूसरा यह कि उत्तरमें जबर्दस्ती एक नया राज्य बना ले।

हम इस बातको निश्चित रूपसे समझ सकते हैं कि जिस समय विभाजन किया गया था, उस समय यह समझा गया था कि सम्भाजी और शाहू दोनों अपने-अपने क्षेत्रोंमें उत्साहके साथ कार्य करेंगे; पर सम्भाजीने अपने आय-साधन और अवसर, अपना समय और शक्ति, सब कुछ व्यर्थके पारिवारिक झगड़ों और शाहूको दबानेके लिए बेकारके षड्यंत्रोंमें नष्ट कर दिया; दूसरी ओर शाहूने पेशवा बाजीराव, सेनापति दभदे (Senapati Dabhde), सिन्धिया, ऊदारजी पवर, कान्होजी और रघुजी भोंसले, मल्हार राव होल्कर, बाबूजी तथा नायक जैसे क्रियाशील एवं प्रबल व्यक्तियोंको, तथा बरवे लोगोंको, चस (Chas) के जोशियोंको, हिंगने, बोकिल (Bokils) और दूसरे लोगोंको अपने यहां नौकर रखा और उन्हें अपना पराक्रम तथा राजनीतिज्ञता प्रदर्शित करनेका पूरा मौक़ा दिया। चतुर प्रबन्धकोंके हाथोंमें पड़कर, निजी सम्पत्ति की नाईं एक साम्राज्य भी धीरे-धीरे बढ़ता चला जाता है। यदि बढ़ा हुआ मराठा-साम्राज्य पतनके गर्तमें जा गिरा तो उसका दोष शाहूके राज्य-निर्माण और राज्य विस्तारमें नहीं खोजा जा सकता; क्योंकि आज हम सभी जानते हैं कि आरम्भमें

(मराठा) राजघरानेकी उचित व्यवस्था करनेके लिए चाहे कितनी ही सावधानी क्यों न बर्ती जाती, अन्तमें होता वही जो हुआ।

आदिकालसे लेकर आज तक मालवा भारतीय-प्रभुत्व की कुंजी रहा है। इस बृहत् महाद्वीप पर प्रभुता स्थापित करने की अभिलाषा करनेवालोंके लिए मालवा में पैर जमा लेना कितना आवश्यक है, इस बातको "मालवा इन ट्रान्जिशन" के विद्वान् लेखकने बड़ी योग्यता के साथ स्पष्ट शब्दोंमें समझाया है। मैं अपने पाठकों को सलाह दूंगा कि वे हालमें छपी हुई उस पुस्तकके तीसरे अध्यायको सावधानीके साथ अवश्य पढ़ें। लेखक कहता है—"दक्षिणके छ: प्रान्तों पर नियंत्रण होनेका तात्पर्य था—एक महान् शक्ति की प्राप्ति। परन्तु दक्षिण पर नियंत्रण रखनेके लिए मालवा के ऊपर थोड़ा बहुत अधिकार स्थापित करना जरूरी था, क्योंकि उत्तर और दक्षिणके बीचका मार्ग मालवा होकर ही था। मालवाके वैभवने भी इस बातको आवश्यक कर दिया था। इस प्रकार राजनैतिक और आर्थिक कारणोंसे दर्बारके विभिन्न अमीरोंमें मालवा को अपने नियंत्रणमें लानेके लिए संघर्ष चलता रहता था।" जयसिंह का झुकाव मराठों की ओर पहले ही से था, और उसके मालवा में आ जानेसे दोनों (मराठे और जयसिंह) फिर एक साथ हो गये।

इसके अतिरिक्त इस युगमें मुग़ल-साम्राज्यके लिए एक नई नीतिका आरम्भ हुआ। अगले दशकमें उन मराठों के साथ जो आक्रमण करनेकी धमकी देते थे, पहले तो साम्राज्यके अफ़सर लोग और बादको सम्राट् स्वयं सन्धिकी बात-चीत करने लग जाते थे। बालाजी विश्वनाथ ने शाहूकी स्थितिको दृढ़ कर लिया और आक्रमणकारी नीतिका आयोजन किया। शाहू स्वयं साम्राज्यकी सत्ता के साथ सहयोग रखनेका समर्थन करता था। उसने घोषणा की थी कि "मैंने सम्राट् औरंगजेब के सामने धर्म के नामपर इस बातकी प्रतिज्ञा की है कि यदि साम्राज्यको किसी विदेशी शत्रुके आक्रमणका भय होगा तो मैं अपने सामर्थ्य भर उसकी सहायता करूंगा: उसकी* रक्षा करनेके लिए जो कुछ कर सकूंगा वह सब करूंगा।" उत्तरकी ओर मराठोंके बढ़ावका कारण बताते समय विषयके विद्यार्थी प्राय: इन बाह्य परिस्थितियोंको ध्यानमें नहीं रखते।

३. बालाजी विश्वनाथ की सेवाएं.

अब दक्षिणकी स्थितिकी तीसरी विशेषता की चर्चा कर देना चाहिए। जैसा मैं

* पी० डी० एस० ३०-२२२।

पहले बता चुका हूँ, जब शाहू सम्राट्के शिविरसे लौटकर ग्राया ग्रौर १७०७ के ग्रन्त में सतारा पहुँचा, उस समय उसको भाग्यका सितारा गर्दिश में था। ग्रधिकांश मराठा सर्दार ताराबाई की ग्रोर थे, जो दृढ़ता के साथ शाहूके हक़ोंका विरोध करती थी। सेनापति धनजी जाधव ग्रकेले शाहूके तरफ़दार थे, पर थोड़े ही दिन बाद उनकी मृत्यु हो जानेके कारण शाहू का पक्ष फिर कमजोर पड़ गया, ग्रौर धनजी के पुत्र चन्द्रसेन जाधवके कर्तव्यविमुख हो जानेसे हालत ग्रौर बिगड़ गयी। ऐसी दग़ाबाजी के बीच यदि बालाजी विश्वनाथ ने शाहू को समय पर तथा सच्ची सहायता न दी होती तो वह ग्रपनी स्थितिको बनाये रखने में कदापि समर्थ न होता। इसीलिए उसने उन सेवाग्रोंके पारितोषिक के रूपमें बालाजी को पेशवा का पद प्रदान किया ग्रौर १७१३ ई० में उस पद पर उसकी नियुक्ति हो गयी। बालाजी के सामने तीन काम थे—ताराबाई के साथ सहानुभूति रखनेवालों तथा शक्तिशाली सर्दारोंको ग्रधिक से ग्रधिक संख्या में शाहू की ग्रोर मिलाकर उसका पक्ष मजबूत बनाना, शाहू के ग्रधिकार में उस समय जो थोड़ेसे प्रदेश थे, उनमें शान्ति ग्रौर व्यवस्था की स्थापना करना ग्रौर विभिन्न कलहकारी मराठा दलोंको किसी लाभदायक कार्य में लगाना। ये दल हाल ही में शाही फ़ौजोंके ऊपर विजय प्राप्त करके ग्राये थे जिसके कारण वे उत्साह ग्रौर उल्लाससे भरे हुए थे। घरेलू-युद्ध ग्रभी चल रहा था। ऐसी दशामें उन्हें किसी समुचित कार्यमें न लगानेका मतलब यह था कि वे दो में से किसी एक पक्षका साथ पकड़ कर लड़ाईमें लग जांय ग्रौर पूरे राष्ट्रको नष्ट कर डालें। इस प्रथम पेशवा की सेवाग्रों तथा कृतियोंको ग्रभी तक इतिहासमें उचित स्थान नहीं प्राप्त हो सका ग्रौर इसका कारण यह है कि उनके ऊपर ग्रनुसन्धान कार्य ग्रभी हाल ही में शुरू हुग्रा है। शाहू ग्रपने एक पत्रमें उसके लिए «ग्रतुल-पराक्रमी-सेवक» का प्रयोग करता है। इससे इस बातका पता चलता है कि शाहू ने पेशवा का पद, सेनापतिके पास काम करनेवाले एक मामूली क्लर्क के ऊपर नहीं लाद दिया, वरन् उस पदसे एक ऐसे योग्य व्यक्तिको विभूषित किया जिसके गुणोंकी परीक्षा पूरे पांच वर्ष तक हो चुकी थी ग्रौर जिसके साथ उसकी बरसों पुरानी निजी जान-पहचान थी। सच तो यह है कि यद्यपि इस प्रथम पेशवा के जीवन ग्रौर कार्यके सम्बन्धमें ग्रभी तक पर्याप्त बातें मालूम नहीं हो सकी हैं, तथापि हमारे पास दृढ़तापूर्वक यह बात स्वीकार करनेके लिए काफ़ी प्रमाण हैं कि उसके पिता ग्रौर पितामह शिवाजी की सेवामें रह चुके थे। लम्बे ग्ररसे तक चलनेवाले मुग़ल-मराठा संघर्ष ने उसे एक ग्रनुभवी व्यक्ति बना

दिया था, क्योंकि उस बीचमें उसे तरह-तरह के अनुभव हुए थे, और इसीके फल-स्वरूप वह उन परिस्थितियों तथा उस स्थितिको समझनेकी अद्भुत शक्ति रखता था जिनके बीच शाहू और पूरी मराठा जाति, औरंगजेब की मृत्युके उपरान्त, आ पड़ी थी। उसने उस हिन्दूसाम्राज्यका निर्माण-कार्य पूर्ण करने के लिए, जिसे शिवाजी महान् ने अपना लक्ष्य बना रखा था, समस्त प्राप्य साधनोंका प्रयोग करने में अपूर्व पूर्वदर्शिता एवं राजनीतिज्ञता का भी परिचय दिया। शाहू के पहलेके दो शासकोंके समयमें शिवाजी का वह लक्ष्य प्राय: चूर-चूर हो चुका था। बालाजी को उत्तरकी ओर बढ़ना था, क्योंकि दक्षिणकी ओर उसका मार्ग ताराबाई के राज्यके स्वतन्त्र अस्तित्वके कारण स्थायी रूपसे बन्द हो चुका था। बालाजी ने देखा कि युद्धकी तमाम सामग्री पूरे देश भरमें छितरी हुई पड़ी है। मराठा दलोंके अनेक नेता बहुत दिनोंसे मालवा, गुजरात और बरार जैसे सुदूरवर्ती भागों पर आक्रमण किया करते थे और अधिकतर उनमें सफल ही होते थे। उनमें महत्वाकांक्षा भी थी और क्षमता भी। बस उन्हें दो चीजोंकी जरूरत थी—एक तो उनकी क्रियाओंके लिए क्षेत्र और दूसरे उनका संचालन करने के लिए एक नेता। उनकी महत्वाकांक्षी प्रवृत्तिको रोक कर रखना बूतेके बाहरकी बात थी। शाहू की केन्द्रीय सत्ता स्वयं इतनी कमजोर थी कि वह इन मराठा सर्दारोंमें से किसी एकका भी मुक़ाबला न कर सकती थी,—जैसे उदाहरणके लिए, कोलाबा के कान्होजी आंगरे, कान्होजी भोंसले, खाण्डेराव दभदे या चन्द्रसेन जाधव, इनमें से हर एक अलग-अलग कमजोर शाहू से कहीं अधिक शक्तिशाली था। इसका एकमात्र प्रतिकार था, एक सामान्य उद्देश्यके लिए पराक्रमी युद्ध-सामग्रीका उपयोग करना और उसे एक सम्बद्ध रूप देना, अर्थात् अपने-अपने साधनों तथा कार्यक्षमताके अनुसार मराठा-शक्ति एवं प्रभावका विस्तार करके एक क्षेत्रका निर्माण करना, जिसमें सभी अपने-अपने भाग्यके निर्णायक बन सकें। इसीलिए जब फर्रुखसियर के सैयद मन्त्रियों ने शाहू से सहायता की अपील की, तो बालाजी तुरन्त सब कुछ समझ गया और उसने थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया, जिसका अनुभव यद्यपि उस समय वे लोग शायद ही कर पाये हों जिन्होंने उसमें भाग लिया था, तथापि उसके कारण भारतके दूरवर्ती भागोंमें मराठा शक्तिके विस्तारके लिए एक अपूर्व अवसर प्राप्त हो गया। बालाजी के पुत्र, बाजीराव और चिमनाजी, केवल सलाह-मशविरा करने या काम करने के लिए ही सदैव उसके साथ-साथ नहीं रहते थे, वरन् उन कठिनाइयों तथा मुसीबतोंमें भी उसका साथ देते थे, जो इस साहसपूर्ण

एवं विस्तृत योजनाके अन्तर्गत सम्मिलित थीं। इस बातको पूर्णतया समझ लेनेके लिए हमें पहले स्थितिकी कुछ और विशेषताएं जान लेनी चाहिए।

४. सम्राट्के साथ असहयोग करनेके लिए राजपूतोंका समझौता—शंकरजी मल्हार.

भारतीय इतिहासके विद्यार्थी इस बातसे भलीभांति परिचित हैं कि औरंगजेब की मृत्यु ने विशाल मुग़ल साम्राज्यको कितनी तेजीके साथ छिन्न-भिन्न कर दिया था। हमें सावधानीके साथ इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि कौन-कौन सी पुरानी और नई शक्तियां उस समयकी परिस्थितिसे लाभ उठाने के लिए तैयार थीं। उदाहरणके लिए, सिख लोग एक प्रमुख शक्तिके रूपमें आगे बढ़ रहे थे। गुरु गोविन्दसिंह के समयमें औरंगजेब ने इनके ऊपर जो धार्मिक अत्याचार किये थे, उनके कारण इनकी क्रियाओं ने सैनिक रूप धारण कर लिया था और इस समयसे लेकर अठारहवीं और उन्नीसवीं शतीके पूर्वार्ध तक बराबर पंजाब के सीमा प्रान्तका भाग्य इन बहादुर लोगों अर्थात् सिखोंके क्रिया-कलापोंके साथ किसी न किसी रूपमें जुड़ा रहा। यहां पर मुझे कुछ एक प्रान्तीय गवर्नरोंकी महत्वाकांक्षी योजनाओंके विषयमें विस्तारपूर्वक बतानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इस सिलसिलेमें दक्षिणके निजाम या बंगाल और अवधके नवाब जैसे प्रान्तीय शासकोंके नाम लिये जा सकते हैं। जाट और रुहेले भी उस अशान्तिमय युगमें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए बेचैन थे। मुग़ल साम्राज्य के खण्ड-खण्ड कर देनेवाले इन समस्त तत्वोंमें से जो सबसे महत्त्वपूर्ण है, उसकी ओर उस युगके लेखकोंका ध्यान ही नहीं गया। यहां पर मेरा तात्पर्य है—विभिन्न राजपूत राजाओं द्वारा मुग़लोंकी अधिपति शक्तिके* प्रति अपनाये हुए रुख से। टॉड ने विस्तार पूर्वक स्थितिका वर्णन किया है। परन्तु उस समय न तो उचित रिकार्ड प्राप्य थे और न ही लोगोंमें उचित ऐतिहासिक प्रवृत्ति पैदा हुई थी। ऐसी अवस्थामें विषयका पूर्ण समाधान न हो पाया था। औरंगजेब ने राजपूत राजाओं को—वही राजपूत राजा जो एक समयमें मुग़ल-राज्यके स्तम्भ थे—अपना शत्रु बना लेने में कोई कोरकसर न रखी थी। पर वे चुपचाप उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहे जब वृद्ध सम्राट्के मरते ही वे बदला लेनेका अवसर प्राप्त कर सकेंगे। १७१०

* विषय को और अधिक स्पष्ट रूपमें समझनेके लिए "मालवा इन ट्रांजिशन" का अध्याय ३, वर्ग ४ देखिए।

ई० में वे अजमेर के निकट पुष्कर झीलके तट पर धार्मिक सभाके रूपमें एकत्र हुए और विचार-विमर्शके बाद सबने मिलकर खुल्लमखुल्ला मुगल सम्राट्की अधीनता से अपने को मुक्त कर लिया, और संयुक्त रूपसे इस बातकी शपथ ली कि वे मुग़ल राजघरानेमें अपनी बेटियोंका ब्याह न करेंगे। उन्होंने यह भी निश्चित किया कि यदि सम्राट् उनमें से किसी को उस समझौते को तोड़ने के लिए विवश करेगा जिसे उन्होंने उस समय पूरी तौर पर, काफ़ी समय तक विचार कर लेनेके बाद किया था तो वे उसके विरुद्ध खुल्लमखुल्ला लड़ाई छेड़ देंगे। यद्यपि राजपूत राजाओंकी यह चाल १८वीं शताब्दी भर उनके लिए अनन्त दुःख, पीड़ा और नाशका प्रत्यक्ष कारण बनी रही, और १९वीं शतीके प्रारम्भिक भागमें अंगरेजोंके सैनिक हस्तक्षेपसे ही उन्हें अन्तमें इनसे छुटकारा मिला, तो भी जहां तक हमारे प्रस्तुत उद्देश्यका, अर्थात् ऐतिहासिक विकासके विश्लेषणका सम्बन्ध है, उनकी यह गति १८वीं शताब्दीके प्रारम्भिक भागमें भारतकी राजनैतिक स्थितिका एक महत्त्वपूर्ण अंग बनी रही।

शाही शिविर में दीर्घकाल तक बन्दी रहने के कारण शाहू को राजपूतों की इस भावना का ठीक-ठीक अन्दाज लगानेका मौका मिल गया था, क्योंकि वहां पर तमाम राजपूत राजा सम्राट् की सेवा में थे। उसने उनमें से कुछ की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी, और मालवा में जब उसे कारावाससे मुक्ति मिली थी तब वे लोग उसको मित्र-भावसे बिदा करने आये थे। शिवाजी की जीवन-वृत्तिसे भली भांति परिचित होनेके कारण शायद उन्होंने एक साथ उन उपायों पर विचार किया जो हिन्दुओंके पुनर्जीवनके लिए सहयोगके साथ, दक्षिणमें शाहू और उत्तरमें राजपूतों द्वारा किये जा सकते थे। ऐसा जान पड़ता है कि इस नये आन्दोलनके अगुआ जयपुर के राजा सवाई जयसिंह थे, क्योंकि १७४३ में जब उनकी मृत्यु हुई उस समय तक भी वह बराबर मराठों के प्रस्तावोंके प्रति मित्रभाव रखते रहे थे। निस्सन्देह बादको कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुईं, जिनके कारण मराठे और राजपूत एक दूसरेसे बिल्कुल अलग हो गये, पर हमको इस बातका विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिए कि शाहूके जीवन कालमें दोनों बिल्कुल एक-मत थे और उनके बीच मित्र भाव था; दोनों एक ही राष्ट्रीय तथा धार्मिक अभिलाषा से प्रेरित थे। हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि इसीलिए जब प्रथम पेशवा बालाजी और उसके बाद उसके सैनिक पुत्र बाजीराव प्रथम ने भारतके लिए एक हिन्दू-साम्राज्यका निर्माण करनेके लिए अपना कार्य आरम्भ किया, तब बड़े-बड़े राजपूत राजाओंने उनके प्रयासोंका पूर्ण समर्थन किया। इतना ही नहीं,

उन्होंने दीर्घकाल तक भयंकर अत्याचारोंसे पीड़ित अपनी राष्ट्रीय रुचियोंके उद्धारक के रूपमें, बाजीराव की जय-जयकार भी मनाई। चाहे कुछ भी हो, यहां पर तो इतना ही ध्यानमें रख लेना काफ़ी है कि जब शाहू और उसके प्रथम पेशवा ने उठती हुई मराठा शक्तिके भावी भाग्यको ढालनेका काम शुरू किया था, उस समय मराठों और राजपूतोंके बीच सम्मानपूर्ण सद्भावना थी। मुझे विश्वास है कि भारतीय इतिहासमें बढ़ते हुए अनुसन्धान कार्यके साथ-साथ, जिसमें स्व० गौरीशंकर ओझा जैसे दूसरे विद्वानोंने योगदान दिया है, राजपूत रिकार्डोंसे प्राप्त नई सामग्रियोंसे, वे बातें प्रमाणित होंगी जिनके ऊपर हाल ही में मराठा तथा अन्य रिकार्डोंने प्रकाश डाला है।

इस समय दृश्यके पीछे एक अपूर्व व्यक्तित्व कार्य करता हुआ दिखाई देता है। वह व्यक्ति था—शंकरजी मल्हार राव, जो किसी समयमें राजाराम के पास जिंजी में «सचिव» या अर्थमंत्रीके रूपमें नौकर था। किसी बात पर मतभेद हो जानेके कारण, जिसका कोई प्रामाणिक रिकार्ड नहीं मिलता, वह सन्यासी हो गया और बनारस चला गया, जहां पर उसने काफ़ी लम्बे अरसे तक निवास किया। वह चतुर और कुशल तो था ही, इसलिए उसने उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत--दोनों की ही स्थितिको स्पष्ट रूपसे समझ लिया था। वह औरंगजेब के शिविरके लोगों और वहां के मामलों से परिचित होनेके साथ-साथ शाहू के वातावरणसे भी परिचित था। बनारस में रहते हुए भी वह अपनी आंखों और कानोंका पूर्ण उपयोग करता था। उसे यह अनुभव होता था कि उसके सामने एक जबरदस्त मिशन है जो उसे दूसरे कार्य-क्षेत्रमें जाने के लिए आवाहन कर रहा था। उसने सैयद लोगोंके पास सलाहकारके रूपमें नौकरी कर ली और १७१६ के लगभग सैयद हुसेनअली के शिविरमें, फिरसे दक्षिणमें प्रवेश किया। उस समय सैयद हुसेनअली दक्षिणका सूबेदार नियुक्त होकर गया था। वह शंकर जी मल्हाररावं ही था जिसके जरिये हुसेनअली ने शाहू के पास सन्धिका प्रस्ताव भेजा था। शंकरजी सैयद का प्रतिनिधि होकर सतारा आया, शाहू के मंत्रियोंसे सलाह-मशविरा करके पारस्परिक सहयोगकी योजनायें बनाईं, और अपने मालिक सैयद के जरिये मराठों और सम्राट् के बीच एक रक्षात्मक सन्धिका प्रस्ताव रखा। उस तरह उसने अन्तमें शाहू को तीन बड़ी-बड़ी सनदें दिला दीं—स्वराज्यकी सनद, चौथकी सनद, और सरदेशमुखीकी सनद। पहले तो पेशवा से, इन दोनोंकी प्रतिज्ञा करा दी गई और बादको दिल्लीमें १७१९ ई०में सम्राट् फ़र्रुख़सियर द्वारा इनकी पुष्टि

कर दी गई। इस प्रकार यदि हम उन घटनाओंके विभिन्न सूत्रोंको, जो भारतके अलग-अलग भागोंमें घटित हो रही थीं, एक साथ इकट्ठा कर लें, तो हमारे लिए उन गुप्त प्रभावोंका मूल्यांकन करना सहज हो जायगा जो शाहू और उसके प्रथम पेशवा के कार्य को निश्चित कर रहे थे। उनकी सहायतासे हम मराठोंकी उस राज्य-पद्धति की यथार्थ कल्पना भी कर सकेंगे, जिसे पेशवाओंने क़ायम किया था। इस व्याख्यासे, बिना किसी कठिनाईके हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मराठोंका जो संविधान बना वह कोई बिल्कुल नए ढंगकी चीज़ न था, जिसका पहले सैद्धान्तिक रूपमें अनुमान लगाया जाता और तब उसे कार्यान्वित किया जाता। पर साथ ही साथ वह योजना या पूर्व-ध्यानसे रहित, केवल-मात्र एक आकस्मिक संचय या घटना भी न था, जैसा कि बार-बार दृढ़ताके साथ कहा जाता है। पूर्व-कल्पित योजनाके बिना किसी प्रकारकी मानव-रचना सम्भव नहीं। मराठा-शासन क्षण-भरकी इच्छासे बिल्कुल अचानक ही न बन गया होगा। उन्होंने उपस्थित सामग्रियोंकी सहायता से पुरानी नीवों पर अपनी नीति का निर्माण किया, और उसे सफल बनानेके लिए उन सामग्रियों का यथासम्भव अधिक से अधिक प्रयोग किया। आगे चलकर जहां कहीं आवश्यकता पड़ी, वहां सुविधा और सामर्थ्यके अनुसार, उसको (नीति का) सहारा दिया गया और उसका विस्तार किया गया। उस नीतिका जो कुछ परिणाम हुआ उससे हम परिचित ही हैं। आमतौरसे प्रायः सभी जगह राजनीतिमें यही होता है।

कहा जाता है कि मराठोंके मुंह सदा उत्तरकी ही ओर रहते थे। पेशवाओंके महलका सिंहद्वार उत्तरमुख है। यहीं पर (उत्तरमें) उन्होंने अपनी महात्वाकांक्षाओं को केन्द्रित कर रखा था। १७२६ ई० में बाजीराव ने गिरिधरबहादुर, दयाबहादुर और मुहम्मदखां बंगश के विरुद्ध जो महान् सफलताएँ प्राप्त कीं, उनसे सम्राट्, उसके दरबारियों तथा राजपूत राजाओंको ऐसा जबर्दस्त धक्का लगा कि सरकारकी ओर से मराठा सरदारोंकी यथार्थ शक्ति एवं इरादोंका पता लगानेके लिए राजदूत सतारा में मराठा राजाके पास विशेष रूपसे भेजे गये।

५. बाजीराव प्रथम की देदीप्यमान जीवनवृत्ति.

१७१३ ई० में पेशवा पद पर नियुक्त होनेके पूर्व बालाजी विश्वनाथ न, दीर्घ-काल तक उत्सुकताके साथ सम्राट् के साथ होने वाले मराठोंके संघर्षको ध्यानपूर्वक देखा था, उन मुख्य पात्रोंके लक्ष्योंका अध्ययन किया था जिन्होंने सफलताएँ प्राप्त की

थी, और कारावासमें शाहू के साथ बहुधा गुप्त रूपसे पत्र-व्यवहार किया था। यह स्पष्ट है कि शाहू ने एक सामान्य व्यक्तिको, उसके परिवार और पूर्व-चरित्रके विषय में पूरी तरह जाने बिना ही, एकदमसे पेशवा के पद पर नियुक्त नहीं कर दिया था। दूसरी ओर, बालाजी पहले ही इस बातका निश्चय कर चुका था कि राष्ट्रको इच्छित नेतृत्व प्रदान करने तथा राज्यको नष्ट होनेसे बचानेके लिए केवल एक ही उपाय था—वह था, कर्णधारके रूपमें शाहू की दक्षिणमें उपस्थिति। बालाजी ने अद्भुत साधनोंके द्वारा शाहू को घोर विपत्तियोंसे छुटकारा दिलाया और उसकी स्वीकृति एवं आज्ञासे एक ऐसी नीति निर्धारित की, जो मराठा-साम्राज्यके द्रुतगामी विस्तार के लिए मुख्य रूपसे उत्तरदायी हुई। इस नीतिकी योजना बनानेमें उसके पुत्र बालाजी और चिमनाजी बराबर उसके साथ-साथ काम करते रहे। अप्रैल, १७२० में उसकी एक तरहसे अचानक मृत्यु हो जानेके पश्चात् उन्होंने अपने को उत्साहपूर्वक उस को (नीति को) कार्यान्वित करनेके कार्यमें लगा दिया। बालाजी के लिए सम्राट् से तीन सनदें प्राप्त करना उतना कठिन काम न था जितना कि उसके लड़कोंके लिए उन्हें व्यवहारमें लाना था। सैय्यद लोग खत्म हो चुके थे, और कार्य-कुशल निज़ा-मुल्मुल्कने, जो बिल्कुल औरंगज़ेब की ही तरह मराठोंसे घृणा करता था, दक्षिण और शाही दरबार, दोनों ही जगहोंमें साम्राज्यके मामलोंका भार अपने हाथोंमें ले लिया था। उसने दृढ़ता-पूर्वक उन सुविधाओंका विरोध किया जो उसके मालिकने दबावमें पड़कर दे डाली थीं, और नये पेशवा तथा दूसरे मराठा सरदारोंको लगातार चलनेवाले एक वाग्युद्धमें फँसा दिया, जिसमें पेशवाको ख्याति प्राप्त करनेका अवसर हाथ लगा, क्योंकि उसको ईश्वरने योजना बनानेके लिए दिमाग़ और उसे कार्य रूपमें परिणत करने के लिए हाथ दिया था।

इस संघर्षका सन्तोषजनक ढंगसे विश्लेषण करने और उसे उचित ऐतिहासिक दृश्यरूपमें रखनेके लिए, इन दो प्रमुख पात्रों, बाजीराव और निज़ामुल्मुल्क तथा उनके सहायक साथियोंकी गतिविधियोंके इतिहासका अच्छी तरहसे अध्ययन कर लेना है और जिन उद्देश्योंसे वे गतियां आरम्भ की गईं, उनको समझ लेना परम आवश्यक है। बाजीराव और निज़ाम दोनों एक दूसरेको दबानेकी पूर्ण रूपसे चेष्टा करते थे। यदि एक क्षण वे मैत्री-भाव दिखाते तो दूसरे क्षण खुल्लमखुल्ला लड़नेके लिए तैयारी करते हुए मिलते थे। विश्वसनीय गुप्तचरों तथा समाचार-लेखकोंके ज़रिये दोनों एक दूसरे के ऊपर हर समय कड़ी निगरानी रखते, और इस बातकी चेष्टा करते कि जहां तक

हो सके, धन और द्रव्य-साधनों के ऊपर कोई आंच न आने पावे। दोनों शत्रु एक दूसरे के ऊपर ऐसे समयमें चोट करते जबकि मनके ऊपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ सके। इन सबका परिणाम यह हुआ कि मराठा शक्तिकी दृढ़तापूर्वक स्थापना हो गई, यद्यपि जैसा हम आज देखते हैं, निज़ाम का राज्य क़ायम है, और मराठोंका राज्य खत्म हो चुका है। (स्वतंत्र भारत में अब निज़ाम का राज्य विलीन हो गया है)।

उम्रमें बाजीराव अपने विरोधीसे पूरे २६ वर्ष छोटा था। अपनी जीवनवृत्तिके आरम्भमें उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह निज़ामका अनुरंजन करे, इसीलिए वह कई बार स्वयं उससे मिलनेके लिए गया (एक बार जनवरी, १७२१ में, फिर मई, १७२४ में और एक बार फिर दिसम्बर, १७३२ में) और १७२४ में सकरखेदला (Sakar Khedla) की लड़ाईमें मुबारिजखां को पूर्ण रूपसे हरा देनेके बाद उसको औरंगाबाद में अपनी धाक जमा लेनेमें सहायता दी। उसके बाद बाजीराव ने मनबहलावके लिए, पहले मालवा पर और फिर कर्नाटक पर चढ़ाई कर दी (१७२२-२६)। इस बीच वह किसी निश्चित कार्य को ढूंढ निकालने का प्रयत्न करता रहा। दो वर्ष तक बिना मतलब काम करनेके बाद बाजीराव और निज़ाम दोनों ने दूर देशोंके बीच कुछ असाध्य एवं कपटपूर्ण चढ़ाइयां आरम्भ कर दीं, और फ़रवरी, १७२८ में दौलताबादके पश्चिम की ओर २० मीलकी दूरी पर पलखेद (Palkhed) नामक स्थान पर दोनोंकी मुठ-भेड़ हो गई। वहां बाजीराव ने अपने विपक्षी के ऊपर चौथ और सरदेशमुखी लगाई, और उसे कमसे कम कुछ वर्षोंके लिए सीधा कर दिया।

बाजीराव अपनी इस सफलता से अधिकसे अधिक लाभ उठाने के लिए तुरन्त आगे बढ़ा। १७२८ के दशहरे के बाद दोनों भाइयों ने मालवा और बुन्देलखण्डके ऊपर साथही साथ अचानक आक्रमण करनेकी तैयारी कर दी। उस समय सम्राट्के नामसे मालवा में गिरधरबहादुर और बुन्देलखण्डमें मुहम्मदखां बंगश शासन करता था। चिमनाजी खानदेश होकर पश्चिम की तरफ़से और बाजीराव बरार होकर चल पड़े। रास्तेमें दोनों सेना एकत्र करते गये और एक दूसरेके साथ निकट सम्पर्क बनाये रखा। नवम्बर, १७२८ के अन्तिम सप्ताहमें चिमनाजी नर्मदा के किनारे पहुंच गया। वहां पर गिरधरबहादुर तथा उसके चचेरे भाई दयाबहादुर की स्थिति और तैयारियों का ठीक-ठीक समाचार पा जानेके बाद, उसने गिरिधरबहादुर के ऊपर मांडवगद (Mandavgad) के निकट अमझेरा (Amjhera) नामक स्थान पर २९ नवम्बर को एक ऐसे दर्रे से होकर अचानक आक्रमण कर दिया जहां से उसकी कोई

आशंका न थी। दोनों शाही अमीर अपने स्वामीके लिए बहादुरीके साथ लड़ते हुए मारे गये और लूटका तमाम सामान विजेता के हाथ लगा। तीन महीने बाद बाजीराव गढ़ामंडला (Gadha Mandala) होता हुआ बुन्देलखण्ड पहुंचा, और यह सुनकर कि मुहम्मदखां बंगश ने राजा छत्रसालके ऊपर आक्रमण कर दिया है, आगे चल पड़ा और १७२६, अप्रैल के आरम्भमें जैतपुर के निकट एक युद्धमें उसे (मुहम्मदखां बंगशको) पूर्णतया परास्त किया। मुहम्मदखां का चचेरा भाई क़ईमखां (Qaim khan) लड़ाईका मैदान छोड़कर भाग गया। उसके भाई चिमनाजी ने मालवाके बाद गुजरात के ऊपर चढ़ाई कर दी, और इस प्रकार दोनों एक साथ मिलकर यमुना नदी तक मराठों का प्रभाव बढ़ाते रहे। दोनों भाई अपने स्वामी से अपनी सफल कृतियोंके लिए प्रशंसा प्राप्त करनेके उद्देश्यसे सतारा के लिए रवाना हो गये। इन द्रुतगामी और असाधारण सफलताओं ने हिन्दुस्तान भरमें पेशवा की प्रतिष्ठा एकदमसे स्थापित कर दी, और सम्राट्, उसके अधीनस्थ राजाओं तथा मित्रोंको स्पष्ट रूपसे यह पूर्वानुभव करा दिया कि उसके बाद वे मराठों से किस बातकी आशा कर सकते थे। सम्राट् तो पूरी तरह से ऐसा डर गया कि उसने तुरन्त सवाई जयसिंह को आज्ञा दी कि एक चतुर राजदूत सतारा में मराठा के राजदरबार में नियुक्त किया जाय। सम्राट् के आदेशानुसार दीपसिंह, बागसिंह और मंसाराम पुरोहित सतारा में शाहू से भेंट करने गये। उसके बाद अक्टूबर, १७३० में वे औरंगाबाद में निजामुल्मुल्क से मिले, और बाजीराव के पराक्रम, कार्यक्षमता और राजा शाहूकी स्थिति* की दृढ़ता के सम्बन्धमें सुविस्तृत रिपोर्ट दी। इस प्रकार बाजीराव की देदीप्यमान जीवनवृत्ति का आरम्भ १७२८ ई० में हुआ। उस समय से वह निरन्तर सफलताएँ प्राप्त करता रहा—कभी जंजीरा के विरुद्ध तो कभी सआदतखां और दूसरे शाही अमीरों के विरुद्ध। अन्तमें १७३७ में उसने दिल्ली के ऊपर अचानक आक्रमण कर दिया, और मुग़ल-साम्राज्य की राजधानी में रहनेवालों को भय से कंपाकर बिजली की नाईं आंखों से ओझल हो गया। अगले वर्ष के आरम्भ में उसने निजाम को भोपाल में एक बार फिरसे लड़नेके लिए बाध्य किया। अप्रैल, १७४० में नर्मदा के तट पर अकस्मात् मृत्यु का शिकार हो जाने के कारण उसके यौवन तथा तेजसे पूर्ण जीवन वृत्ति का अन्त हो गया और उसके आरम्भ किये हुए अनेक कार्यों की उचित पूर्ति उसके योग्य पुत्र बालाजी राव के लिए शेष रह गई।

* पी. डी. १०–६४

६. मराठा-विस्तार की क्रिया, उत्तर और दक्षिण के बीच लेन-देन.

मैं उन परिस्थितियों का सुविस्तृत वर्णन पहले ही कर चुका हूं जो औरंगजेब की मृत्युके समय उपस्थित थीं, और जिनके कारण मराठोंकी राजनीतिमें महान् परिवर्तन हुआ था। यद्यपि आरम्भमें शाहूके लिए सफल होनेकी ज्यादा गुंजाइश न थी, फिर भी थोड़े दिनों में वह एक उदार विचारोंवाला शासक सिद्ध हुआ—उस रूपमें जैसा कि समय की आवश्यकताओं के अनुसार उपयुक्त था। फलस्वरूप उसका साम्राज्य इतना अधिक बढ़ गया जितने की किसी को आशा न थी। उसकी सफलता के दो कारण थे—एक तो यह कि उसने मुसलमानों के प्रति अहिंसा की नीति का अनुसरण किया, और दूसरा यह कि उसके अपने परिवारमें कोई योग्य प्रतिद्वन्द्वी न था। उसकी चाची ताराबाई काफ़ी बुद्धिमान् और शक्तिशाली थी, पर स्त्री होनेके नाते उसे अनिवार्य रूपसे अपने अधीनस्थ लोगों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता था, जो बहुधा विश्वासघाती सिद्ध होते थे। उसका पुत्र शिवाजी मूर्ख था और उसका सौतेला लड़का सम्भाजी उससे (शिवाजी से) कुछ अधिक अच्छा न था। इसके अतिरिक्त, शाहू के पास संरक्षण प्राप्त करनेके लिए चाहे जो कोई भी जाता, उसको वह हर तरहकी आज़ादी देता और विस्तृत कार्य-क्षेत्र प्रदान करता। इस प्रकार संरक्षण देना शाहूको बड़ा प्रिय था। अधिकांश ऐतिहासिक परिवारों ने, जिनका मराठा इतिहासमें इतना अधिक वर्णन मिलता है, शाहूके प्रत्यक्ष प्रोत्साहनके ही कारण नाम पैदा किया। ऐसा करनेमें शाहूका कोई स्वार्थपूर्ण एवं तुच्छ उद्देश्य न होता था। वह योग्यता प्रदर्शित करनेवाले सभी व्यक्तियोंकी स्वतंत्रतापूर्वक पद-वृद्धि कर देता था। चूंकि शिवाजी सैनिक सेवा के लिए ज़मीन नहीं देता था, इसीलिए उसके समय का शायद ही कोई परिवार ऐसा हो जो «इनामों» का उपभोग कर रहा हो। परन्तु शिवाजी के बाद आनेवाले युगमें, सरंजामी प्रथा के अन्तर्गत, जिसके स्वरूपका सुविस्तृत वर्णन मैं पहले ही दे चुका हूं, देश भरमें लाभदायक सैनिक सेवा के लिए बड़ी गुंजाइश थी। चौथ वसूल करनेके बहाने मराठा-झुंडों को दूर-दूरके देशों पर चढ़ाई करनेका मौक़ा मिल जाता था। कष्ट और भयके उन दिनोंमें मराठों से सहायता प्राप्त करनेके लिए आसानीसे प्रार्थना की जा सकती थी।

महाराष्ट्र से बाहर जाने वाले नये रंगरूटोंके लिए अधिक शिक्षा या साज-सामान की ज़रूरत न थी। पढ़ना, लिखना और व्यावहारिक गणितका ज्ञान प्राप्त कर लेना ही

काफ़ी था, और ये सारी चीजें आसानीसे सीखी जा सकती थीं। दक्षिणके सस्ते टट्टुओं ने घुड़सवारी करना एक पेशा बना दिया था। छोटेसे लेकर बड़े तक सभीके लिए यह विनोद का साधन था। स्त्रियां भी उससे परे न थीं। कारण, उन दिनों क़रीब-क़रीब हर स्त्रीके लिए घुड़सवारी करना और वह भी अच्छी तरह से करना अनिवार्य था, क्योंकि ख़तरेके समय प्राण और सुरक्षा के लिए नह एक आवश्यक गुण था। फैनी पार्क (Fanny Park) नामकी एक अंगरेज़ महिला ने जिसे १८३५ ई० में बैजाबाई सिन्दे (Baijabai Sinde) (दौलतराव की पत्नी) ने अपने यहां निमंत्रित किया था, अपनी आत्मकथा में उत्तम घुड़सवारी तथा उन दूसरे खेलोंका सजीव वर्णन दिया है जिनमें उस कालकी मराठा-नारियों ने इतनी अधिक कुशलता प्राप्त कर रखी थी। १२ या १४ वर्षके नवयुवक, जो हम लोगोंके ज़मानेमें अपनी पाठशाला-शिक्षा तक नहीं समाप्त कर पाते, एक न एक मराठा सरदारके झंडेके नीचे एकत्र हो जाते और शीघ्रही उन्हें अपनी योग्यता प्रदर्शित करनेके (यदि उनमें कोई गुण होता तो) लिए अनेक अवसर प्राप्त हो जाते। निर्भीकता और पराक्रमसे युक्त साहसिक कार्यकी ओर तुरन्त ध्यान दिया जाता, और उसकी रिपोर्ट भेजी जाती तथा उसके लिए उचित पुरस्कार मिलता। वास्तव में दैनिक मामलोंमें व्यावहारिक अनुभवके साथ साथ पौरुष और खिलाड़ी स्वभाव—बस इतना ही पर्याप्त था, और उन दिनों सभी लोगों को इन गुणों से अत्यधिक लाभ होता था।

विभिन्न ऐतिहासिक परिवारोंका जो विवरण मैंने तैयार किया है उसमें यह बात आसानी से दिखायी दे जाती है कि उनके परिवारों के संस्थापकोंने स्थायी रूपसे अपना लूटमार का जीवन १२ वर्षकी अवस्था के लगभग आरम्भ किया और प्राय: ७० वर्ष या उससे अधिक आयु तक जीवित रहे और अपना काम करते रहे। घरसे बाहर रहकर साहसिक जीवन व्यतीत करनेके कारण, जो उनके सैनिक पेशेके कारण सुलभ था, उनका स्वास्थ्य और वैभव दोनों बढ़ते थे। सब जातियोंके मराठे और ब्राह्मण जिनमें सारस्वत और प्रभु (अर्थात् कायस्थ लोग) शामिल थे, सभी शाहूके राज्य-कालमें होनेवाले साम्राज्यविस्तारके इस युगमें विशिष्ट रूपसे विख्यात हुए। साधारणतय: प्रभुओं में से कुछ को छोड़कर बाकी सब अपने पूर्वजोंके लिखापढ़ी करनेके पेशेमें ही लगे रहे। सारस्वत लोग हिसाब-किताब रखने और घरेलू मामलोंका प्रबन्ध करने में बड़ कुशल थे। दक्षिणी तथा दूसरे ब्राह्मणों ने, जिनका शिवाजी के समयके पूर्व, मौलिक पेशा था—पुरोहिती और धर्मग्रंथोंका अध्ययन करना, शीघ्र ही सैनिक पेशा अख़्तियार

कर लिया। इस पेशे में योग्य ब्राह्मण पेशवाओं के शासन कालमें उन्होंने सरलता-पूर्वक संरक्षण प्राप्त कर लिया। इस सिलसिले में यह जान लेना एक रोचक विषय है कि किस प्रकार ब्राह्मण लोग पुरोहित से योद्धा बन गये और किस तरह से उनके नामों की शैली बदल गई। प्रथम पेशवा बालाजी आमतौर पर अपने परिचित नाम, बालाजी पन्त नाना के नामसे ही विख्यात रहे; «पंत» विशेषण «पंडित» का छोटा रूप है। इससे यह बात मालूम होती है कि आरम्भ में व्यक्ति संस्कृत का एक विद्वान् पंडित मात्र था; परन्तु दूसरा पेशवा बाजी «पंत» के बजाय बाजीराव कहा जाने लगा, जिसका मतलब था—क्षत्रिय या सैनिक पेशा। तीसरे पेशवा का भी नाम बाला जी था पर वह बालाजी «पंत» न कहला कर बाला जी «राव» कहलाया। उपाधिमें यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जानेसे करीब-क़रीब सभी ब्राह्मणोंके ऊपर प्रभाव पड़ा और पेशवाओं द्वारा अपने पेशेमें किये गये परिवर्तन की सूचना मिली।

शाहूकी शासनपद्धतिने सब तरहके लोगों को वास्तविक «स्वराज्य» प्रदान दिया। सैनिक विजय के उषा कालमें, मराठा जीवन विभिन्न दिशाओं में फैल गया। लेखक, सेठ, मुनीम, कारीगर, घर बनानेवाले, चित्रकार, पुरोहित, चारण और हर तरहके नौकर लोग प्रार्थनाएँ ले लेकर आये और शीघ्र ही उत्तरके सभी बड़े-बड़े नगरोंमें मराठों की बस्तियां क़ायम हो गयीं। इस बातको निश्चित करनेके लिए कि बड़ौदा, नागपुर, इन्दौर, धार, देवास, उज्जैन और झांसी जैसे नगर किस प्रकार मुख्य रूपसे मराठों के उपनिवेश बन गये, हमें उनके ऊपर केवल एक सरसरी निगाह डालनेकी ज़रूरत है। ये बस्तियां प्राचीन हिन्दू-वातावरण के बीच विचारपूर्वक बसाई गयी थीं। उत्तर के साथ सम्पर्क होनेसे स्वयं दक्षिण के जीवनमें एक नया रस पैदा हो गया और नये प्रभाव के चिह्न परिलक्षित होने लगे। आवश्यकता एवं विलासकी अनेक वस्तुएँ, कपड़े, आभूषण, घरका फ़र्नीचर, फ़ौजी पोशाक, चित्रकारी, तथ्य की चीजें, संगीत, नृत्य, दरबार का शिष्टाचार, उत्तरी भारत के अमीरों का ठाठ बाट और आचार व्यवहार शीघ्र ही दक्षिण भरमें प्रचलित हो गये और सभी उनका अनुकरण करने के लिए उतावले हो उठे। उस समयके काग़ज़ों में उपर्युक्त बातें पर्याप्त रूपसे दिखायी पड़ती हैं। इस तरह से स्वयं मराठी भाषा का शब्दभण्डार काफ़ी बढ़ गया और उसकी अभिव्यक्ति में पर्याप्त उन्नति हुई। ऐसे असंख्य पत्र प्रकाशित हो चुके हैं जो दक्षिण के निवासियों ने उत्तर से अनेक प्रकार की वस्तुएं तथा सामग्रियां मंगाने के लिए लिखे थे। उन वस्तुओं में नर्तकियां भी शामिल हैं जिनकी पेशवा और उसके

सरदारों के दरबारोंमें बड़ी मांग रहती थी। मेरे विचारसे, उत्तर और दक्षिणके बीच होनेवाला यह आदान-प्रदान सर्वथा स्वास्थ्यप्रद एवं लाभदायक रहा, और दोनों के जीवनको अधिक समृद्धिशाली बनाता रहा। इसमें सन्देह नहीं कि मराठा विजय की प्रारम्भिक अवस्थाओंमें बारबार सालाना कर और टैक्स वसूल किये जाने के कारण उत्तरी भारतका तमाम धन दक्षिण चला जाता रहा होगा, पर यहां भी इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि धन रहता तो देशमें ही था। वह देशसे बाहर नहीं जाता था और अन्तमें जनता को किसी न किसी रूपमें फ़ायदा पहुंचता ही था। पेशवा लोग फ़िज़ूलखर्च कभी नहीं रहे, और उन्होंने व्यर्थके दिखावे अथवा मंहगे जीवनके ऊपर रुपया बरबाद नहीं किया। बादको, जब मराठा सरदारों ने उत्तर और पश्चिम में एक तरहसे अपनी स्थायी राजधानियां ही बना लीं, तब मराठों द्वारा वसूल किये जानेवाले करोंमें पहलेवाली वह कटुता नहीं रही। वे उसी तरहके मामूली टैक्स जान पड़ने लगे, जो हर जगह सभी लोगोंको अपनी सरकारको देने पड़ते हैं। ध्यान रहे कि दक्षिणसे उत्तर में एक चीज़की मांग बराबर आया करती थी, वह थी--नाना प्रकार के प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंकी, काव्य, साहित्य, धर्मग्रंथ और «पुराणों» आदि की पांडुलिपियों की मांग। लगानका हिसाब-किताब, भूमिकी नाप जोख और शुद्ध दक्षिणी ढंगके अनेक शासन-सम्बन्धी कार्य उत्तरमें स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोगमें लाये जाने लगे। धार्मिक कृत्य विशेष रूपसे महाराष्ट्री ढंगसे किये जाने लगे। उत्तर और दक्षिणके बीच होनेवाले इस आदान-प्रदान तथा पूरी जनता के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर उसका प्रभाव विशेषरूप से अध्ययन करने योग्य है।

७. शाहूका व्यक्तित्व एवं चरित्र.

महाराष्ट्रमें राजा शाहूका नाम आज भी बड़े आदरके साथ लिया जाता है। सचमुच वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसने किसी के साथ कभी बुराई नहीं की। हजारों लोग उसे अपना कल्याणकर्ता समझते थे और सच्चे हृदय से उसे आशीर्वाद देते थे। यद्यपि शाहू और उसके चचेरे भाई सम्भाजी में, जो कोल्हापुर का राजा था, कभी नहीं पटती थी, तथापि शाहू अपने पेशवा या किसी अन्य पदाधिकारी को इस बात की आज्ञा कभी न देता था कि वे किसी दोषके लिए या कर्त्तव्य की उपेक्षा करने के लिए उसे सतायें। कहते हैं, एक बार सम्भाजी ने कुछ हत्यारोंको धन देकर बुलाया और उन्हें शाहूकी हत्या करने के लिए भेजा, परन्तु जब वे शाहूके सामने आये तो उसे

देखते ही उन्होंने अपने हथियार डाल दिये, और उसके विरुद्ध हाथ उठाने तकका साहस न कर सके। वे किस इरादे से आये थे, यह मालूम होने पर, शाहूने उन्हें इनाम दिये और सम्भाजीके पास भेज दिया। उसने उनके हाथ सम्भाजीके पास यह सन्देश भी भेजा कि "ये लोग बड़े बहादुर हैं और इनका उपयोग किसी अच्छे कामके लिए किया जाना चाहिए।" नागपुर, अहलकोट, धार, इन्दौर, उज्जैन, बड़ौदा और तमाम दूसरी जगहों के राजघरानों के संस्थापक, सभी छोटे-छोटे बालक थे जिनकी योग्यता एवं पराक्रम को सबसे पहले शाहूने पहचाना था और उन्हें पुरस्कार दिये थे। विंचूर (Vinchur) के विट्ठल शिवदेव और मालेगांव (Malegaun) के नरोशकर, जो बादको इतिहासमें प्रसिद्ध हुए, शाहू की ही प्रेरणा से आगे बढ़े थे। हिंगने लोग बहुत दिनों तक दिल्ली-दरबारमें पेशवा के एजेन्ट रहे थे, और साथ ही महाजनी का काम भी करते थे। इस प्रसिद्ध परिवार के पूर्वपुरुष महादेव भट्ट थे जो नासिक में पेशवा लोगों के कुल-पुरोहित थे। एक बार वे (महादेव भट्ट) प्रथम पेशवा के साथ यात्रा करते हुए दिल्ली पहुंचे और वहां पर पेशवा द्वारा मराठों की रुचियों की देखभाल करनेके लिए नियुक्त कर दिये गये। यह एक ऐसा काम था जिसे वह बहुत दिनों तक अद्भुत सफलता के साथ करते रहे। कोरी पुरोहिती छोड़कर उत्कृष्ट नीति-कौशलका इस प्रकार अपनाया जाना विशेषरूपसे महत्त्वपूर्ण है। यह परिवर्तन इस बातका एक उदाहरण माना जा सकता है कि पेशेकी बढ़ती हुई सुविधाओं के साथ-साथ सामान्यरूपसे एक राष्ट्रका जीवन किस प्रकार समृद्ध बन जाता है और कैसे उसकी सर्वांगीण* उन्नति हो जाती है। यदि मुझे शाहूकी तुलना किसी ऐसे आधुनिक शासकके साथ करनी हो जिसे हम सभी जानते हैं, तो मैं उसे रानी विक्टोरिया की तरह बताऊंगा, जो अपने मंत्रियोंके सर्वोत्कृष्ट गुणों को परख सकती थी और राष्ट्रकी सेवा के लिए उनका उपयोग कर सकती थी। वह एक साथ ही दृढ़, सरल और उदार हो सकती थी। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने सेवकों की विद्रोही प्रवृत्ति को युक्ति के साथ रोक सकती थी। उसका शासनकाल बराबर जितना सफल एवं वैभवसम्पन्न रहा उसके लिए आजभी उसका नाम आदरसे लिया जाता है।

शाहू सबके साथ समानता का बर्ताव करता था। उसके पास जो भी कोई जाता उसके प्रति वह दयापूर्ण व्यवहार करता। उसके स्वभाव अथवा नीतिमें किसी जाति

* इस सम्बन्ध में अचानक हम इस बातको समझ लेते हैं कि ब्रिटेन भारतको अपने अधिकारमें बनाये रखनेके लिए क्यों अपनी पूरी शक्ति लगा रहा था।

विशेषके लिए पक्षपात का कोई स्थान न था। यद्यपि वह स्वयं दूर देशों पर चढ़ाई करनेके लिए नहीं जाता था, तथापि वह अपने अधीनस्थ लोगोंके कामोंकी सारी बातों का पता लगाता रहता और उनके ऊपर कड़ी निगरानी रखता था। उसने उनके लिए अलग-अलग प्रभावक्षेत्र निर्धारित कर दिये थे। यदि वे कोई ग़लती या कोई बुरा काम कर बैठते तो वह उनसे उसके लिए जवाब तलब करता, उन्हें घुड़की बताता, और दंड देता था। उन्हें अच्छे कामोंके लिए पुरस्कार देता, उनके आपसी झगड़ों का फ़ैसला करता और व्यक्तिगत रूपसे समझाने, विरोध शान्त करने या मामला तय करने के लिए उन्हें सतारामें अपने पास बुलाकर उनकी लड़ाइयोंका निबटारा करता था। इस का एक उदाहरण दे देना काफ़ी होगा। १७३१ ई० में महत्वाकांक्षी पेशवा बाजीराव को दबानेके ख्यालसे शाहूका सेनापति त्र्यम्बकराव दभदे निज़ाम से जा मिला, क्योंकि वह (सेनापति) बाजीराव के बढ़ते हुए प्रभाव तथा व्यक्तिगत पराक्रमसे बेहद जलता था। उसने बाजीराव की अग्रिम नीतिका समर्थन करनेके सम्बन्धमें शाहूके आदेशोंका खुल्लमखुल्ला मज़ाक उड़ाया; और जब शत्रुपक्षकी ओर खुले तौर पर मिल जानेका कारण बतानेके लिए उसे अपने पास बुलाना ज़रूरी हो गया तब शाहूने बाजीराव को उसके विरुद्ध आक्रमण करने की आज्ञा दी, और बन्दीके रूपमें उसे सतारा लानेके लिए कहा। दूसरी ओर, दभदे भी समान रूपसे उत्साही स्वभावका था और आसानीसे दबनेवाला न था। १७३१ के अप्रैल के महीनेमें दभोई (बड़ोदा) के निकट, शाहूके दो सबसे बड़े पदाधिकारियों—उसके प्रधान मंत्री और उसके सेनापति—के बीच खुल्लमखुल्ला लड़ाई हुई। घमासान युद्धके बीच अचानक किसीकी गोली लगनेसे सेनापति की तुरन्त मृत्यु हो गई और इस प्रकार पेशवा को पूर्ण विजय प्राप्त हुई। अब पता चला है कि गोली मारनेवाला सेनापति के शिविर का ही कोई आदमी था जिसने उसके साथ विश्वासघात किया था।

इस घटना का नैतिक प्रभाव सचमुच गम्भीर हुआ। उसने पूरे राष्ट्रको हिला दिया। वह दृश्य बड़ा हृदयविदारक था जबकि एक ही स्वामीके दो सेवक, जो समान रूपसे उसकी रुचियोंकी रक्षा करनेमें तत्पर थे, एक भयंकर युद्ध में लगे हुए थे, जिसमें सेनापति मारा गया। उसकी माता उमाबाई, एक अभिमानी एवं उत्साही स्त्री थी जिसके प्रति शाहूको व्यक्तिगत रूपसे बड़ी श्रद्धा थी। पुत्रके मरनेका समाचार पाते ही वह तुरन्त शाहूसे मिलनेके लिए सतारा पहुंची और बाजीराव से बदला लेनेकी मांग पेश की। शाहूने उसी क्षण बाजीराव को अपने पास बुला भेजा और पारस्परिक शत्रुता को अपने असाधारण ढंगसे शान्त कर दिया। सेनापति का वंश परम्परागत

निवासस्थान पूना के निकट तैलीगांव (Talegaun) में था। वहां शाहू अपने दल-बल और दरबारियों सहित गया। वहां पहुंचकर चांदीके रुपयोंके ढेरसे एक राज-सिंहासन बनाया गया और शाहू उसके ऊपर आसीन हुआ। इसके पश्चात् उसने उमाबाई और बाजीराव को अपने सामन बुलाया, उमाबाई के हाथमें एक तलवार दी और उसे यह आदेश दिया कि जब बाजीराव उसके सामने घुटने टेक कर बैठा हो, तब वह अपने पुत्रकी मृत्युका प्रतिकार करनेके लिए अपने हाथसे उसका (बाजीराव का) सिर काट दे। दृश्य बड़ा प्रभावशाली एवं करुण था। उमाबाई ने बाजीराव को क्षमा-दान दिया। इसके बाद दोनों ने एक दूसरेको भोज दिया और हृदयसे अभिनन्दन किया। आगामी व्यवस्था की शर्तें निर्धारित की गई। उमाबाई का दूसरा लड़का यशवन्तराव सेनापति बना दिया गया और इस तरहसे घटना का अन्त हुआ। दुर्भाग्यसे शराबी होनेके कारण यशवन्तराव अपनी स्थितिको क़ायम रखनेमें पूर्णतया अयोग्य सिद्ध हुआ, इसलिए इसके बादसे सेनापति केवल नाम-मात्रके लिए रह गया और सारे व्यावहारिक कामोंके लिए पेशवा ही सर्वेसर्वा हो गया। रघुजी भोंसले और पेशवा बालाजी बाजीराव के बीच भी इसी तरहका एक झगड़ा कई वर्षों तक चलता रहा, जो बादको १७४३ में उपर्युक्त ढंगसे ही शान्त किया गया था।

शाहूके शासनकालमें इस तरह की घटनाओंकी कमी नहीं है। इनसे हमको शाहूके उस असाधारण पितृवत् व्यवहारका परिचय मिलता है जो वह अपनी प्रजाके साथ किया करता था। सभीके लिए यह सरल जीवन और सच्चे व्यवहारका एक उदाहरण है। परन्तु राष्ट्रके सम्मुख उपस्थित राजनैतिक समस्याओंका उसे कोई ज्ञान न होनेके कारण आरम्भ करने तथा काम करनेकी सारी शक्ति स्थायी रूपसे उसके योग्य पेशवा के हाथोंमें केन्द्रित हो गयी। सच तो यह है कि शाहू के मनमें एक प्रकारका मिथ्या विश्वास था कि इस पेशवा-परिवारके लोग जो भी कार्य आरम्भ करेंगे वह सफल होगा। उसे यह भी डर था कि कहीं बढ़ते हुए साम्राज्यके सारे काम उसके कंधों पर न आ पड़ें, इसलिए वह जी-जान से पेशवा लोगोंका समर्थन करता था। साथ ही जहां तक पेशवाओं का सम्बन्ध है, उन्होंने भी समाननिष्ठा तथा स्वामिभक्ति के उसकी सेवा की।

शाहू के प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ की १७२० म अचानक मृत्यु हो जाने के कारण उसके अधूरे कामको पूरा करनेका भार उसके पुत्र बाजीराव के सिर पड़ा,

जो उस समय केवल १९ वर्षका था। इसके पहले उसकी योग्यताकी परीक्षा न हुई थी और न किसीको उसकी योग्यताके बारेमें कुछ पता ही था। पर शाहू ने तर्क बुद्धि से काम न लेकर सहज ज्ञानके आधार पर राज्यके पुराने और अनुभवी सेवकों को छोड़ दिया जो उस पदके लिए अपना हक़ जताते थे, और बाजीराव को पेशवा पद पर नियुक्त कर दिया। शाहू ने उन सबको एक तरफ़ कर दिया और एक ऐसे व्यक्ति को अपने कामके लिए चुन लिया जो बादकी घटनाओंके बीच बड़ा योग्य सिद्ध हुआ और इस प्रकार शाहू का चुनाव बिल्कुल ठीक और न्यायसंगत रहा। सार्वजनिक पदोंको एक परिवारमें वंशपरम्परागत बना देना कहां तक बुद्धिमानी की बात है, इस सम्बन्ध में हमेशा मतभेद रहा है और में तो इस प्रथा को न्यायसंगत बतानेके लिए तैयार नहीं हूँ। तो भी इस सम्बन्धमें हमको सावधानीके साथ एक बातका ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि हम उस जमानेकी बातोंका निर्णय आजकलके नियमोंके अनुसार न करें। २० वर्ष तक कठिन सेवा करनेके पश्चात् बाजीराव १७४० ई० में कम उम्र में ही मर गया। उसका लड़का बालाजी, जो आमतौर पर नाना साहेब कहलाता था, जिस समय पेशवा बनाया गया, उस समय केवल १८ वर्षका था। शाहू की ढलती हुई उम्र और बिगड़े हुए स्वास्थ्यके कारण स्वामी और सेवक की उम्र और कार्य-क्षमता में जमीन आसमान का अन्तर था। मराठा-साम्राज्य दिन पर दिन बढ़ता चला जा रहा था और वह समय दूर न था जबकि वह भारत की समस्त शक्तियोंके बीच, जिनमें सम्राट् भी सम्मिलित था, सबसे महत्वपूर्ण शक्ति बनने वाला था। साम्राज्य-विस्तारके साथ-साथ उसके चिन्त्य-विषय भी बढ़ते जा रहे थे, जिनके प्रबन्धमें शाहू और उसके नवयुवक पेशवा बालाजी के बीच होने वाला अन्तर स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होता था। पहलेके चारों पेशवाओं ने लगातार उस नीतिका पालन किया जो आरम्भ में निर्धारित की गई थी, और उनके पास जो कुछ था वह सब हिन्दू-साम्राज्य निर्माण करनेके महान् उद्देश्यकी पूर्तिके लिए खतरेमें डाल दिया। यह वह उद्देश्य था जिसे सबसे पहले शिवाजी ने राष्ट्र के सम्मुख रखा था और यह आशा की थी कि सब लोग उसे ग्रहण करेंगे। इसलिए १७१३ से १७७३ तकका ६० वर्षोंका युग ऐसी घटनाओं, उपायों और योजनाओंकी एक अटूट शृंखला बनाता है, जिन सबका उद्देश्य एक मात्र उसी लक्ष्यकी पूर्ति करना था। वह युग मराठा-शक्तिका सबसे अधिक देदीप्यमान युग कहा जा सकता है जिसमें राष्ट्र एवं उसके नेताओंने अपनी सर्वोत्कृष्ट योग्यता का प्रदर्शन किया। यह वह युग था जबकि भारतीय जनता को शान्ति, वैभव और

सुव्यवस्थित शासनकी प्राप्ति हुई। इस बातकी सत्यता पश्चिमी लेखकों* के आलोचनात्मक वर्णनों तकसे सिद्ध होती है। इस युगमें केवल इस बातके दृष्टान्त मिलते हैं कि १७१६ में प्रथम पेशवा द्वारा सम्राट् से प्राप्त तीनों सनदोंको किस प्रकार कार्यान्वित किया गया। जहां तक राजनैतिक घटनाओंकी मुख्य धारा का सम्बन्ध है, दिसम्बर, १७४६ में होनेवाली शाहू की मृत्युसे, इस काममें कोई बाधा नहीं पड़ी। यद्यपि इस घटना का मराठा राज्य की नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तथापि कुछ आलोचकोंका, जो तत्कालीन स्थितिसे अनभिज्ञ थे, कहना है कि तृतीय पेशवा ने छत्रपति के साथ छल करके अन्यायपूर्वक उसकी शक्तिको हथिया लिया। मौलिक काग़ज-पत्रोंकी सहायता से उस समयकी स्थितिका अब यथार्थ रूपमें अध्ययन किया जा सकता है। कमसे कम मेरा अपना विश्वास तो यही है कि पेशवा ने शाहू की मृत्युसे उत्पन्न होने वाले कष्टका साहसपूर्वक निवारण किया, और राष्ट्र के ऊपर आने वाले घोर संकटके समय स्थितिकी रक्षा की। शाहू की मृत्युके बाद महाराष्ट्र में क़रीब-क़रीब वैसी ही खतरनाक स्थिति पैदा हो गयी थी जैसा कि औरंगजेबकी मृत्युके पश्चात् मुग़ल दरबारमें पैदा हो गयी थी। पर तीसरे पेशवा के लिए यह एक प्रशंसनीय बात है कि उसने उस अग्रगामी नीति पर, जो पहले ही से अपनाई जा चुकी थी, इस घटना का कोई असर न पड़ने दिया और न ही उसमें किसी प्रकारकी बाधा आने दी। इस विषयकी और सूक्ष्म परीक्षा करनेकी आवश्यकता है।

८. शाहू के अन्तिम दिन, उत्तराधिकार का प्रश्न और पेशवा ने किस प्रकार स्थिति का सामना किया.

१७४३ ई० में जब पेशवा बालाजी बाजीराव उत्तरमें सम्राट् से मालवा ऐंठने और बंगाल को अपने प्रभावमें लानेमें व्यस्त था, तभी शाहू की अचानक बीमारी के कारण उसे एकाएक दक्षिण लौट आना पड़ा। एक पीढ़ीसे अधिक बीत चुकी थी, पर मराठोंने अपने शासनके लिए कोई संविधान न बनाया था, और शक्तिशाली राजा की इच्छा ही सर्वेसर्वा थी। ऐसी दशा में अन्तःपुरके षड्यंत्रोंका होना स्वाभाविक था, जिनके कारण स्थिति जटिल हो गयी थी और उसे संभालनेके लिए पेशवा का वहां पहुंचना अनिवार्य था। शाहू के दो रानियां थीं, पर दोनों निःसंतान।

* सर रिचार्ड टेम्पल् की 'ओरिएण्टल एक्सपीरियेन्स', पृष्ठ ४०२ देखिए।

अतः भविष्य अन्धकारमय था। यों तो शाहू शरीरसे हट्टा-कट्टा था पर बुढ़ापेके साथ आने वाली साधारण व्याधियों तथा परेशानियोंने उसे कमजोर बना दिया था। पांच सालके लम्बे अरसे तक वह मृत्युशय्या पर पड़ा रहा और पेशवा को इतने दिन राजधानीमें रहकर अपना अमूल्य समय नष्ट करना पड़ा। यदि ऐसा न होता, तो वह लाभदायक ढंगसे इसी समयका उपयोग करके उत्तरी भारत में अपने अधूरे कार्य को पूरा कर सकता था और इस तरहसे आगे चलकर अहमदशाह अब्दाली के आ जाने पर उत्तरी भारत में उत्पन्न होने वाले झंझटोंको संभवतः दूर कर सकता था। २५ वर्ष की छोटी आयुमें इस पेशवा को एक ऐसी संकटपूर्ण स्थितिका सामना करना पड़ा जिसके साथ मराठा राज्य का भाग्य जुड़ा हुआ था, और जिसने कुछ समयके लिए उसका अस्तित्व तक खतरेमें डाल दिया था। शाहू की दोनों रानियों और उसकी चाची ताराबाई को, जो सतारा के क़िलेमें बन्दी थीं, जब यह पता चला कि उसकी मृत्यु निकट है, तब उन लोगोंने उत्तराधिकार तथा राज्य के भावी शासनके विषयमें षड्यंत्र रचने आरम्भ कर दिये। उस समय शाहू के आस-पास एक दर्जनसे अधिक सुयोग्य परामर्शदाता, सरदार और सेनापति रहा करते थे, जिनके साथ वह खुलकर और बार-बार सलाह मशविरा किया करता था। शाहू उनके साथ बहुत समय तक इस विषय पर वाद-विवाद कर चुका था कि उसके बाद गद्दी पर बैठनेके लिए किसको उत्तराधिकारी चुना जाय।

पेशवाकी अपनी योजना यह थी कि सम्भाजीको कोल्हापुरसे ले आया जाय और सताराका राज्य उसे सौंप दिया जाय। इस प्रकार पूरा मराठा राज्य उसी प्रकार संयुक्त हो जायेगा जैसे १७०७ ई० में इंगलैंड और स्कॉटलैंड संयुक्त हुए थे। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि ऐसा होनेसे मराठा-राजनीतिमें निरन्तर चलनेवाले संघर्षका कमसे कम एक कारण तो दूर ही हो जायेगा। पर शाहू इस बातके बिल्कुल खिलाफ़ था कि उसका वही चचेरा भाई उसका उत्तराधिकारी बनाया जाय जिसके प्रति उसे आजीवन घृणा रही। जब गोद लेनेके लिए भोंसले परिवार में दूसरे योग्य नवयुवकोंकी खोज की जा रही थी, तब ताराबाईने अपने एक पोतेका नाम राम राजा बताया जो उसके मूर्ख पुत्र शिवाजी का पुत्र था। शिवाजीकी मृत्यु १७२६ में हो चुकी थी। ताराबाई ने बताया कि इस डरसे कि कहीं सम्भाजी (राम राजा का चाचा और ताराबाई का लड़का) राम राजाको मारनेकी चेष्टा न करे, उसने (ताराबाई) राम राजाको बचपनसे ही घरसे

बहुत दूर, किनारेके एक गांवमें छिपा रखा था, और हर तरहसे शाहूके हृदय पर यह बात अंकित कर दी कि रामराजा शिवाजी महान्‌का अपना ही परपोता है, इसलिए बुद्धिमानी इसीमें है कि उसको उत्तराधिकारी चुन लिया जाय ताकि उसके (शाहूके) बाद वह सताराकी गद्दी पर बैठ सके। अनेक षड्यंत्रों और झंझटोंके कारण सतारामें उस समय जो भयंकर स्थिति पैदा हो गयी थी उसके कारण राम राजाको, उसके गुप्त निवास-स्थानसे तुरन्त वहां लाना ठीक नहीं समझा गया; और शाहूने काफ़ी सोच-विचारके बाद अपने हाथसे दो छोटे-छोटे नोट (notes) लिखे, जो अब उसकी वसीयत माने जाते हैं। उनके (नोटोंके) अन्दर शाहूने यह व्यवस्था कर दी कि उसकी मृत्युके बाद रामराजा गद्दी पर बैठाया जाय और पेशवा पहले ही की तरह राज्यका शासनभार संभालता रहे। दोनों नोट ज्योंके त्यों छाप दिये गये हैं और यह बात मान ली गयी है कि वे शाहूके ही लिखे हुए हैं। इसलिए उनकी सहायतासे यह बात निश्चित रूपसे सिद्ध हो जाती है कि वसीयतनामेकी शर्तोंके अनुसार उत्तराधिकारी चुननेमें पेशवाने कोई व्यक्तिगत चाल नहीं खेली, जैसा कि अक्सर अपर्याप्त प्रमाणके आधार पर कहा जाता है। वास्तवमें, अब यह जान पड़ता है कि इन वसीयतोंमें जो कुछ लिखा है, और उनके अन्दर शाहू द्वारा जो आदेश दिये गये हैं, उनमें पेशवाकी तरफ़से किसी प्रकारके स्वार्थपूर्ण उद्देश्यकी गुंजाइश नहीं है। उसने पुत्रकी तरह अपने धर्मको निभानेकी प्रवृत्तिमें यथाशक्ति अपने कर्त्तव्यका पालन किया। युद्धकला और नीति-कौशल दोनोंमें पेशवाओंकी उत्तमता व्यापक रूपसे स्वीकार की जा चुकी थी, और जैसा कि वे सचमुच कई बार दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर चुके थे, अन्य मराठा सरदारोंकी तरह वे भी आसानीसे अपने लिए एक स्वतंत्र कार्य-क्षेत्र अलग कर सकते थे, और नागपुरके रघुजी भोंसलेकी तरह, केन्द्रीय सरकारके मामलोंमें दखल न देकर सारे झंझटोंसे दूर रह सकते थे; क्योंकि यह तो एक ऐसा काम था जिससे उन्हें मिलना तो कुछ न था, उल्टे शाहूकी मृत्युके बाद विभिन्न दलोंके दोषारोपण और नाराज़गी ही हाथ लगनी थी।

हृदयसे उदार और कोमल होते हुए भी, शाहू इस बातका अनुभव कभी न कर सका कि अन्य मानवीय मामलोंकी तरह राज्य और उसका शासन भी प्रगतिशील होते हैं; समय एवं परिस्थितियोंके परिवर्तनके साथ-साथ उनका बदलना ज़रूरी है। उसने एक नामुमकिन शर्त रख दी, "पुरानी रीतिको मत छोड़ो और नईको मत आरम्भ करो।" इस शर्तका सम्बन्ध विशेषरूपसे उन सरंजामों या जागीरोंसे था जिनका

उपयोग विभिन्न सरदार लोग कर रहे थे। शाहूकी मृत्युके बाद जब पेशवाने राज्यका काम अपने हाथमें लिया तो उसने देखा कि अधिकांश जागीरदार राज्यकी सेवाके लिए पर्याप्त सेनाएं न देते थे, पर अपनी आमदनी व्यक्तिगत आनन्दकी बातोंके ऊपर व्यर्थमें खर्च कर देते थे। यदि पेशवा उनके साथ सख्तीसे पेश आता तो वे विद्रोह कर बैठते और सचाईके साथ उसकी सेवा न करते। दुर्भाग्यसे राम राजा, जो शाहूकी अन्तिम इच्छाओंके अनुसार छत्रपति बना, अयोग्य सिद्ध हुआ, और बादको स्वयं ताराबाई ने खुल्लम-खुल्ला इस बातकी घोषणा कर दी कि वह एक ठग था और उसका पोता बिल्कुल न था। असलमें उसने (ताराबाईने) अपने हाथोंमें शक्ति प्राप्त कर लेनेके इरादेसे यह सारा ढोंग रचा था, और यही बात सूक्ष्म बुद्धि वाले पेशवाने होने नहीं दी। दोनोंके बीच जबर्दस्त मतभेद पैदा हो गया और पेशवा ने अपने अमूल्य समयके तीन वर्ष व्यर्थके लड़ाई-झगड़े में बरबाद करनेके बाद ताराबाई और राम राजा को सतारा में रखकर उनके ऊपर अपना नियंत्रण क़ायम कर लिया तथा उनके विरोध करने पर भी अपना पूर्व-आयोजित विजय कार्य पुनः आरम्भ कर दिया। निश्चय ही इस काम में घरेलू विपत्तियोंको बचाये रखनेके लिए उसे अपने दो वर्षों के अमूल्य समय तथा शक्तिको नष्ट करना पड़ा, क्योंकि अनेक विद्रोही प्रवृत्तियां किसी समय भी इस तरहकी परेशानियां पैदा कर सकती थीं। पेशवा के विरुद्ध यह भी दावा किया जाता है कि उसने जानबूझकर एक अयोग्य छत्रपति को गद्दी पर बैठाया; पर जैसा कि हम लोग दिखा चुके हैं, यह सब अकेले ताराबाई का ही काम था; पेशवा का उसमें कोई हाथ न था। हां, इतना जरूर है कि बादको एक चतुर राजनीतिज्ञ की भांति उसने स्थितिसे पूरा-पूरा लाभ उठानेमें कोई-कोई कोरकसर बाकी नहीं रखी। इतने लम्बे अरसेके बाद निष्पक्ष भावसे विषय पर दृष्टि डालने पर यह बात आसानीसे समझमें आ जाती है कि यदि ऊपरसे पेशवाको आदेश देने और निर्देशन करनेके लिए तथा साथ-साथ उसकी मुसीबतों और जिम्मेदारियोंमें हिस्सा बंटानेके लिए एक योग्य छत्रपति होता, जो कमसे कम राजाराम या शाहू जैसा होता, तो उसे अपनी बाह्य नीतिमें वास्तवमें जितनी सफलता मिली उससे कहीं अधिक सफलता मिली होती।

६. मराठा-शासनमें परिवर्तन, पेशवा की ग़लती.

तो भी इसमें सन्देह नहीं कि शाहू की मृत्यु ने मराठा शासन में बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया। सतारा की राजकीय महत्ता नष्ट हो गई और पूना मराठा शासन

का केन्द्र बन गया। इस समय से छत्रपति केवल छायामात्र रह गया। कई वर्षों तक सतारा की गद्दी पर रहनेके बाद यह पता लगा कि राम राजा शिवाजी का अनौरस पुत्र होने के कारण राज्यका वास्तविक अधिकारी न था। इस बीचमें, उसके साथ स्वतंत्रतापूर्वक कई एक वैवाहिक सम्बन्ध क़ायम हो चुके थे और सामाजिक खानपान आदि व्यवहार चलते रहे थे, जिनका अब खंडन* नहीं किया जा सकता था। जब १७७७ ई० में उसकी मृत्यु हुई, उस समय अंग्रेज़ोंके साथ भयंकर युद्धमें फंसे होनेके कारण मराठा राज्य तेज़ीके साथ पतनकी ओर बढ़ रहा था, और किसीके पास न तो इतना समय था और न इतनी फ़ुरसत थी कि छत्रपतिकी खोई हुई शक्ति एवं प्रभावकी पुनःस्थापना की जाती। परन्तु इसके विषयमें मैं बादको बताऊंगा।

यहां पर हमारे लिए इतना ही याद रखना काफ़ी है कि पेशवा ने शाहू के बाद केवल एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व पाया था, पर राजकीय प्रभाव एवं प्रतिष्ठा जैसी कोई चीज़ उसे न मिली थी। ये दोनों चीज़ें एक तरहसे व्यक्तिगत थीं और राज्यके मुखिया के रूपमें, शिवाजी के राजसिंहासन पर आसीन होने वाले छत्रपति के पदसे अभिन्न थीं। उदाहरणके लिए, शिवाजी के आठ वंश-परम्परागत मंत्री और कुछ पुराने सर्दार, इस समय भी अपने पहलेवाले पदोंका उपभोग करते थे। उनके पास जागीरें भी थीं, पर वे पेशवा की आज्ञाओंका पालन तत्परता के साथ न करते थे, क्योंकि वे उसको (पेशवा को), यदि अपनेसे छोटा नहीं तो कमसे कम अपने बराबरका समझते थे। पर राज्यके किसी भी कार्यका सम्पादन करनेके लिए आदेशकी एकता एवं कठोर अनुशासन हमेशा ही सबसे अधिक आवश्यक होते हैं। इस सम्बन्धमें पेशवा और उसके उत्तराधिकारियोंको सदैव अपनी आज्ञाओंका पालन करवाने में सबसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। इसके अलावा जब कभी विदेशी आतंक इतना अधिक बढ़ जाता कि राज्यकी सुरक्षा तक खतरेमें पड़ जाती तो कोल्हापुर के राजा और कुछ पुराने जागीरदार ज़रूर उनको (पेशवा और उसके उत्तराधिकारीको) परेशान करने पर उतारू हो जाते। साधारणतः मराठोंके स्वभावमें विद्रोही प्रवृत्ति सदा ही रही है। शायद उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है—नियंत्रणकी अधीरता और सत्ता का खंडन। स्वयं शिवाजी को अक्सर इस अनाज्ञाकारी प्रवृत्तिको चुपचाप सह लेना पड़ता था, जैसे उस समय जब उसे पता लगा कि कुछ पुराने मराठा सर्दार ऐसे हैं जो भोंसले

* पी० डी० एस VI में बरहाव जी मोहिते की शिकायत देखिए।

लोगोंकी आज्ञा नहीं मानेंगे या जो उस सिंहासनसे नीचे आसन न ग्रहण करेंगे, जिसे शिवाजी ने अपने लिए बनवाया था। सच तो यह है कि मराठा शासकोंकी आधी ताक़त हमेशा ही केन्द्रीय सत्तासे अलग रहने की इस प्रवृत्तिको रोकने और उसके लिए दंड देनेमें व्यय होती रही है, और जैसा कि हम सब जानते हैं, उनका पतन करने में भी इस प्रवृत्तिका बहुत कुछ उत्तरदायित्व रहा है।

जब सतारा में शाहू का राज्याभिषेक हुआ, तो वह अपने विद्रोही सेनापति चंद्रसेन जाधव या राव रम्भा निम्बलकर को अपने काबूमें न ला सका। वे दोनों निज़ाम से जा मिले और उसकी अधीनता स्वीकार करके अपने लिए जागीरें प्राप्त कर लीं, जो इस समय भी उनके पास थीं। शाहू के दूसरे सेनापति दभदेके विद्रोहकी कहानी पहले ही बताई जा चुकी है। रघुजी भोंसले और पेशवा बालाजीराव ने मध्य भारत और बंगाल में खुले मैदान युद्ध किये। शाहू की मृत्यु होते ही पेशवा को यशवन्तराव दभदे और दामाजी गायकवाड़ की संयुक्त सेनाओंके एक जबर्दस्त विद्रोह का मुक़ाबला करना पड़ा। ऐसी खबर मिली थी कि कपटी नाजिबखां रुहेला का खुलेआम साथ देकर मल्हार राव होल्कर पानीपत की महान् विपदा (मराठों के ऊपर) लाने का कारण बना था। पेशवा माधो राव प्रथमको अपने जीवन के तीन अमूल्य वर्ष पहले तो कर्तव्यविमुख, अपने सगे चाचा रघुनाथ राव को और बादमें नागपुर के भोंसले, प्रतिनिधि और गोपाल राव पटवर्धनकी संयुक्त सेनाओंके, दबाने में बरबाद करने पड़े। पेशवा पदके लिए रघुनाथ राव की लड़ाई और उसके द्वारा खुल्लमखुल्ला अंग्रेज़ोंकी सहायता की स्वीकृतिके फलस्वरूप मराठोंका प्रथम महायुद्ध हुआ, जिसने मराठा राज्यकी स्वतंत्रता को क़रीब-क़रीब नष्ट कर दिया। और अन्तमें, सभी लोग इस बातको अच्छी तरह से जानते हैं कि लार्ड वेलेज़ली और उसके भाई प्रसिद्ध ड्यूक ने किस कुशलता के साथ मराठा सर्दारों को एक दूसरे के खिलाफ़ भड़का दिया और हर एक को अलग-अलग अपने अधीन कर लिया। केन्द्रीय सत्ता के लिए, विद्रोही तत्वोंको सही रास्ते पर लानेका यह कर्तव्य हर कालमें और हर स्थान पर एक अप्रिय बात रही है, पर जब पेशवा ने व्यावहारिक कामों के लिए मराठा शासन के अधिष्ठाता के रूपमें छत्रपति का स्थान ग्रहण किया तो राजकीय प्रतिष्ठा के अभावमें यह काम दूना मुश्किल हो गया। पेशवा नारायण राव की हत्या के पश्चात् जब सारी शक्ति नाना फड़नीस के हाथ में आ पड़ी तब परिस्थिति और नाज़ुक हो गई, क्योंकि वह सूक्ष्मबुद्धि और राजनीतिमें कुशल भले ही रहा हो, पर जहां तक उसके पदका सम्बन्ध

है, वह केवल एक फड़नीस अथवा पेशवा के कार्यालयका मुख्य मुनीम भर था। यही असली कारण था जिसके फलस्वरूप महादाजी सिन्धिया तथा अन्य लोग प्रायः नाना की आज्ञा का पालन करनेसे इन्कार कर दिया करते थे। यह एक ऐसा भेद था जिसके परिणाम बड़े भयंकर होते हुए जान पड़े और अन्तमें दोनोंकी सुबुद्धिसे ही इसका अन्त हुआ। मराठों के भाग्यमें आनेवाले प्रत्येक संकटके साथ-साथ सरकारकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में किस प्रकार कमी आती गई, इस बातको सावधानीके साथ ध्यानमें रखना चाहिए, क्योंकि यह एक ऐसी बात है जिसके ऊपर, दूसरे और बाहरी कारणोंको छोड़ कर, इस तथ्यकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है कि मराठा शक्तिने अन्तमें इतनी आसानी के साथ अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली। जिस प्रकार शाहू की मृत्युके उपरान्त राजकीय शक्ति पेशवाओं के हाथमें आ गई थी, क्योंकि वे योग्य थे, उसी प्रकार जब पेशवाओं के परिवारमें राजकीय शक्ति ग्रहण करनेके लिए कोई योग्य सदस्य न रहा तो पूरे राज्य का प्रबन्ध नाना फड़नीस के हाथ में आ गया। यद्यपि मानवीय मामलों में योग्यता के ही ऊपर सब कुछ निर्भर होता है, पर राजनीतिमें विधियों और संस्कारोंका भी अपना अलग प्रभाव पड़ता है। अतएव क्रमसे एकके बाद एक आनेवाले प्रतिनिधिकी शक्ति मौलिक शक्तिसे बहुत अधिक घटती चली गयी। इतिहास के विद्यार्थीको एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए। वह यह कि पेशवाओं या दूसरे लोगोंको छत्रपति की शक्ति हड़प कर जानेका दोष लगानेके पूर्व स्थितिसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातोंके ऊपर सावधानीके साथ विचार जरूर कर लिया जाय।

पर अंग्रेजी ताक़तसे मुठभेड़ होने पर तृतीय पेशवा बालाजी राव की नीति अपूर्ण जान पड़ी। सच तो यह है कि अंग्रेजोंके साथ तुलना करने पर मराठा राजनीतिज्ञोंका स्थान बहुत नीचेकी श्रेणीमें आता है। भारत के इतिहासमें १७५०-६१ का समय निस्सन्देह सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी है, क्योंकि इसी युगमें अंग्रेजोंने प्रसिद्ध सप्तवार्षिक युद्धमें अपने प्रतिद्वन्द्वी फ़ांसीसियों को निश्चित रूपसे परास्त किया, बंगाल और मद्रास के दो बड़े-बड़े सूबे जीते और पूर्वी समुद्रतट के चारों ओर तथा उत्तरमें इलाहाबाद तक अपनी प्रभुता का जाल फैलानेका काम लगभग समाप्त कर लिया। इस समय पेशवा ने दो भारी भूलें कर दीं। एक तो यह कि उसने स्वयं अपने नाविक सेनाध्यक्ष एँग्रिया (Angria) के नेतृत्वमें मराठा जलसेनाको कुचल देनेके लिए अंग्रेजोंसे सहायता ली, और दूसरे प्लासीके युद्धके पहले, जिस समय अंग्रेज लोग सिराजुद्दौला को बहुत परेशान कर रहे थे, उसने बंगाल में भोंसले के हकों

का समर्थन करनेकी बिल्कुल परवाह न की। बहुत पहलेकी बात है जब रघुजी ने बंगाल पर विजय प्राप्त कर ली थी, और वहांसे सालाना चौथ वसूल किया करता था। उसके बदलेमें मराठे वहांके सूबेदारको सहायता देनेके लिए बाध्य थे। जब अंग्रेजोंने सिराजुद्दौला के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी, उस समय पेशवा का कर्तव्य था कि वह उसकी सहायता के लिए तुरन्त सेना भेजता। १७५६ में तो खासतौरसे पेशवा बिल्कुल खाली था; उसकी स्थिति दृढ़ थी, और वह उस समय भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली शासक था। उस समय यदि वह कर्नाटक और बंगाल दोनों जगहोंमें उनके खिलाफ़ लड़नेके लिए क़दम बढ़ाता, तो उनका आगे बढ़ना तुरन्त रुक गया होता।

किन्तु पेशवा ने दिल्ली की राजनीति की ओर जरूरतसे ज्यादा ध्यान दिया। अब्दाली के साथ बेकारकी दुश्मनी मोल लेकर अपने ऊपर पानीपत की घोर विपत्ति बुला ली। इस असावधानीके साथ सतलज पार राज्य जीतनेके लिए पंजाब के अन्दर जानेकी उसे कोई आवश्यकता न थी। परन्तु पानीपत ने भारतीय इतिहास का भावी क्रम निश्चित कर दिया। मराठों और मुसलमानोंने उस भयंकर युद्धमें एक दूसरेको कमजोर बना दिया, जिसके कारण अंग्रेजोंके लिए भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके उद्देश्योंकी पूर्ति करना सरल हो गया। ऐसा लगता है कि यदि पेशवा चाहता तो प्लासी और कर्नाटक दोनों जगहोंके युद्धोंमें सफलतापूर्वक हस्तक्षेप कर सकता था, और इस प्रकार अंग्रेजोंका प्रभुत्व स्थापित होनेसे रोक सकता था। पर वह स्वयं उत्तरमें नहीं गया, नीतिकी आवश्यक उन्नति अपने अधीन अयोग्य पदाधिकारियोंको सौंप दी, और अंग्रेजोंकी चालके वास्तविक स्वरूपको न समझ पाया। इस प्रकार ऐसे नाजुक समयमें उसमें बुद्धिमानी और दूरदर्शिता की कमी पाई गयी। यदि उसने अखिल भारतीय राजनीतिको समझ लिया होता तो वह दूसरी तरहसे काम करता। फ़ांसीसियों और अंग्रेजोंके बीच होनेवाले सप्तवर्षीय युद्धके परिणामों, और जिस आसानी के साथ सारे मुसलमान शासकों, सम्राट्, मीर जाफ़र, मीर क़ासिम और अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला को जल्दी-जल्दी खतम करके अंग्रेज लोग समस्त व्यावहारिक उद्देश्योंके लिए पूरे क्षेत्रके स्वामी बन बैठे उससे इस बातकी सत्यता स्पष्ट रूपसे स्थापित हो जाती है।

५

मुसलमानों तथा मराठों के बीच होनेवाले संघर्ष का विकास

१. पानीपत का युद्ध—पूर्वगामी कारण.

इस महान् घटनाके पूर्वगामी कारणों को जाननेके लिए हमको एक या दो दशक पीछे जाना पड़ेगा, और तभी हम उसके कारणोंको स्पष्ट रूपसे क्रमबद्ध कर सकेंगे। अब पता लगता है कि पानीपत की दुर्घटना मराठों की उन जिम्मेदारियोंका नैसर्गिक परिणाम थी जो पहले तीन पेशवाओं ने अपने ऊपर ओढ़ रखी थीं। उन सभी ने उत्साह-पूर्वक हिन्दू-पदपादशाहीके उस आदर्श को पूर्ण करने का प्रयास किया जिसकी धारणा सर्वप्रथम शिवाजी महान्‌के मनमें पैदा हुई थी, पर जिसे दुर्भाग्यसे वे पूरा न कर पाये थे। पेशवाओंकी इस महत्वाकांक्षाके कारण विभिन्न सरदारों तथा शासकोंके साथ उनकी शत्रुता बढ़ती गयी, क्योंकि सम्राट् की केन्द्रीय सत्ताका समर्थन बंद हो जानेके कारण निज़ाम की तरह, उनमें से हर एक अपने लिए एक स्वतंत्र राज्य बना लेने और छिन्न-भिन्न होते हुए साम्राज्य का कोई टुकड़ा हथिया लेनेके फ़िराक में रहता था। १७३९ में होनेवाले नादिरशाहके आक्रमण से साम्राज्यको जो जबर्दस्त धक्का लगा था उसके कारण सम्राट् की स्थिति इतनी नाज़ुक हो गयी कि विशिष्ट शक्तिवाला कोई भी आक्रमणकारी उसे धूल में मिला सकता था। ऐसी हालतमें जब उसे पता चला कि पेशवा लोग भारत की विभिन्न लड़नेवाली जातियोंको हराने में समर्थ रहे हैं तब उसने अपनी स्थिति का प्रतिपादन करनेके लिए उनका संरक्षण प्राप्त करनेका निश्चय किया। पेशवा लोग पहले ही से १७४३ ई० में मालवा और

बुन्देलखंडके सूबे व्यावहारिक रूपमें सम्राट्के हाथ से निकाल चुके थे और सीमावर राजपूत रियासतों से सरदेशमुखी तथा चौथ वसूल करने लगे थे। उन राजपू रियासतोंमें जयपुरकी रियासत मुख्य थी, जहां सवाई जयसिंह राज्य करता था। उस वर्ष (१७४३) राजाकी मृत्यु हो जानेके कारण प्रतिद्वन्द्वी हक़दारोंके बीच उत्तराधिका का युद्ध छिड़ गया, जो स्वाभाविक ही था। सूक्ष्मबुद्धि पेशवा ने उस युद्धसे ला उठानेके लिए तुरन्त क़दम बढ़ाया। उसने फ़ौरन् रानोजी सिन्धिया और मल्हाररा होल्कर नामके अपने दो योग्यतम सेनाध्यक्षोंको, जो मालवाकी दो वर्तमान रियासतों संस्थापक थे, जयपुरके रिक्त राजसिंहासनके सम्बन्ध में होनेवाले झगड़ेका फैसल करनेके लिए तैनात किया, और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सैन्य-बलक प्रयोग करनेका भी आदेश दिया। शाहूकी वृद्धावस्था और गिरते हुए स्वास्थ्य कारण सतारा में पैदा हो जानेवाली परेशानियों, और निज़ामुल्मुल्ककी चालोंके कारण, जो उस समय कर्नाटकके ऊपर अपना अधिकार मजबूत करने की चेष्टा लगा हुआ था, पेशवा घटनाओंके क्रमका निर्देशन करनेके लिए उत्तर में बहुत दिन तक उपस्थित न रह सका।

महत्वपूर्ण विभूतियोंकी मृत्युसे हर कालमें और हर स्थान पर राजनैतिक उथल पुथल मचती रही है, और इस सम्बन्धमें अट्ठारहवीं शतीका मध्य भाग, भारतके लिए विशेष अशान्तिका युग सिद्ध हुआ और उसने उसके इतिहासका क्रम वस्तुत बदल दिया। इसलिए निम्नलिखित घटनाओंको सावधानीके साथ ध्यान में रख लेन विद्यार्थीके लिए बड़ा उपयोगी होगा--

२१- ९-१७४३—सवाई जयसिंह की मृत्यु होती है।
९- ६-१७४७—नादिरशाह की हत्या कर डाली जाती है और अहमदशाह अब्दालीका उत्कर्ष होता है।
१५- ४-१७४८—सम्राट् मुहम्मदशाह की मृत्यु होती है।
२१- ५-१७४८—निज़ामुल्मुल्क मर जाता है।
२१- ६-१७४९—जोधपुरके अभयसिंह की मृत्यु होती है।
१४-१२-१७४९—राजा शाहू की मृत्यु होती है।
५-१२-१७५०—नासिरजंग की हत्या की जाती है।
१२-१२-१७५०—जयपुर का ईश्वरीसिंह आत्महत्या कर लेता है।

इन घटनाओंने एक जटिल (confused) स्थिति पैदा कर दी जिसका सावधानीके साथ विश्लेषण करना हमारे लिए बहुत जरूरी है, खासतौरसे दिल्ली-दरबार और सतारामें घटित होनेवाली घटनाओंके सम्बन्धमें। जयसिंह की मृत्यु के बाद जो उत्तराधिकार का युद्ध आरम्भ हुआ था वह व्यावहारिक रूपमें १७४५ से १७५० तक चलता रहा। इसी तरह, १७४८ में सम्राट् की मृत्यु होने पर वजीर सफ़दरजंगको रुहेलोंके साथ एक युद्ध करना पड़ा जो नवम्बर १७४८ से लेकर अप्रैल १७५२ तक जारी रहा। सिन्धिया और होल्करने, जिनको पेशवाने स्थिति का मुक़ाबला करनेके लिए पूरे आदेश देकर अवसर तथा आवश्यकता के अनुसार काम करने की पर्याप्त स्वतंत्रता सहित उत्तर में तैनात किया था, अपनी व्यक्तिगत ईर्ष्याके कारण मराठों का हित कमजोर बना दिया और दोनोंने मिलकर कुछ एसे काम कर डाले कि राजपूत राजाओंके साथ होनेवाली वह सारी मैत्री और सद्भावना नष्ट हो गई जिसे पहले दो पेशवाओंने शाहूकी प्रेरणा पाकर बड़े परिश्रमसे पैदा किया था। इस बातको ध्यानमें रखना जरूरी है कि सिन्धिया और होल्कर के हाथों राजपूत-सहानुभूतिका इस प्रकार नष्ट होना, एक वह पूर्व-उद्यत कारण था जिसने भारतवर्ष के लिए हिन्दू-साम्राज्य-निर्माणके सम्बन्धमें मराठों द्वारा किये गये प्रयासोंको अन्तमें रोक दिया। जयपुर का शासक ईश्वरीसिंह अपने राज्य पर होनेवाले मराठा आक्रमणोसे इतना दुखी हो गया कि उसको अपना जीवन असह्य जान पड़ने लगा, और सर्पसे डसवाकर तीन पत्नियों सहित उसने आत्महत्या कर ली। तब उसकी बीस दासियोंने राजाकी चितामें भस्म होकर अपनी जान दे दी। चारों ओर के राजपूत राजा इस घटना का समाचार पाकर आगबबूला हो उठे, और मराठा करोंको वसूल करनेके लिए उस समय जयपुरमें आई हुई मराठा फौजोके ऊपर उन लोगोंने अमानुषिक अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। २१–२–१७५१ को लिखे हुए एक पत्र* में पूरे मामलेका सुविस्तृत वर्णन मिलता है। उसको पढ़कर पता लगता है कि उसके बाद राजपूत और मराठे किस प्रकार एक दूसरेके कट्टर शत्रु बन गये। यदि शाहू उस समय मराठा राज्यका कर्णधार होता तो वह इस तरह की मर्यादाहीन छेड़छाड़के लिए कभी आज्ञा न देता।

राजपूतोंके साथ मराठोंने जो अविवेकपूर्ण व्यवहार किया सो तो किया ही, पर

* पी. डी. २ के संकलन का नं० ३१।

उसके अतिरिक्त पेशवाने अपने सिर पर एक और भी मुश्किल काम लाद लिया। वह था—अहमदशाह अब्दालीके आक्रमणके कारण सम्राट् जिस मुसीबतमें फँस गया था उससे उसको निकालना। नादिरशाहकी मृत्युके उपरान्त, उसके उत्तराधिकारी अहमदशाहने पैतृक सम्पत्तिके रूपमें पंजाबके ऊपर अपना हक़ जताया, भारत में प्रवेश किया, और जनवरी १७४८ में लाहौर पर अधिकार कर लिया। परन्तु जब उसकी सेनाएँ सरहिन्द पर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़ीं, तो ११ मार्च १७४८ को राजकुमार अहमदने मानूपुर (Manupur) नामक स्थान पर उसे हरा दिया और उसे वापस लौट जाना पड़ा। पर कुछ ही दिनों बाद सम्राट्की मृत्यु हो जानेके कारण, राज्य की सारी शक्ति वज़ीर मंसूरअलीखां सफ़दर जंगके हाथमें केन्द्रित हो गई। उसने इस अवसरका प्रयोग अपने पड़ोसी रुहेलोंको कुचलनेके लिए किया जो बड़े उपद्रवी थे। इस प्रकार उनके बीच खुल्लमखुल्ला एक लड़ाई शुरू हो गई जो दो वर्ष तक चलती रही। इस युद्धमें वज़ीरने अपनेको रुहेलोंकी शक्तिका मुक़ाबला करनेमें असमर्थ देखकर, सिन्धिया और होल्करसे सहायता मांगी, जो इस समय जयपुरमें थे, और संयुक्त सेनाओं की मददसे १६–४–१७५१ को हुसैनपुरके युद्धमें अपने शत्रुओंको बुरी तरह से परास्त कर दिया। इस प्रकार वज़ीर की सहायतासे दिल्लीकी राजनीतिमें मराठोंकी प्रतिष्ठा क़ायम हो गई।

दूसरी ओर, हारे हुए रुहेलोंको शत्रुसे बदला लेनेके लिए अब्दाली राजा उद्धारकके रूपमें दिखाई पड़ा। उन्होंने उसे भारत पर आक्रमण करने और वज़ीरकी शक्तिको कुचल देनेके लिए उकसाया। वह तो चार साल पहले सरहिन्दमें हुई अपनी हारका बदला चुकानेके ताकमें बैठा ही था, इसलिए उसने इस निमंत्रणका स्वागत किया और १७५२ के आरम्भमें भारतके ऊपर उसकी सेनाओंने धावा बोल दिया। इस बार उसने लाहौर और मुल्तानके दो सीमावर्ती सूबों पर अपना अधिकार जमा लिया। पंजाबके हाथसे निकल जाने पर सम्राट्को बेहद दुःख हुआ। उसने नये वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन इमादुलमुल्ककी सलाहसे खुलेआम मराठोंका संरक्षण स्वीकार कर लिया, १२ अप्रैल १७५२ को सिन्धिया और होल्कर के साथ एक समझौता कर लिया और उनकी ओरसे सेवा करनेकी प्रतिज्ञाके बदलेमें, साम्राज्यके सारे उत्तरी प्रदेशों से «चौथ» वसूल करनेका अधिकार उन्हें प्रदान कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि अफ़गान बादशाह और पेशवाके बीच एक स्थायी शत्रुता आरम्भ हो गई, और दोनों ही अपनी-अपनी तरफ़से सम्राट् और उसकी राजधानी पर अपना नियंत्रण

स्थापित करनेकी चेष्टा करने लगे। यह संघर्ष वर्षों चलता रहा और अन्तमें पानीपतकी लड़ाईके द्वारा उसका निर्णय हुआ।

२. अब्दाली ललकारको स्वीकार कर लेता है.

हम इस बातको समझ सकते हैं, और यह स्पष्ट भी है कि सिन्धिया और होल्कर ने उतावलेपनमें पेशवाके ऊपर एक ऐसी ज़िम्मेदारी लाद दी जो उनके अल्प द्रव्य साधनोंके देखते हुए बहुत भारी थी, विशेषरूपसे एक ऐसे समयमें जबकि दक्षिणमें पेशवाके हाथमें और अधिक महत्वपूर्ण समस्याएँ मौजूद थीं। अटकसे लेकर बंगालके पास तक फैले हुए उत्तरी भारतके विशाल साम्राज्यकी आन्तरिक विद्रोह एवं बाह्य आक्रमणसे रक्षा करना कोई सरल कार्य न था। पेशवाका कार्य सचमुच लॉर्ड वेलेजलीकी प्रसिद्ध सहायक सन्धिका अगुआकार था। यदि पेशवा के दोनों एजेन्ट—सिन्धिया और होल्कर—मेलसे काम करते तो पेशवाको अपने काममें पर्याप्त सफलता अवश्य मिली होती। उनकी पारस्परिक ईर्ष्या और वैर भावने योजना को नष्ट कर दिया। पेशवा दक्षिणम अपनी स्थितिको मजबूत बनानेके काममें इतना ज्यादा फंसा हुआ था कि न तो उसे खुद उत्तरमें जाकर सब कुछ अपनी आंखोंसे देखने की छुट्टी थी और न वह पर्याप्त धन व सेना सहित किसी योग्य व्यक्तिको सम्राट्के साथ की हुई प्रतिज्ञाओं को पूरा करनेके लिए भेज ही सकता था। मराठोंका व्यवहार अफ़ग़ान बादशाहके लिए एक खुली चुनौती था। फिर चतुर रुहेला सरदार नजीबुद्दौला ने भी, जो दिल्ली दर्बारमें मराठा-विरोधी दलका नेता था, उसे उकसाया। इस प्रकार एक ऐसा संघर्ष आरम्भ हुआ जिसमें दोनों दलोंकी शक्तिकी परीक्षा होना स्वाभाविक ही था। सम्राट्की रक्षा के लिए समझौता कर लेने के बाद, सिन्धिया और होल्कर तुरन्त दक्षिण लौट आये, पेशवा को सारी बातें समझा दी और पेशवा के भाई राघोबा की अध्यक्षता में एक शक्तिशाली सेना दिल्ली ले आये। १७५४ में मराठोंकी संयुक्त सेनाओं ने उन सभी को परास्त कर दिया जिन्होंने उनकी योजनाओं के प्रति विरोध भाव दिखाया, और ग़ाज़िउद्दीनकी सलाहसे, अयोग्य सम्राट् को गद्दीसे उतार कर, आलमगीर द्वितीय को राजसिंहासन पर बैठाया और अहम मसलों को तय करने के बाद दक्षिणको लौट आये। अब्दाली भी चुप बैठनेवाला न था। उसने जल्दी से नजीबुद्दौला से मराठों द्वारा किये गये सारे कामोंका पता लगा लिया। अपनी योजनाएँ बना लेनेके बाद ही १७५७ के आरम्भ में दिल्ली पर चढ़ाई कर दी और शत्रुका मुक़ाबला

करते हुए बदला लेनेके लिए इस बार कुछ आगे बढ़ गया। दिल्ली से वह दक्षिण की ओर गया, हिन्दू मन्दिरों और मथुरा नगरको लूटा और आगरे तक का सारा देश तबाह कर दिया। पर वह यहाँ की ज़बर्दस्त गर्मी न बर्दाश्त कर सका और २ अप्रैल (१७५७) को दिल्ली छोड़ कर अपने देशको वापस लौट गया। लौटते समय वह जिस रास्ते से गुज़रा वहांके लोगोंके ऊपर भीषण अत्याचार किये।

३. दत्ताजी सिन्धिया मार डाला गया.

अब्दालीके इस साहसपूर्ण व्यवहारने पेशवाकी आंखें खोल दीं और सारी स्थिति उसकी समझमें आ गई। कर्नाटकमें तो वह अपूर्व सफलता प्राप्त कर ही चुका था, इसलिए उत्तरमें अफ़ग़ान शत्रुके साथ युद्ध करना वह कोई गम्भीर कार्य न समझता था। जिस समय अब्दाली भारतमें प्रवेश कर रहा था उस समय भी, पेशवा ने अपने भाई राघोबाको दक्षिणसे एक बड़ी-सी सेना के साथ फिर भेजा। राघोबा अगस्तमें दिल्लीमें प्रविष्ट हुआ, और बीचके प्रदेशोंमें अफ़ग़ान-विजयके सारे चिह्नोंको मिटाता हुआ अगले वर्ष अपनी सेनाको लेकर पंजाबके अन्दर जा पहुंचा। इसके पहले कि राघोबा को पंजाबमें मराठों की स्थिति दृढ़ करने का समय मिल सके, और वह किसी भावी घटना का मुक़ाबला करने के लिए मज़बूत सैनिक अड्डा क़ायम कर सके, पेशवा ने उसे दक्षिणमें बुला लिया और उसे सारी स्थिति अपने अधीनस्थ कर्मचारियों और अपना स्वार्थ देखनेवाले व्यक्तियोंके हाथमें छोड़कर वापस चले आना पड़ा। नजीबुद्दौला के लिए यह एक अच्छा मौक़ा था। मराठोंके बढ़ते हुए प्रभाव के प्रति उसे जो द्वेष था उससे पूर्णतया प्रेरित होकर, उसने बहादुरी के साथ उनसे (मराठों से) लड़नेके लिए रुहेलों के समस्त द्रव्य साधनों को एकत्र किया, अब्दाली से जल्दी ही वापस आने की प्रार्थना की और मराठा सेनाओंके दिल्लीमें पुनः प्रवेश करने पर उनका मुक़ाबला करने के लिए ज़बर्दस्त तैयारी की। उधर पेशवा दक्षिणके मामलोंमें इस बुरी तरहसे फंसा हुआ था कि शाही दर्बार की घटनाओं के विकासकी ओर व्यक्तिगत रूपसे ध्यान देनेका उसे अवसर ही न मिला। होल्कर राजपूताने में था और दिल्लीमें दत्ताजी सिन्धिया अकेला स्थिति का मुक़ाबला करने के लिए रह गया था। वह एक उतावला और असावधान सैनिक था, इसलिए नाजिमके बढ़ते हुए षड्यंत्रों और क्रियाओंको समयसे चकनाचूर करनेमें असमर्थ था। १७५९ के अन्तमें अब्दाली शाह ने पंजाब पर अचानक चढ़ाई कर दी, और रुहेला सर्दारोंके साथ जल्दी से एक

मजबूत गठबन्धन करके, यमुना नदी को पार कर लिया। नदीके दाहिने किनारे पर पहुंचकर उसने दत्ताजी के ऊपर आक्रमण कर दिया और १० जनवरी १७६० को उसे मार डाला। तो भी, हर सालकी तरह शाह इस बार गर्मी के मौसम में अपने देश न लौटा, बल्कि पूरे साल भारत में बना रहा। इस बीच उसने न केवल मुग़ल राजसिंहासन की रक्षा के लिए अपने उपायों को पूर्ण किया, वरन् इस बातकी भी पूरी व्यवस्था की कि यदि मराठे एक बार फिर आने और उसका सामना करने का साहस करें तो उन्हें पूरी तरह से कुचल दिया जाय।

४. सदाशिवराव भाऊ हारा.

और सचमुच हुआ भी यही। अब्दाली के हाथों दत्ताजीकी पराजय एवं मृत्युकी दु:खद घटना का समाचार पेशवा के पास पहुंचते देर न लगी। जिस समय यह खबर पहुंची, वह उदयगिरिमें निज़ामके ऊपर प्राप्त होनेवाली अपनी विजय के ऊपर खुश हो रहा था। पर उस खुशीके बीचमें भी उसे भावी विपत्तिके काले बादल मंडराते हुए दिखाई पड़ गये। चुनौती का मुक़ाबला करनेके लिए उसने जल्दी से तैयारी की। अहमदनगर के निकट उसने एक बड़ी सी सेना इकट्ठी की, अपने अनुभवी सेनाध्यक्षों और सैन्यदलोंके नेताओंको जमा किया, और तोपखानेके काममें अपने कौशल के लिए प्रसिद्ध इब्राहिमखां गर्दी के नेतृत्व में, जो बुसी का सिखाया हुआ था, एक जबर्दस्त तोपखाना संगठित किया। पूरी तैयारी हो जाने पर उसने जल्दी से अपने सगे चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊके सनापतित्व में सेना को रवाना किया और भाऊको यह आदेश दिया कि वह दु:खदायी अफ़ग़ान संगठनसे निश्चित रूपसे निबटता आये। इस विशाल सेनाने १४ मार्च १७६० को गोदावरी के तट से प्रस्थान किया और ठीक दस महीने बाद, १४ जनवरी, १७६१ को पानीपतके मैदानमें उसकी पूर्ण पराजय हुई। मई के अन्तमें चम्बल पार कर लेने के बाद, प्रचण्ड-बुद्धि भाऊ आगरे के दक्षिणमें गम्भीरा नदी के तट तक जा पहुंचा। इस समय उसकी उत्कट इच्छा थी कि वह यमुना को पार करके अब्दालीसे, जिसकी फौजें वर्तमान अलीगढ़ के निकट अनूपशहर में छावनी डाले पड़ी थीं, भिड़ जाय। परन्तु समय से पहले वर्षा हो जाने के कारण नदीमें इतनी जोर की बाढ़ आ गई थी कि भाऊ और उसकी सेना को पूरे एक महीने तक उसके तट पर रुके रहना पड़ा। यमुना को पार करना बिल्कुल असम्भव जान कर, मराठा सेनाओं ने दिल्ली की ओर कूच किया और बिना किसी कठिनाई के पहली

अगस्त १७६० को उसके ऊपर अधिकार जमा लिया। उधर नदी के उस पार अब्दाली दिल्ली को समय पर सहायता दे सकनेमें अपनेको असमर्थ पाकर बड़ा लज्जित हो रहा था। दो महीने गुजर गये और अभी तक एक दूसरेसे मुठभेड़ करनेके लिए दोनोंमें से किसी भी शत्रु दलको बढ़ी हुई नदी को पार करनेकी सम्भावना न दिखाई पड़ी। विशाल सेनाओंने भोजनकी प्राप्तिके लिए आस पासके सारे प्रदेशोंके खेत नष्ट कर डाले, और जब वहां पर और अधिक दिन तक रहना असम्भव हो गया, तब भाऊ नदीके किनारे-किनारे उत्तर की ओर चल पड़ा और चलते-चलते कुंजपुर तक पहुंच गया। कुंजपुर अब्दाली के घर के रास्ते पर एक सैनिक अड्डा था। यद्यपि उसकी रक्षा करनेके लिए वहां पर जबर्दस्त फौजें थी, तो भी अधिक प्रयास के बिना ही उसने मराठोंके सामने हथियार डाल दिये। यहीं पर भाऊ ने १६ अक्टूबर को दशहरे का राष्ट्रीय पर्व बड़े समारोह और धूमधाम के साथ मनाया। इसके बाद उसने और उत्तरमें जाकर यमुनाको पार करने की तैयारी की। पर इतने में उसे एक ऐसा समाचार मिला जिसे पाते ही वह आश्चर्यचकित रह गया। समाचार यह था कि—अब्दाली, २६ और २८ अक्टूबर के बीच, दिल्लीसे लगभग २० मील उत्तर की ओर, बघाट नामक स्थान पर अपनी सारी सेना, साज सामान और तोपखानेके सहित, छिछले पानीमें पैठकर, नदीके दाहिने किनारे पर आ गया है और इस प्रकार दिल्ली और सुदूर दक्षिणसे मराठों का पत्र-व्यवहार का मार्ग अवरुद्ध कर दिया है। सेनाकी इन गतियों के कारण अब्दाली के लिए भी अपने देशसे पत्र-व्यवहार करना असम्भव हो गया। इस प्रकार यह बात समझमें आ जायगी कि पानीपत का युद्ध-कौशल मुख्य रूपसे बड़ी-बड़ी नदियोंको सफलतापूर्वक पार करनेकी युक्ति और अभ्यासके ऊपर निर्भर था। यह उस ढंगका युद्ध था जिसमें एक साल पहले दत्ताजी सिन्धिया दो बार हिम्मत हार चुका था। पर उसी तरहकी लड़ाईमें अब्दालीशाह के साथ जो न केवल पंजाबकी सारी नदियोंका वरन् अफ़ग़ानिस्तान और मध्य एशिया की नदियोंका भी कई बार अनुभव प्राप्त कर चुका था, भाऊका कोई मुकाबला न था, क्योंकि उस (भाऊ) को तो दक्षिणमें इतने बड़े पैमाने पर लड़ाई लड़ने का कभी मौक़ा न लगा था।

भाऊ जल्दी से कुंजपुरसे पीछे की ओर लौट पड़ा और अफ़ग़ानोंसे मुठभेड़ करनेके लिए तेजीके साथ दक्षिण की ओर चल दिया, पर यह पता लगने पर कि आगेका रास्ता बिल्कुल बन्द था, उसने पानीपत नगरके सामने डेरा डाल दिया। उधर अफ़ग़ान लोग और दक्षिणमें लगभग २० मीलकी दूरी पर सोनपत नामक स्थान पर अपनी सेना को

लड़ाईके लिए तैयार कर रहे थे। दोनों ओर सेनाओंमें लड़नेवालोंकी संख्या क़रीब-क़रीब ५०,००० के पहुंच गई थी, पर मराठों की तरफ़ बेलड़नेवालोंकी संख्या इसकी दुगुनी या तिगुनी थी। विपक्षी सेनाएँ पूरे ढाई महीने तक आमने-सामने पड़ी रहीं। इस कालके आरम्भमें, मराठे निश्चय ही अधिक उत्साहपूर्ण थे और उनके पास खाने-पीनेकी सामग्री भी अधिक थी, और यह अभी तक एक रहस्यमय बात है कि भाऊ ने अब्दालीके ऊपर, जो पहले अत्यन्त कमजोर था, तुरन्त आक्रमण क्यों नहीं कर दिया। एक व्यक्तिने आंखों देखा हाल बताते हुए ५ अक्टूबर को बलपूर्वक यह बताया कि, "चूंकि मराठों ने अब्दालीशाह का रास्ता बन्द कर दिया है इसलिए वह अपने घर नहीं पहुंच सकता, भोजन के अभावके कारण वह जहां है वहां ठहर नहीं सकता, और उनके साथ लड़नेमें किसी प्रकार की आशा नहीं कर सकता।" पर अब्दाली अपने समय का अद्वितीय सेनापति एवं कुशल योद्धा था, और भाऊको सरलता से हरा सकता था। उसने धीरे-धीरे मराठा शिविरमें पहुंचनेवाली खाद्य सामग्रीको रोक दिया, और विपक्षियों को इस बातके लिए बाध्य किया कि वे निराशाजनक अवस्था में पड़कर उसकी अपनी शर्तोंके अनुसार युद्ध करने के लिए तैयार हो जायं। भाऊ सिखोंके साथ, जो अफ़ग़ान आक्रमणकारीके कट्टर शत्रु थे, और जो खुशीसे मराठों* की मुसीबत में साथ देने के लिए तैयार हो जाते, सम्पर्क स्थापित करनेमें असफल रहा। जनवरी आते-आते भाऊ की हालत इतनी नाजुक हो गई कि उस महीने की १४ तारीखको उसे अन्तिम आक्रमण करने के लिए अपनी विशाल सेना युद्ध-क्षेत्र में लाने के लिए बाध्य होना पड़ा। जब दोनों की मुठभेड़ हुई, तब प्रातःकाल नौ बजे से एक भीषण संग्राम आरम्भ हुआ जो छः घंटे से अधिक समय तक चलता रहा। उसके बाद ही अचानक किसी की गोली लग जानेके कारण पेशवा पुत्र जो अपने हाथी पर सवार था, काल का ग्रास हो गया। उसके मरते ही मराठोंका भाग्य सितारा पलट गया। अपने मृत भतीजेकी दयनीय दशा देखकर भाऊ शोकाकुल हो उठा। वह अपने को न संभाल सका, और बिना कुछ सोचे बिचारे उस तरफ़ दौड़ पड़ा जहां लड़ाई का सबसे अधिक जोर था। वहां पहुंचते ही वह भी मारा गया। विजयी अफ़ग़ानों ने, जो दिन भरके भारी नुक़सान के ऊपर किटकिटाये बैठे थे, हारे हुए शत्रुओंके साथ किसी प्रकार की दया न दिखाई। हजारों आदमी काट डाले गये, विशेष रूपसे वे असहाय व्यक्ति जो

* सरदेसाई की पुस्तक पृष्ठ २८० देखिए।

लड़ाईमें कोई भाग न ले रहे थे। जाड़े का मौसम होनेके कारण दिन छोटे होते ही थे, इसलिए लड़ाई समाप्त होते-होते चारों ओर घना अन्धकार फैल गया था और उसी अंधेरे में कुछ लोग अपनी जान लेकर भाग गये। मराठा सेना के अधिकांश अनुभवी सेनाध्यक्ष या तो युद्धक्षेत्रमें वीर गति को प्राप्त हुए, या घावोंकी असह्य पीड़ा के कारण कालके ग्रास हुए या किसानों के हाथसे मार डाले गये। बहुत बड़ी संख्या में असैनिकों की निर्मम हत्या कर दी गई। इस विपत्तिका समाचार पेशवा के पास मालवा में एक सप्ताहके बाद पहुंचा। दुःखातिरेक से उसके दिमाग़की हालत इतनी बिगड़ गई कि वह कुछ महीनोंके अन्दर घुल-घुलकर मर गया। राजपूत लोग निश्चय ही मराठा सेनाओं की निराशामय स्थितिको संभाल सकते थे, पर उन्होंने जान-बूझकर चुपचाप बैठे-बैठे सब कुछ देखते रहना ही ठीक समझा।

५. युद्ध के परिणाम.

अधिकांश लेखक आमतौर पर यह समझते हैं कि पानीपतके युद्धने मराठोंकी उठती हुई शक्तिको पूरी तौर पर चूर कर दिया। पर मेरे विचारसे ऐसी बात नहीं है इसमें सन्देह नहीं कि जहां तक जन-शक्तिका सम्बन्ध है उन्हें इस युद्धसे भारी क्षति पहुंची; पर इसके आगे मराठोंके भाग्य पर इस विपत्तिका वस्तुतः कोई प्रभाव न पड़ा। नई पीढ़ीके लोग शीघ्रही, पानीपतमें होनेवाली क्षतिकी पूर्ति करनेके लिए उठ खड़े हुए। जहां तक अफ़ग़ानों का सम्बन्ध था, उन्हें अपनी विजय से कोई लाभ न हुआ। अहमदशाह, १८ महीनेकी लम्बी और कष्टकारक लड़ाईसे पस्त हो चुका था। नजीबुद्दौला या उसके उत्साहहीन मित्रोंके ऊपर अब भरोसा रखनेकी कोई परवाह किये बिना, १७६१ में मार्चके आरम्भमें ही उसने भारतीय मैदानोंसे, जहां वस्तुतः उसे कोई लाभ न हुआ था, प्रस्थान कर दिया। दस वर्षों बाद मराठों ने अपनी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर ली। अगले पेशवा और उसके उत्साही सेनाध्यक्ष, जिनमें महादजी सिन्धिया शामिल था, असली सम्राट् को दिल्ली वापस ले आये, और मराठोंके संरक्षणमें उसे मुग़लोंके वंशपरम्परागत राजसिंहासन पर आसीन कराया। इस प्रकार १७५२ की लिखित प्रतिज्ञा की अक्षरसः पूर्ति हुई और साथ ही हिन्दू-पद-पादशाही का वह महान् आदर्श भी अप्रत्यक्ष-रूपसे पूरा हुआ जिसके लिए पेशवा लोग अपने शासन कालके आरम्भ से प्रयास करते आये थे। मराठों के पतन का आरम्भ उस दिनसे नहीं हुआ जिस दिन कि मराठों के ऊपर पानीपत की विपदा आई, वरन् उस दिनसे हुआ जबकि उनका सर्वोत्कृष्ट

एवं सर्वगुणसम्पन्न शासक, पेशवा माधवराव प्रथम १७७२ में समय से पूर्व ही मृत्यु का शिकार हुआ। मराठोंका महान् इतिहासकार इस विचारकी पूर्णतया पुष्टि करते हुए लिखता है—"मराठा साम्राज्यके लिए पानीपत के मैदान उतने घातक न थे जितने कि इस विशिष्ट राजकुमार का शीघ्र होनेवाला अंत।" मेजर इवानस् बेल (Major Evans Bell) लिखते हैं—"पानीपत की लड़ाई भी मराठोंके लिए एक प्रकार की विजय और गौरव थी। उन्होंने भारतीयोंके लिए भारत के हितमें युद्ध किया, जबकि दिल्ली, अवध और दक्षिणके बड़े-बड़े मुसलमान शासक एक ओर होकर षड्यंत्र रचते तथा अपने को संवारते रहे। यद्यपि मराठोंकी हार हुई तथापि विजयी अफ़ग़ान वापस चले गये और फिर कभी भारत के मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं किया।

पर दूसरे अर्थमें पानीपत की लड़ाई वास्तव में एक भारतीय इतिहास में मोड़-विन्दु सिद्ध हुई। अट्ठारहवीं शतीके मध्य भारतके ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए दो शक्तिशाली दलोंके बीच स्पर्धा चल रही थी, वे थे उठते हुए मराठे और गिरते हुए मुसलमान। एक तीसरी शक्ति, अंग्रेज, भारतीय क्षितिज पर उदय हो ही रही थी। पहली दो ने अपने पारस्परिक संघर्षों द्वारा, जिनका अन्त पानीपतमें हुआ, दोनोंको इतना अधिक कमजोर बना दिया कि तीसरी के लिए मैदान साफ़ हो गया। «बम्बई की उत्पत्ति» के विद्वान् लेखक Dr. Gerson da Cunha ने इस तथ्यको पूर्णतया समझते हुए लिखा है—"अंग्रिया लोगोंके पतन और पानीपत की दुर्घटना ने अंग्रेजों को धूर्त पड़ोसियोंकी दासता से मुक्त कर दिया और उनके उत्कर्षमें जल्दी कर दी।" पानीपत के चार वर्ष उपरान्त क्लाइव ने जिस आसानीके साथ बंगालकी दीवानी, अर्थात्, व्यावहारिक रूपमें उस धनी सूबे और फलस्वरूप पूरे भारतके ऊपर अधिकार प्राप्त कर लिया उससे यह बात पर्याप्त रूपसे प्रमाणित हो जाती है। उड़ीसाको नागपुरके भोंसलों ने अपने अधीन कर लिया था, और यदि पेशवागण पानीपत में विजयी हुए होते तो, ऐसा निश्चय जान पड़ता है कि नागपुर के भोंसले या पेशवा लोग कोई भी इतनी आसानीके साथ बंगालको अपने हाथसे न निकलजाने देते, और क्लाइवको वे उत्तरी-पूर्वी भारत का निर्विवाद स्वामी न हो जाने देते।

६. मराठा विजयों के विषय में मुसलमानों के विचार.

जब एक ओर मैंने शिवाजी से लेकर पेशवाओं तक मराठा नीतिके उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की यथाशक्ति स्पष्ट ढंग से व्याख्या करने की चेष्टा की है, तो दूसरी ओर

इतिहास के साथ न्याय करते हुए मुझे वे बातें भी न छोड़ देनी चाहिए जो मुसलमान लोग पूरे समय अनुभव करते रहे। नीचे उद्धृत गद्यांश से उनके विचारोंका पता चल जायगा—

रघुनाथ यादव ने जो पेशवाओं के घरेलू प्रबन्ध का बाबू और मराठा इतिहासका लेखक था, पानीपतकी लड़ाई होनेके दो वर्ष के भीतर उसकी घटनाओंका वर्णन करते हुए निम्नलिखित प्रबोध-वचन अब्दाली के मुंहसे कहलाये हैं। ये प्रबोध-वचन उसने अपने दूतों द्वारा मराठा सेनाओं के सेनाध्यक्ष भाऊ साहबके पास भेजे थे। इतिहासके पृष्ठ १६ पर हिन्दू-पद-पादशाही के मराठा आदर्शका जो सारांश दिया गया है वह उस आदर्शका वस्तुतः यथार्थ विवरण माना जा सकता है। पूरे विवरणमें स्पष्ट रूपसे इस बातकी झलक मिलती है कि शुद्ध राजनैतिक संघर्ष को जानबूझ कर धार्मिक मोड़ किस प्रकार दिया गया। अब्दाली कहता है—

"तुम मराठोंकी आक्रमणकारिता असह्य हो उठी है, और तुमने राजपूताना, काश्मीर तक पंजाब, सिन्धु नदी और उसके आगेके शाही प्रदेश और भी गंगा यमुना के पार कुमाऊं पर्वतमाला तथा बद्रिकेश्वर तकके सूबे, जिनमें बंगाल, और काशी, प्रयाग तथा गया के नगर शामिल हैं, मर्यादाहीन ढंगसे रौंद डाले हैं। तुम्हारे कारण शाही खजाने प्रान्तोंसे राजधानी तक निर्विघ्न रूपसे नहीं पहुंच पाते। तुमने चित्तौड़, द्वारका और गुजरातके ऊपर अधिकार कर लिया है, आगरेके निकटतम प्रान्तसे कर वसूल किया है, शाही राजधानी दिल्लीका अपमान किया है, और वार्षिक आक्रमणोंके जमानेमें अपने नियमोंकी घोषणा करके सम्राट्के राजसिंहासनका अनादर किया है। तुमने चार महासागरोंके सहित पूरी दुनियां पर विजय पानेकी योजना बनाई है, और इस प्रकार तुम रॉम-शाम (Roum Sham) तक पहुंच जाना चाहते हो। इसलिए वहां के सम्राट् मुहम्मद* ने अपने पुत्रको सिन्धु पार करके भारत पर चढ़ाई करने और मुग़ल सम्राट् के परम्परागत सम्मान तथा पद की, जिससे तुम लोगोंने उसे वंचित कर दिया है, पुनःस्थापना करनेका आदेश दिया है। इसी कारण मैं इतनी दूरसेना लेकर आया हूं, ताकि तुम्हारे महापराधका बदला ले सकूं और दिल्ली तथा सम्राट्को, जो अपने अविश्वासी अनुचरों द्वारा ठगा गया है, मुक्त कर सकूं। सम्राट् पवित्र है और मुसलमानों तथा हिन्दुओंको समान रूपसे उसका सत्कार करना चाहिए।

* कुस्तुन्तुनियां में इस नामके सम्राट् ने १७३० से १७५४ तक शासन किया।

"अतएव मैं तुम्हें आदेश देता हूं कि तुम सम्राट्को अकेले छोड़ दो, तुम्हारा जो कुछ खर्च हुआ है वह ले लो और चुपचाप अपने राज्यको लौट जाओ। तुम्हारे ही कारण चित्तौड़ और उदयपुरके रामसंग्राम, अजमेर के मारवाड़ शासक, जयपुरके सवाई जयसिंह जैसे सब बड़े-बड़े ५२ सर्दारों ने सम्राट् को सालाना कर देना बंद कर दिया है और तुम्हारी सहायता से पूरे भारतवर्षको हिन्दुओंका राज्य बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। इसलिए मेरे रॉम शाम के अधिपति ने मुझे तुमको और तुम्हारे जैसे उन सभी लोगों को दंड देने की आज्ञा दी है जिन्होंने सम्राट्का तिरस्कार करनेका साहस किया है। अन्त तक पीछा करना मेरा मिशन है। दक्षिणके छः शाही सूबों तक में तुम्हारी आक्रमणकारी कृतियों की मात्रा अत्यधिक है। तुमने निज़ाम को नीचा दिखाया है, बीजापुर, बीदर, दौलताबाद और अहमदनगर के प्राचीन राजकीय केन्द्रों को जीत लिया है, कर्नाटक के राज्यको अपने अधीन कर लिया है, हैदराबाद के ऊपर गोलियों की वर्षा की है, और सिरौंज, भिलसा तथा गंधमंडल आदि उत्तरी नगरों के साथ-साथ सोंध, बेदनूर, त्रिचनापल्ली, श्रीरंगपट्टम, मछलीपटम, गोआ, कोंकण और कम्बे तक के उनके भीतर के सभी समुद्रतटों और महत्त्वपूर्ण नगरों पर अधिकार कर लिया है। इसके अतिरिक्त तुमने सिर्फ़ जबर्दस्तीसे इन सब प्रदेशोंके सभी मज़बूत और प्रसिद्ध क़िलों और गढ़ियों तथा द्वीपवर्ती दुर्गों पर अधिकार जमा लिया है। तुमने छल-कपट और षड्यंत्र दोनों की सहायता से खानदेश, नेमद, बरार और खेचिवद के विशाल एवं उपजाऊ सूबों को अपने अधीन कर लिया है। तुम्हारा साहस इतना बढ़ गया है कि तुमने एक हिन्दू सम्राट् को दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया है। तुमने असंख्य ऐसे सर्दारों और सालाना कर चुकानेवाले राजाओं को, जो सम्राट् का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे, उनकी सारी सम्पत्तिसे वंचित कर दिया है और उन्हें निर्वासित कर दिया है। उनमें से कई फ़क़ीर और भिखमंगे हो गये हैं।

"मैं अच्छी तरहसे जानता हूं कि तुम्हारे पूर्वजोंने शाइस्ताखां, ज़ुलफ़िकारखां, जयसिंह जैसे अनेक वीर एवं शक्तिशाली सेनापतियों* को, जो औरंगजेब द्वारा उनको रोकनेके लिए नियुक्त किये गये थे, किस प्रकार ललकारा था। तुमने उनके सम्बन्धियों को पूरी तरहसे बर्बाद कर दिया, और यहां तक कर दिया कि उनके नाम भी

* बीस से ऊपर ऐसे सेनापतियोंकी सूची मिलती है जो मैंने छोड़ दी है। इधर उधर कुछ पुनरावृत्तियां भी छोड़ दी गई हैं।

वहीं सुनाई देते। पर याद रखो—तुम्हारी ये चालें मुझसे नहीं चल सकतीं। मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि तुम नर्मदा नदी के दक्षिण को लौट जाग्रो और दक्षिण के ऊपर अधिकार रखकर सन्तोष करो। यदि तुम मान जाते हो तो सब भला ही भला है; यदि नहीं मानते तो फल तुम्हारे सामने आयेगा। तुम्हें स्वतंत्रता है—जो मार्ग चाहो वह अपनाओ।"

७. माधवराव, सर्वश्रेष्ठ पेशवा.

पेशवा बालाजी राव दो पुत्र, माधवराव और नारायणराव, तथा एक भाई रघुनाथराव छोड़ कर मरा था। माधवराव, जो उस समय सोलह वर्षका था, अपने पिता के उत्तराधिकारीके रूपमें पेशवा की गद्दी पर बैठा। पर अपनी आशाके अनुरूप शासनका संचालन उसके चाचा रघुनाथरावके हाथमें रहा। रघुनाथराव ने उत्साहके साथ काम करते हुए इस बात की पूरी कोशिश की कि माधवराव स्थायी रूपसे राज-काजसे अलग रखा जाय। पर माधवराव में स्वभावसे ही परिपक्व विचार-निर्णय, असीम उत्साह और सैनिक एवं राजनीतिज्ञके गुण विद्यमान थे। जब चाचा ने आधे राज्य पर अपना अधिकार जताया तो आरम्भिक संघर्ष शीघ्रही खुल्लम-खुल्ला लड़ाई के रूपमें परिवर्तित हो गया, क्योंकि यह मांग अव्यावहारिक थी। एक घरेलू युद्ध आरम्भ हो गया जिसमें नवयुवक पेशवा विजयी हुआ। १७६८ में युद्धका अन्त हुआ। पेशवा ने अपने चाचा को पकड़ लिया और उसको पूनाके महलमें कड़ाई के साथ बन्दीके रूपमें रख दिया।

पानीपतमें आनेवाली मराठोंकी इस विपत्तिसे, जो अब इस घरेलू झगड़ेके कारण और बढ़ गई थी, लाभ उठानेवाले शत्रुओंका अभाव न था। निज़ामअली पूरी रफ़्तार के साथ सेना सहित पूना की ओर चल पड़ा, परन्तु दो वर्ष तक लगातार चलनेवाले युद्धके पश्चात् राक्षसभुवन नामक स्थान पर वह पूर्णतया परास्त कर दिया गया और उसे मराठों की अधीनता स्वीकार करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। पेशवा ने तुरन्त शासनसंचालन अपने हाथमें ले लिया और अपने आदेशोंको कार्यान्वित करनेके लिए नाना फडनीस और हरीपन्त फडके को अपने प्रधान सचिवके रूपमें नौकर रखा। प्रसिद्ध रामशास्त्री का, जिसको पेशवा गुरुकी तरह मानता था, न्यायविभाग के संचालन में अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

पानीपत की दुर्घटना का एक अप्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि मैसूर में हैदरअली को बिना रोकटोक के उठनेका मौका मिल गया। उसने इस अवसरसे लाभ उठाकर कर्नाटकमें अपनी शक्ति बढ़ा ली और उस प्रदेशमें मराठा-विजयके समस्त चिह्नोंको मिटा देनेका प्रयास किया। इसलिए माधवरावको अपने समय और द्रव्यसाधनोंका उत्कृष्ट भाग अपने पहलेवाले समस्त प्रदेशों पर पुनर्विजय प्राप्त करने और हैदरअली को पूर्ण रूपसे अपने अधीन करनेमें व्यतीत करना पड़ा। कर्नाटक की चढ़ाईके साथ-साथ, पेशवाने नागपुरके भोंसलों को अपने अधीन कर लिया और उन्हें फिर से केन्द्रीय सरकार का आधिपत्य स्वीकार करनेके लिए विवश किया। उसने उनसे एक समझौते पर हस्ताक्षर कराये जिसकी शर्तोंके अनुसार उन्होंने पेशवाको मराठा-राज्यका अधिपति स्वीकार कर लिया और समस्त विद्रोहियों एवं शत्रुओंके विरुद्ध उसका साथ देनेको प्रतिज्ञा की। १७६९ में होनेवाली कनकपुरकी यह सन्धि मराठा राज्यकी संगठित शक्तिकी व्यवस्था करनेमें नवयुवक पेशवा के पराक्रम एवं योग्यता की एक महान् कृति मानी जाती है।

उसी साल पेशवा ने दिल्ली दर्बार और सामान्य रूपसे उत्तरी प्रदेशों में मराठों की प्रतिष्ठा एवं अधिकारोंकी, जिन्हें पानीपत की हारके कारण ठेस पहुंची थी, पुनः स्थापना करनेके लिए दो ब्राह्मण और दो मराठा सेनाध्यक्षोंके नेतृत्वमें एक शक्तिशाली सेना भेजी। चार सर्दारोंने, जिनमें महादाजी सिन्धिया एक था, अपने कामों में अद्भुत सफलता प्राप्त की, सम्राट्को दिल्लीमें उसके पूर्वजोंके राजसिंहासन पर बैठाया, रुहेलों को नीचा दिखाया, और मराठोंकी समस्त पूर्व प्रतिज्ञाओंको, जो आमतौरसे हिन्दू-पद-पादशाही कहलाती हैं, पूर्ण किया। ठीक उस समय जबकि मराठोंकी शक्ति और कूटनीति अपनी चरम सीमा को पहुंच चुकी थी, यह सर्वश्रेष्ठ पेशवा कुलक्रमसे प्राप्त क्षयरोगसे आक्रान्त होकर, २८ वर्षकी अल्पायुमें, पूरे राष्ट्रको गम्भीर शोक-सागरमें डुबाकर नवम्बर १७७२ में स्वर्गको सिधार गया। इस घटना को शिवाजी की मृत्युके बादसे मराठा शक्तिके ऊपर आनेवाली सबसे बड़ी विपत्ति समझना उस समय भी ठीक था और आज भी ठीक है।

ग्रान्ट डफ़ कहता है, "यद्यपि माधवराव में सैनिक गुणोंका आधिक्य था, तथापि एक सम्राट्के रूपमें उसने जो चरित्र पाया था वह कहीं अधिक प्रशंसनीय है। वह अपने किसी भी पूर्वजकी अपेक्षा अत्यधिक सम्मान पानेका अधिकारी है। अत्याचारीके विरुद्ध निर्बलका, धनीके विरुद्ध निर्धन का समर्थन और सामाजिक नियमोंके अनुसार

सबके साथ न्याय करनेके लिए उसकी जो प्रशंसा की जाती है वह सर्वथा उचित है।" किनकिड (Kincaid) लिखता है: "माधवराव ने अपना जीवन देशकी सेवा में व्यतीत किया। भीतर और बाहर दोनों ओरसे शत्रुओंका भय होने पर भी उसने सबके ऊपर असाधारण विजय प्राप्त की। अपनी विजयोंके कारण उसे कोई आराम न मिला; जनता के दु:खों को दूर करनेके लिए वह पूरे समय अथक परिश्रम करनेमें लगा रहा। उसे जितनी जल्दी क्रोध आता था उतनी ही जल्दी वह लोगोंको क्षमा भी प्रदान कर देता था। कठोर से कठोर आलोचक भी यदि इस अपूर्व शासकमें कोई दोष निकाल सकता है तो वह यह है कि उसने निरन्तर कठिन परिश्रम करके अपने जीवन को, जो जनताके लिए इतना बहुमूल्य था, छोटा कर दिया।"

परिणाम जो हुआ वह सामने ही है। माधवराव की मृत्यु के उपरान्त उसका छोटा भाई नारायणराव पेशवा बना। उसके चाचा राघोबा ने, जो अभी तक बन्दीगृहमें था, वहां से निकल भागनेका प्रयास किया, जिसके कारण रक्षकगण उसके ऊपर पहले से अधिक कठोर नियंत्रण रखने लगे। इसके ऊपर उसके साथियोंने उसकी शक्तिकी पुन:स्थापना करनेके लिए षड्यंत्र रचा और उसको मुक्त करके भतीजे को बंदी बना लिया। इसके बाद पहरेदारोंने उसे डरा धमका कर मार डाला। इस पापकर्म के कारण जाति भर की क्रोधाग्नि भड़क उठी और प्रसिद्ध रामशास्त्री द्वारा पूरी और पक्ष-पात रहित जांच होने पर यह पता चला कि उसके चाचा राघोबा का उसमें प्रमुख हाथ था। तब शासन संचालन करने के लिए उत्तरदायी मंत्रियों एवं नेताओंने एक राज्य-परिषद् (Council of State) बनाई, जो «बड़ा-भाई» के नामसे प्रसिद्ध हुई, राघोबा को राजकाजसे अलग कर दिया, और हत पेशवा के नवजात पुत्रके नामसे शासनका काम करने लगे। निष्कासित पेशवा ने सूरतमें अंग्रेजोंके पास शरण ली, और उनकी सहायता से पेशवा का पद फिर से प्राप्त करनेकी चेष्टा की। फलस्वरूप एक दीर्घकालीन युद्ध हुआ जो ब्रिटिश भारतके इतिहासमें प्रसिद्ध है।

८. मराठों की बढ़ती हुई शक्ति के प्रति अंग्रेजों को ईर्ष्या.

तृतीय पेशवा बालाजी बाजीराव युद्ध और कूटनीति दोनोंमें लगातार कई विजय प्राप्त करके मराठा शक्तिको पूरे भारतकी एक महान् एवं आदरणीय शक्ति बनानेमें क़रीब-क़रीब सफल हुआ। अंग्रेजोंने विद्रोही अंग्रिया को दबाने के लिए १७५६ में

खुशीसे उसको सहायता दी थी, परन्तु वे शीघ्रही पेशवा की महत्ता से ईर्ष्या करने लगे और जब दो वर्ष बाद उसने जंजीरा जीतनेके लिए सिद्दी पर, जो उस समय मराठा आक्रमण के लिए एक मात्र खतरा था, चढ़ाई की तो उन्होंने उसे मित्रवत् सहायता न दी। इस समय उन्होंने सूरतके दुर्ग पर बलपूर्वक अधिकार भी कर लिया था, जिसके कारण उस भागमें पेशवा की रुचियोंको अत्यधिक हानि पहुंची थी, अंग्रेजोंको भय था कि यदि मराठे सिद्दीको उसके अधिकृत राज्यसे निकाल बाहर करनेमें सफल हो गये तो शायद उसके बाद मराठा सेना उनकी ओर चल पड़ेगी और बम्बई में उनकी स्थिति खतरेमें पड़ जायगी। सप्तवर्षीय युद्धके कारण, जो उस समय चल रहा था, इस बात का विशेष भय था, क्योंकि दुनिया के सभी हिस्सोंमें अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच खुल्लमखुल्ला लड़ाई थी। ऐसी स्थितिमें जब १७५८ में अंग्रेजों ने सिद्दीके विरुद्ध पेशवा को सहायता देनेसे इन्कार कर दिया तो उसे बहुत बुरा लगा। उसने खुल्लम-खुल्ला फ्रांसीसियोंके साथ सन्धिकी बातचीत शुरू कर दी जिसका उद्देश्य यह था कि पारस्परिक सहयोग से फ्रांसीसी बंबई को और मराठे जंजीरा को जीत लें। घटनाओं के इस मोड़ने बम्बई के अंग्रेज शासकोंको इतना चिन्तित कर दिया कि उन्होंने पेशवा को शान्त करने तथा उसके वैर-भाव को दूर करनेके विचारसे, सितम्बर १७५९ में श्री प्राइसको अपना राजदूत बनाकर पूना भेजा। पेशवा ने राजदूतका आदर सत्कार तो किया, पर उसके मिशनके विषय पर किसी तरहकी बातचीत करने से इन्कार कर दिया। फलस्वरूप प्राइस बिना कोई सफलता प्राप्त किये, वापस चला गया।

आठ वर्ष बीत गये, और अगले पेशवा माधवराव ने शीघ्र ही समस्त भारतमें मराठोंकी शक्ति स्थापित कर ली। अंग्रेज लोग फिर भयभीत हो उठे और पेशवा तथा उसके चाचा के बीच बढ़ते हुए वैर-भावका समाचार पाकर "मराठोंकी बढ़ती हुई शक्तिको यथासम्भव रोकनेके लिए", १७६७ में अपने एक दूत श्री मॉस्टिन (Mr. Mostyn) को पूना और एक दूसरे दूत श्री ब्रूम (Mr. Broome) को चाचा राघोवा के पास नासिक भेजा। राघोबा ने श्री ब्रूमसे अपने भतीजे की कृतघ्नता की खूब शिकायत की और उसे दबानेके लिए अंग्रेजोंसे सहायता की प्रार्थना की। पर चूंकि राघोबा ने अंग्रेजी सहायता के बदलेमें कोई निश्चित लाभ देनेकी बात नहीं ठहराई, इसलिए सारा सौदा बेकार हो गया। मॉस्टिन को भी, जो पेशवा के पास पूना भेजा गया था, कुछ अधिक सफलता नहीं मिली। तो भी चार वर्ष बाद पेशवा

ने मॉस्टिन को अंग्रेज राजदूतके रूपमे भेंट करनेके लिए पूना बुलाया, परन्तु जब वह वहां पहुंचा तब पेशवा का रोग बहुत बढ़ चुका था और दो महीने बाद, नवम्बर १७७२ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद भी कई वर्ष तक मॉस्टिन पूना में रहता रहा, और पेशवा नारायणराव की हत्या के फलस्वरूप मराठा दर्बारमें घटित होनेवाली घटनाओंकी रिपोर्ट बम्बई भेजता रहा। मॉस्टिन के सुझावको मानकर अंग्रेजों ने भागे हुए राघोबा को सूरतमें शरण दी और उसके बाद मराठोंके साथ एक लड़ाई शुरू की जो सात वर्षों तक चलती रही और ब्रिटिश-भारतके इतिहासमें प्रथम मराठा युद्धके नामसे प्रसिद्ध हुई।

६

महादाजी सिन्धिया और नाना फड़नीस

१. मराठा इतिहास के तीन काल.

दैवयोगसे दो व्यक्ति पानीपतके प्राणघातक युद्धक्षेत्रसे अपनी जान बचाकर निकल भागे थे। अपनी व्यक्तिगत योग्यता एवं चरित्रके बलसे उन दोनोंने शीघ्र ही असाधारण ख्याति प्राप्त कर ली, और लगभग उस समय तक बराबर मराठा राज्यके रक्षक बने रहे जब तक कि बेसीनकी संधि द्वारा उसका पतन नहीं हो गया। नियमपूर्वक तो मराठा राज्यका अन्त १८१८ में हुआ, पर वास्तवमें उसकी स्वतंत्रताका नाश बेसीनकी संधिसे (१८०२) हुआ, जिसके अनुसार मराठा राज्यके अधिष्ठाता के रूपम बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेजोंकी प्रभुता स्वीकार कर ली। यदि उसमें बादको आनेवाली कठिनाइयोंका सामना करने तथा अन्य लोगोंकी तरह इच्छा और प्रसन्नता से अंग्रेजोंका आधिपत्य स्वीकार कर लेने के लिए आवश्यक विवेक बुद्धि होती तो सम्भवतः ग्वालियर, इन्दौर और बड़ोदा के वर्तमान महाराजाओंके समान वह भी अपनी राजधानी पूना में एक अधीनस्थ शासकके रूपमें राज्य करता रहता। इसलिए हम लोगों को ३१ दिसम्बर १८०२ से मराठा राज्यका अन्त मान लेना चाहिए, और उसी हिसाबसे अपने विषयका विभाजन कर लेना चाहिए। यदि मैं शिवाजीके हाथों होने वाले मराठा स्वराज्यके आरम्भकी गणना १७ वीं शतीके मध्यमें कहीं से करूं, मान लीजिए १६५३* से, तो १७१३ तक के पहले साठ वर्षोंके युग पर, जब पेशवाका

* १७ जुलाई १६५३ को लिखे हुए एक पत्रमें शिवाजी घोषित करता है कि उसका « स्वराज्य » एक पूर्ण तथ्य है। —पत्रसार संग्रह नं० ६४२

शासन प्रारम्भ हुआ, शिवाजी के व्यक्तित्वकी स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है, और जैसा हम पहले देख चुके हैं, वह अगले साठ वर्षोंसे (१७१३ से १७७३) बिल्कुल अलग है। १७१३ से १७७३ तक वह युग था जबकि पहले चार पेशवाओंकी असाधारण योग्यता के कारण मराठा शक्तिका अधिकतम विस्तार हुआ और जब सरंजामी प्रथा, जिसमें सामन्ती सैनिक सेवा शामिल थी, पूरे ज़ोरके साथ चल रही थी। उसके बाद पतनका युग आता है जो पैंतीस वर्षसे अधिक समय तक चलता रहता है। उस कालका आरम्भ १७७३ में पेशवा नारायणराव की हत्या से आरम्भ होता है और जैसा मैं पहले कह चुका हूं, १८०२ में बेसीनकी सन्धिसे समाप्त होता है। इस प्रकार भारतमें मराठा साम्राज्यके अस्तित्वके १५० वर्ष पूरे हो जाते हैं। ३० वर्षके इस अन्तिम युग के ऊपर दो व्यक्तियोंकी विशेष छाप दिखायी देती है, बालाजी जनार्दन «उर्फ़» नाना फड़नीस और महादाजी सिन्धिया, जिसके विषयमें मैं अब बताने जा रहा हूं।

इन दोनों समसामयिक व्यक्तियोंकी इच्छाओं और कृतियोंके विषयमें, न केवल महाराष्ट्रके बाहर वरन् उसके भीतर अनेक ग़लत धारणाएँ वर्तमान हैं, क्योंकि जैसा मुझे भय है, अभी तक उचित ऐतिहासिक प्रवृत्तिमें समस्त प्राप्य पत्रों (Papers) तथा वृत्तान्तोंका अध्ययन नहीं किया गया है। मेरे विचारसे इस स्थान पर उनका तथा उनके कार्यका मूल्यांकन और उसके साथ मराठा राजनीतिकी गिरती हुई अवस्था का विवरण भी दे देना अनुचित न होगा, ताकि मराठा पतनके कारणों पर होनेवाली मेरी अगली वार्ता का कुछ आभास मिल जाय। इस प्रकार ऊपर बताये हुए तीन कालोंमें किये गये विभाजनको ध्यानमें रखते हुए, मैं आरम्भसे उन सबकी मुख्य विशेषताओंकी सरसरी तौर पर व्याख्या कर देना चाहूंगा। नाना और महादाजी, जिनमें एक ब्राह्मण और शुद्ध राजनीतिज्ञ था और दूसरा मराठा और सैनिक-राजनीतिज्ञ था, प्रायः एक दूसरेके सहायक रहते थे, और कभी-कभी शक्तिके लिए एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी होते थे, पर दोनों ही हमेशा राष्ट्रीय रुचियोंके विषयमें अत्यधिक सतर्क रहते थे।

२. महादाजी और नाना की प्रारम्भिक जीवनवृत्तियां.

महादाजी का जन्म १७२७ के लगभग हुआ और इसलिए १७९४ में जब उसकी मृत्यु हुई, उस समय वह ६७ वर्षका था। नाना का जन्म १७४१ में हुआ था, अतएव वह उम्रमें १४ वर्ष छोटा था। दोनोंको पेशवा बालाजीके समयमें मराठोंके चिन्त्य विषयोंकी उन्नतिका सूक्ष्म निरीक्षण एवं अध्ययन करनेका पूर्ण अवसर मिला, और

दोनों ने शुरूकी काफ़ी तालीम उसीके नेतृत्व में पाई और माधवराव को अपनी महत्त्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान कीं। उनका उत्थान और भावी जीवनवृत्ति केवल मात्र उसी की कृपा का फल थी और दूसरी ओर वह (माधवराव) स्वयं अपने चाचा के विरुद्ध अपनी स्थितिका प्रतिपादन मुख्यरूपसे इन्हीं दोनोंके सच्चे समर्थनके कारण कर पानेमें समर्थ था। आरम्भसे ही नाना और महादाजी राघोबा की नीति और तरीक़ों के विरोधी थे, और इस लिए वह भी उनसे इतना चिढ़ता था कि यदि उसकी चलती तो वह दोनों को किसी समय भी लूट लेता। यह सभी लोग जानते हैं कि जब पानीपत की दुर्घटना के बाद, जिसमें सिन्धिया परिवार के तीन वीर पुरुषोंकी जीवनलीला समाप्त हो गई थी, उस राज्यके उत्तराधिकारके प्रश्न पर विचार किया जाने लगा, तो राघोबा ने महादाजी के हक़को अलग कर दिया और एक दूरके रिश्तेदार, मानाजी सिन्धिया को जो «फडके» कहलाता था, नियुक्त कर दिया। पर माधवराव को यह अन्यायपूर्ण कार्य अच्छा न लगा; क्योंकि एक तो रानोजी के बड़े और स्वामिभक्त परिवारमें केवल महादाजी ही बचा था, और दूसरे अपने पिता का अनौरस पुत्र होते हुए भी वह प्रत्यक्ष उत्तराधिकारीके रूपमें राज्यका अधिकारी होनेके लिए सर्वथा योग्य था। जब मानाजी दो साल तक उस पद का उपभोग कर चुका तब माधवराव न महादाजी को पूरी सम्पत्तिका अधिकारी बना दिया। जसा स्वाभाविक ही था—उसके बाद से महादाजी हमेशा राघोबा से, जिसे वह बिल्कुल अयोग्य समझता था, घृणा करता रहा। इसी तरह नाना फड़नीस भी पेशवा माधवराव का विश्वासपात्र था, जिसका खास काम था—१७६८ में धोदप (Dhodap) के युद्ध के बाद बन्दी बनाये गये धूर्त राघोबा की रखवाली और जांच-पड़ताल करना। इसलिए राघोबा शुरू से ही नाना से बेहद नाखुश था। नारायणराव की हत्या के बाद, जब नाना और सखाराम बापूने हत्यारेके विरुद्ध एक महान् संघ की रचना की तब इस बढ़ते हुए तनावने खुल्लम-खुल्ला लड़ाई का रूप धारण कर लिया। उनका उद्देश्य यह था कि पेशवाको अलग कर दिया जाय और शासनका संचालन पहले तो नारायणराव की विधवा गंगाबाई के नामसे, और बादको उसके नवजात पुत्र सवाई माधवराव के नामसे किया जाय। १७७४ में इस पेशवा के जन्मसे लेकर अगले बीस वर्षों तक अर्थात् १७९४ तक, नाबालिग़का शासन रहा, जिसके कारण नाना और महादाजी को अपनी योग्यता प्रमाणित करने का अवसर प्राप्त हो गया। जैसा हम सब जानते हैं, उन्होंने उत्कृष्ट सफलता के साथ अपने कर्त्तव्यको पूरा किया।

घटनाओंके क्रमके अनुसार नाना और महादाजी की जीवनवृत्तियां दो मुख्य कालों में विभाजित हैं, १७७४ से १७८३ तक पहला काल जो प्रथम मराठा युद्धके नामसे प्रसिद्ध है, और १७८४—९४ तक दूसरा काल, जब महादाजी ने खुल्लमखुल्ला पुरानी गुरीला युद्ध पद्धतिको छोड़कर, डी बोगने (De Boigne) के निर्देशन में—जिसे दो योरोपीय युद्धोंका अनुभव था, और जो उस समय भारतका सर्वश्रेष्ठ योरोपियन साहसी योद्धा था, योरोपीय ढंगकी एक नवसेना का निर्माण किया,—राजपूत राजाओंको जीत लिया, दिल्ली पर अधिकार कर लिया, और सम्राट्को गुलाम क़ादिरके निन्द्य क्रूर कर्मोंसे बचानेके बाद अपने संरक्षणमें ले लिया। इस प्रकार महादाजी ने पूरे भारतमें एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया और ठाटबाट तथा सम्मान सहित पूना लौट आया। पर दुर्भाग्यसे अपनी जन्म भूमिमें आकर शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। नाना और महादाजी दो ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने नारायणराव की मृत्युके पश्चात् राघोबा द्वारा अंग्रेजों की सहायता होने पर मराठा शक्तिकी रक्षा की।

जिन्होंने तत्कालीन योरोपीय इतिहासका अध्ययन किया है और भारतमें वारेन हेस्टिंग्ज की जीवनवृत्तिको ध्यानसे देखा है, वे तुरन्त इस बातका अनुभव कर सकते हैं कि प्रथम मराठा-युद्ध, जिसका समय वही है जो अमरीका के स्वतंत्रता युद्धका, किस प्रकार विदेशी राजनीतिसे प्रभावित हुआ, क्योंकि फ़ांसीसी जलसेना ने कुछ समयके लिए अपना खोया हुआ प्रभाव पुनः प्राप्त कर लिया था जिसने अंग्रेजोंको उनके विश्व-व्यापी युद्धमें बड़ा चिन्तित कर दिया था। जैसा हम जानते हैं, १७५६ में सप्तवर्षीय युद्धके समय अंग्रेजोंकी विश्व-शक्ति बनने की महत्वाकांक्षा जाग उठी, और युद्धका अन्त होनेपर उन्होंने १७६३ में पेरिसकी सन्धि द्वारा अपनी नाविक प्रभुता स्थापित कर ली। अगले दस वर्षोंमें उनकी महत्वाकांक्षा अवरुद्ध रही, पर पूना में पेशवा की हत्या होनेसे वह पुनः जाग उठी। १७७४ में उन्होंने मर्यादाहीन ढंगसे पेशवा के अधिकृत दुर्ग थाना पर आक्रमण करके उसके ऊपर अधिकार जमा लिया और इस प्रकार उपर्युक्त दुर्घटना से उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। अगले साल नेल्सन, जो उस समय बिल्कुल अज्ञात पुरुष था, पूर्वी समुद्र में नाविक विस्तार करनेकी आशा से बम्बई आया, और सम्भवतः वारेन हेस्टिंग्ज तथा भारतके अन्य अंग्रेज अफ़सरोंको उससे बड़ा प्रोत्साहन मिला। परन्तु अमरीका के स्वतंत्रता-युद्धके ज़मानेमें दुनिया के समस्त भागोंमें अंग्रेजोंकी महत्वाकांक्षा को धक्का लगा। थोड़े समयके लिए फ़ांसीसी जलसेना अंग्रेजी जलसेना की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हो गई थी।

इस कालके मराठा इतिहासको उचित रूपमें समझनेके लिए, विद्यार्थीको ब्रिटिश राजनीतिका अन्तर्राष्ट्रीय रूप अपने ध्यानमें रखना जरूरी है। सर अल्फ्रेड लायल की निम्नलिखित पंक्तियोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नाना और महादाजी ने इस महासंकटके समय मराठोंकी स्वतंत्रताको कैसे बचाया—"१७७६ में योरोपीय राजनीतिके एक मोड़ ने भारतकी स्थिति को यथार्थमें प्रभावित किया। १७७७ में एक फ्रांसीसी एजेन्ट पूना पहुंचा। उसने मराठोंके साथ सन्धि करनेका प्रस्ताव रखा, और बदलेमें अंग्रेजोंके विरुद्ध उन्हें फ्रांसीसी सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की।" उस समय मराठे अंग्रेजोंकी बराबरी कर सकते थे और लगभग शताब्दीके अन्त तक उनकी शक्ति इतनी ही बनी रही। १७८० की ग्रीष्म ऋतु तक भारतमें अंग्रेजोंकी हालत बहुत गिर चुकी थी। मराठोंका संगठन इतना जबर्दस्त था कि उसे हिलाना सम्भव न था। भारतकी राजधानीमें उन्होंने जो स्थिति प्राप्त कर ली थी उसके कारण वे अंग्रेजोंके तीनों अलग-अलग अहातोंको धमकानेमें समर्थ थे। रघुनाथराव को अंग्रेजों ने जो सहारा दिया वह एक विपत्तिजनक सौदा रहा और अन्तमें कलंकपूर्ण असफलता के सिवा उनके हाथ कुछ भी न लगा। हैदरअली मराठोंके साथ हो गया और अंग्रेजों के विरुद्ध नाना फड़नीस द्वारा की गई त्रि-राज्य-संधिमें निजामको भी शामिल कर लिया। सिन्धिया बड़ी तेजीके साथ मराठा संघका सबसे अधिक शक्तिशाली सर्दार होता जा रहा था। अगले वर्ष ऐडमिरल सफ़रेन, जो फ्रांसका सर्वश्रेष्ठ ऐडमिरल माना जाता है, एक बड़ा-सा जहाजी बेड़ा लेकर भारत पहुंचा। इसी बीच इंगलैंड और फ्रांसके बीच संधि हो जानेकी खबर आ जानेके कारण अंग्रेजोंकी स्थिति संभल गई और कष्टकारक मराठा-युद्धका अन्त हो गया। इस युद्धके दौरानमें अंग्रेजोंकी शक्तिमें कुछ भयावट परिवर्तन हुए।

३. दोनों नेताओंने प्रथम मराठा-युद्धको किस प्रकार जीता.

१७७३ में, जिसके बारेमें हम इस समय बात कर रहे हैं, रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के द्वारा भारतके समस्त ब्रिटिश अहाते कलकत्ते के संयुक्त नियंत्रणमें आ गये। वारेन हेस्टिंग्ज गवर्नर-जेनरल नियुक्त कर दिया गया और उसकी सहायता करनेके लिए चार सदस्योंकी एक कौंसिल बना दी गई। दोनोंके बीच खुलेआम विरोध पैदा हो गया जिसका मराठोंके भाग्य पर कुछ कम असर नहीं पड़ा। उसके कारण उस काल की घटनाओंका क्रम इतना गड़बड़ और जटिल हो गया है कि भारतीय मामलोंकी

यथार्थ स्थिति निर्धारित करने और उचित मानसिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए अंग्रेजी और मराठी दोनोंकी मौलिक सामग्रियों से सावधानीके साथ अध्ययन करनेकी आवश्यकता है। यदि नाना और महादाजी ने सहयोगसे काम न किया होता और अंग्रेजोंके साथ होनेवाले इस युद्धमें अपने सारे द्रव्य साधन न लगा दिये होते, तो मराठा शक्तिका अन्त इसी समय हो गया होता। हत पेशवा के उत्तराधिकारीका जन्म हो जाने के बाद, अंग्रेजोंके लिए दिखावे तकमें राघोबाको शरण देने और एक मर्यादा-हीन युद्ध छेड़नेका कोई कारण न था। अंग्रेजोंको चाहिए था कि वे राघोबा के साथ एक भगेड़ और हत्यारे जैसा व्यवहार करते और उसे अपने यहां शरण न देते। तो भी अमेरिका के उपनिवेश हाथसे निकल जानेके कारण वहां पर उन्हें बड़ा धक्का पहुंचा, और फ़्रांसके साथ अपने व्यवहारमें उनकी प्रतिष्ठा काफ़ी घट गई। वारेन हेस्टिंग्ज ने अपनी महत्वाकांक्षा और आक्रमणकारिता से भारतके अनेक सर्दारों और शासकोंको अपना वैरी बना लिया। सम्राट् अपनेको अंग्रेजोंके हाथमें सौंपनेके लिए तैयार न था; अवधके नवाब और बनारसके राजा के मन में भी उनकी सच्चाईके विषयमें कुछ अच्छी राय न थी। पूर्वमें निजाम, दक्षिणमें हैदर, पश्चिममें मराठों और मध्य भारतमें नागपुरके भोंसलोंने अंग्रेजोंके विरुद्ध एक संयुक्त युद्ध छेड़नेके लिए आपसमें समझौता करनेके हेतु धर्मके नाम पर एक गुप्त सन्धि पर हस्ताक्षर किये। फ़्रांसीसियों द्वारा किये गये नाविक एवं सैनिक सहायता-सम्बन्धी प्रस्ताव, जैसा पहले बताया जा चुका है, पूना में खुल्लमखुल्ला स्वीकार कर लिये गये थे, इसीलिए नानाकी सूक्ष्म बुद्धि एवं पूर्वदर्शिता ने परिस्थितिको अंग्रेजोंकी रुचियोंके लिए इतना प्रतिकूल बना दिया कि वारेन हेस्टिंग्ज के पास योरोपसे यह आदेश भेजा गया कि वह सारी लड़ाइयां बंद कर दे और भारतकी विभिन्न शक्तियोंके साथ शांतिपूर्ण सम्बन्धकी पुनः स्थापना करे। पहलेपहल १७८१ की शरद ऋतुमें सालबाई सन्धि (Treaty of Salbye) का प्रस्ताव रखा गया और अन्तमें फ़रवरी १७८३ में निश्चित रूपसे सन्धि हो गई। इसके द्वारा भारतमें पुनः शान्ति की स्थापना हुई, और मराठे अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाओं की पूर्ति करनेके लिए मुक्त हो गये। ऐसे नाजुक समयमें राष्ट्रीय शक्तियों को इस प्रकार संगठित करना, और अंग्रेजोंकी आक्रमणकारितासे मराठोंकी स्वतंत्रता की रक्षा करना, नाना फड़नीस की सर्वश्रेष्ठ कृतियां मानी जाती हैं। १८०० में नाना की मृत्यु हो जाने पर सर्वत्र यह अनुभव किया जाने लगा कि मराठा राजनीतिसे समस्त समभाव एवं बुद्धिका लोप हो गया, और भारतमें अंग्रेजोंकी प्रभुता की स्थापना करनेके लिए मैदान साफ़ हो गया।

मराठा राष्ट्रके प्रति महादाजी की सेवाएँ दूसरे ढंग की हैं। राजपूतोंकी विजय, सम्राट्के मामलोंकी व्यवस्था और पश्चिमी वैज्ञानिक ढंग पर सेना का निर्माण, उसकी सर्वश्रेष्ठ कृतियां कही जाती हैं। सप्तवर्षीय युद्धके जमानेमें लगातार चलनेवाले युद्धों से उसने जो मूल्यवान् अनुभव प्राप्त किया था, उससे उसको इस बातका विश्वास हो गया था कि मराठा राष्ट्रका भावी शत्रु एक पश्चिमी शक्ति होगी और इसीलिए जब तक मराठे अपनी परम्परागत युद्धप्रणालीको न बदलेंगे, तब तक उनके जीवनकी कोई आशा नहीं। साथ ही उसे दिल्लीमें सम्राट्के मामलों पर नियंत्रण रखने और राजपूत तथा अन्य कर देनेवाली रियासतोंके ऊपर, जिन्होंने अंग्रेजोंके साथ होनेवाले युद्धके दौरानमें अपनेको स्वतंत्र कर लिया था, मराठोंकी प्रभुता फिरसे स्थापित करनेकी पुरानी मराठा नीतिका पालन करना था। महादाजीके अवशिष्ट जीवनके बारह वर्ष इन्हीं तीन कामोंमें फंसे रहे और कई बार तो वह नष्ट होते-होते बच गया।

मैं इस बातकी विवेचना बादको करूंगा कि इस प्रकारके देदीप्यमान राज्य-विस्तार और भारतके समस्त भागोंमें मराठा सैनिकोंको मिलनेवाली इन सारी सफलताओंके रहते हुए भी १९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षोंमें मराठा शक्ति इतनी सरलता से चूर-चूर क्यों हो गई। परन्तु उस अन्तिम पतनका बीजारोपण, जैसा आगे चल कर दिखाया जायगा, अन्तिम राजनीतिज्ञ नाना फड़नीस के शासन-कालमें इसी समयके बीच हुआ जब प्रकट रूपमें उनका (मराठोंका) यश चारों ओर फैल रहा था। इस बातको तो सभी जानते हैं कि नाना और महादाजीके बीच हमेशा एक प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता और कुढ़न बनी रहती थी। उन दोनों चीजोंकी उत्पत्ति कैसे हुई और उसका रूप क्या था, इसका सावधानीके साथ अध्ययन कर लेना हमारे लिए बहुत जरूरी है।

४. दोनोंके बीच शारीरिक एवं प्रकृति-सम्बन्धी अन्तर.

चूंकि १८वीं शताब्दीके अन्तिम चतुर्थांशके मराठा इतिहासका निर्माण करने का उत्तरदायित्व व्यावहारिक रूपसे नाना और महादाजी के ऊपर है, और चूंकि वे दोनों प्रायः मिलकर काम करते थे और प्रायः दोनोंमें मतभेद भी हो जाता था, इसलिए मैं उनके चरित्र, सफल कृतियों और असफलताओंकी परीक्षा कुछ अधिक गहराईके साथ करनेकी आवश्यकता समझता हूं। दोनोंकी शारीरिक बनावटमें जितना अन्तर था उतना ही अन्तर दोनोंके स्वभावमें भी था। नाना जातिका ब्राह्मण था। उसका शरीर

लम्बा और दुबला, रंग पक्का, चेहरा लंबा, आंखें बड़ी और तेज, और नाक लम्बी थी। महादाजी जातिका क्षत्रिय था। उसका क़द मामूली, रंग सांवला, शरीर गठा और हृष्ट पुष्ट था। देखनेमें वह अपने समयका एक आदर्शभूत मराठा सैनिक जान पड़ता था। नाना स्वभावसे कठोर और गम्भीर, व्यवस्थित और परिश्रमी, संयमपूर्वक बातचीत और कार्य करनेवाला था। उसके पास कोई आसानीसे न पहुंच पाता था। वह न तो कभी कोई खेल खेलता और न ही चार आदमियोंके साथ बैठकर मनबहलाव करता था। उसे किसीने हंसते हुए नहीं देखा। स्वास्थ्यसे भी वह बड़ा कमजोर था और जरा में उसकी तबियत बिगड़ जाती थी। दूसरी ओर महादाजी स्वभावसे हंसमुख और मसखरा था। उसके पास हर समय आदमियों की भीड़ लगी रहती थी। वह सबके साथ बात-चीत और हंसी मजाक करता था और सभाके बीच बैठकर उसे बड़ा मजा आता था। वह सलाह तो सबकी लेता, पर हमेशा इतना सतर्क रहता कि किसीको सही बात न मालूम हो पाती और दूसरे लोग उसके असली इरादों या योजनाओंकी थाह न पा सकते थे। वास्तवमें वह नाना का बिल्कुल उल्टा था। महादाजीके विषय में यह वर्णन मिलता है कि वह एक बड़े से तम्बूमें क्लर्कों और अनुचरों, सहायकों और राजदूतोंके बीच बैठा करता था। वह सबसे खुल्लमखुल्ला प्रश्न करता, आये हुए पत्रों और समाचारोंको सुनता और जानेवाले पत्रोंको लिखाता और साथ ही साथ आज्ञाएं जारी करता जाता था। नाना अक्सर महादाजी को अपने विचारों को गुप्त न रखने और राज्यके महत्वपूर्ण मामलों के ऊपर खुली सभा में वादविवाद करने के लिए घुड़का करता था। लोग, यहां तक कि नजदीकी रिश्तेदार और खास नौकर तक नानाके पास जाते डरते थे। वह दंड देनेमें कठोर था। एक समयमें एक ही व्यक्ति से मिलता और बातचीत करता था। इस नियमका उल्लंघन केवल उस समय होता था जबकि खुल्लमखुल्ला वादविवाद करने या सम्मेलन बुलानेका पहले से ही प्रबन्ध कर लिया जाता था। यहां तक कि नाना का परम मित्र हरीपन्त फड़के भी उसके पास कोई प्रस्ताव या सुझाव ले जाने के पूर्व उसके मनकी लता का पता लगा लेता था। सामान्य घटना की किसी विशेष बातके सम्बन्धमें दोनोंका अन्तर सबसे अधिक दिखाई दे जाता था। बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर महादाजी शान्त और निश्चल रहता था। वह अपने अन्तरतम का उद्वेग (घबराहट) किसी समय भी प्रकट न होने देता था। जब कठोर विपदाओं अथवा उसकी विशाल सेना के दशम भाग के नाश का समाचार उसके पास पहुंचा, तब भी वह हमेशा की तरह हंसी-मजाक करता रहा, मानों कुछ

हुआ ही न हो। इस निर्भयता एवं शांत निर्णयके कारण वह ऐसी बड़ी-बड़ी मुसीबतों और दुःखों को सफलतापूर्वक झेल ले जाता था जो किसी साधारण पुरुषके उत्साह को चूर-चूर कर देते। नाना डरपोक और जल्दी से उत्तेजित हो जानेवाला था। जब कभी ऐसी समस्याएँ आ जातीं जिनका हल तुरन्त निकालना होता था तो प्रायः वह अपनी व्यग्रता को छिपानेमें असमर्थ रहता था। पहले सखाराम बापू और बादको हरीपंत फडके नाना के व्याकुल हृदयको शान्त करनेमें सहायता करते और खतरनाक स्थितियों में उसे उत्साहित किया करते थे। पर महादाजीके विपरीत, नाना साधारणतः अपने व्यवहारमें तर्कपूर्ण एवं न्यायशील रहता था। वह किसीके साथ बुराई या छल-कपट करने से डरता था, अपने बचनोंका पालन करनेमें दृढ़ और समय का पाबंद था, और हर एकके साथ उदारता दिखानेके लिए तैयार न रहता था। आमतौर पर वह परिणामके लिए अधीर हो उठता था। उसमें महादाजी का आत्म-विश्वास न था, परन्तु वह सबसे अलग-अलग सलाह लेता और तब स्वयं अपने विचार-पूर्ण निर्णयके अनुसार कार्य करता था। दूसरी ओर, महादाजी धैर्यशील और साहसी था, विपत्तिके समय उसके चेहरे पर शिकन न आने पाती थी। वह प्रयत्नशील और विचारवान् था, पर बहुधा क्रोधसे उत्तेजित हो उठता था। वह दूसरोंकी कमज़ोरियों को ढूंढ निकालने और उनसे अधिक से अधिक लाभ उठाने को हमेशा तयार रहता था, जैसा कि हम नाना, राघोबा, सखाराम बापू या तुकोजी और अहिल्याबाई होल्कर के प्रति होनेवाले उसके व्यवहार से जान सकते हैं। वह सभीके साथ मित्रवत् भाव दिखाता, पर अपनी बातको पूरा करने या ग़लत काम करनेमें किसी प्रकार की शंका न करता, बशर्ते कि उसका अपना कोई मतलब सिद्ध होता हुआ दिखाई पड़ता हो।

वह एक महान् राजनीतिज्ञ कहा जा सकता है, जिसमें उसके शत्रु तक विश्वास रखते थे। नाना के पास बालाजीराव या माधवराव जैसा उदार हृदय न था और न ही उनकी तरह उसे कोई प्यार करता था। वह तो कठोरता के साथ काम लेना भर जानता था। तब वह भला दूसरों का प्रेमपात्र बनने की आशा ही कैसे कर सकता था ? इतना ही नहीं, उसे तो प्रायः अपने मारे जानेका खतरा लगा रहता था, और उसने स्वयं ऐसे कोई बीस मौक़े बताये हैं जबकि उसको मारनेका प्रयास किया गया, पर दैवयोगसे उसका बाल बांका न हुआ। पेशवाओंके साथ पहले कभी ऐसी कोई बात नहीं हुई। गुप्तरूपसे हर बातका पता लगानेकी कठोर प्रणालीके कारण नाना के लिए मित्रों और शत्रुओं को पहिचानना असम्भव हो गया था। इसीलिए घासीराम कोतवाल

या बलवन्तराव नागनाथ जैसे उसके विश्वसनीय अनुचर, जिनके ऊपर वह भरोसा करता था, अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति करनेमें नहीं चूकते थे। सचमुच नारायणराव की हत्या के बाद आठ या दस साल तक पूना के वातावरणमें अनिश्चय एवं अविश्वास इतनी अधिक मात्रा में बने रहे कि वह उन लोगोंके लिए भी बिल्कुल असह्य हो उठा जिनका राजकाजके मामलों से कोई सरोकार न था। लोग अपनी जान और मालको बिल्कुल अरक्षित समझने लगे।

नाना में सैनिक नेतृत्व का अभाव था, जबकि महादाजी का मन लिखापढ़ीके काममें या हिसाब-किताब रखने और छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान देने में न लगता था। नाना इन सभी में दक्ष था। वास्तवमें, नाना के काग़ज़-पत्र उसके समयमें इस तरह से क्रमबद्ध करके रखने पड़ते थे कि उन्हें देखकर परिश्रम और यथार्थता के लिए न थकनेवाली उसकी कार्यक्षमता का आभास मिल जाता था। स्वयं नाना के हाथका लिखा हुआ एक लम्बा खण्डित काग़ज़ विद्यमान है जिसे के. एस. «पत्रेन यादी» में मुद्रित किया गया है। इसमें फ़रवरी १७८३ में युवक पेशवा के विवाह-महोत्सवके सम्बन्धमें अधूरी आज्ञाओं और प्रबन्धों का वर्णन दिया है। उसे देखकर यह पता चलता है कि नाना छोटी-छोटी बातों तक के लिए कितना सचेत रहता था। जैसे उदाहरणके लिए वह खानेकी उन तमाम चीजों और उनके क्रमका ज़िक्र करता है जो हर दिन अलग-अलग मौक़ोंके लिए तैयार करानी थीं। साथ ही वह इस सम्बन्धमें भी छोटे से छोटा आदेश देता है कि वे चीजें कैसे रखी जायगीं और कैसे परोसी जायगीं। महादाजी में इतनी यथार्थता न थी, और उसके नीचे काम करनेवाले निःशंक कर्मचारी और नौकर अक्सर उसे धोखा दे देते थे। तब वह उनसे निर्दयता के साथ बदला लेने पर उतारू हो जाता था। यद्यपि प्रारम्भमें ये विभिन्नताएँ केवल मात्र स्वभावकी थीं, तथापि आगे चलकर उन्होंने जोर पकड़ लिया और कुछ समयके लिए हिन्दुस्तान भर में मराठा राजनीति पर उनका प्रभाव पड़ा। नाना कूटनीतिज्ञता में कुशल था और महादाजी सैनिक मामलों में। जब दोनों ने पारस्परिक सहयोगसे काम किया और एक दूसरेके विश्वासपात्र बने रहे, तब उन्होंने बड़े-बड़े काम कर डाले; पर वे प्रायः एक दूसरेसे जलने लगते थे और उस दशामें मनमाना कामकर बैठते थे जिसका असर मराठोंके प्रारब्ध के ऊपर बुरा पड़ता था। नाना ने अधिकांश अपना ध्यान दक्षिण में सीमित रखा और महादाजी ने उत्तर में। दस वर्षसे अधिक समय तक वे नहीं मिले और व्यक्तिगत रूपसे विचारोंका कोई आदान-प्रदान नहीं किया। उनके बीच समय-समय पर पत्र-व्यव-

सार चलता रहता था; पर सब कुछ होते हुए भी, लिखित बातचीत, जिसमें अक्सर झुंझलाहट पैदा करने वाली, शाब्दिक और निरन्तर चलनेवाली व्याख्या की मांग होती थी, एक विशाल और छितरे हुए राज्यके बढ़ते हुए समस्त चिन्त्य विषयों की व्यवस्था न कर सकती थी, और उसके फलस्वरूप सारे काम करनेवालों को कुढ़न और निराशा होती थी। उन २० वर्षोंमें जबकि रंगमंच के प्रधान अभिनेताओंके रूपमें ये दोनों व्यक्ति मराठा मामलों का संचालन करते थ, विभिन्न व्यक्तियों और दलोंके बीच जो लिखा-पढ़ी हुई, उसमें से सैंकड़ों पत्र और काग़ज़ात मुद्रित किये गये हैं। उन्हे देखकर वह असमानता स्पष्ट हो जाती है जिसकी ओर मैं ऊपर संकेत कर चुका हूँ।

५. नाना की नीतिके दोष.

व्यक्तिगत असमानता इस तरहसे स्पष्ट हो जाने पर, अब मैं उन बातोंकी विवेचना करना आरम्भ करूंगा जिन्हें मैं नाना की नीतिके दोष समझता हूँ।

(अ) अनुरंजनात्मक प्रवृत्तिका अभाव.

नाना ने उस मंत्रिमंडलके एक सदस्यके रूपमें अपना कार्य आरम्भ किया जो «बारा-भाइयों» या "बारह भाइयों" की सभा कहलाता था। आरम्भमें अनुभवी सखाराम बापू ही उसका एकमात्र मुख्य कार्यकर्ता था। नाना का चचेरा भाई मरोबा त्रिम्बकराव पिट्ठे, हरीपन्त फड़के, महादाजी सिन्धिया, तुकोजी होल्कर, भवनराव प्रतिनिधि, मालोजी घोरपदे, (सच तो यह है कि उस समयके अधिकांश प्रमुख व्यक्ति) इस सभा के सदस्य समझे जाते थे। यह सभा जिन आदर्शोंके आधार पर बनाई गई थी, वे यदि क़ायम रखे जाते तो वह एक शक्तिशाली और स्थायी फल देनेवाली संस्था हो सकती थी। शायद राष्ट्रने नाना के व्यक्तिगत शासनके बजाय एक मजबूत और बुद्धिमान् मंत्रिमंडलके शासनको अधिक तत्परता के साथ स्वीकार कर लिया होता। एक तानाशाहके व्यक्तिगत शासनके स्थान पर वैधानिक-शासन-प्रणाली का प्रयोग करनेके लिए सचमुच यह एक अपूर्व अवसर था। नाना को हेस्टिंग्ज की कलकत्ता कौंसिल, और हॉर्नबी (Hornby) की बम्बई कौंसिल का, पूरा-पूरा ज्ञान था जहां सारे मामले बहुमत सिद्धान्तके आधार पर तय होते थे। छत्रपति और पेशवा दोनों

ही असफल सिद्ध हो चुके थे, इसलिए अपने अतीतके अनुभव एवं पूर्वदर्शिता के अनुसार नाना को मनमें यह निश्चय कर लेना चाहिए था कि मराठा प्रशासनके लिए «बारा भाई» कौंसिलको जारी रखनेमें ही बुद्धिमानी की बात होगी। इस दिशा में क़दम उठाने और अयोग्य सदस्योंके स्थान पर अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को नियुक्त करनेके बजाय, उसने धीरे-धीरे एक-एक करके सारे सदस्य हटा दिये, और सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथमें केन्द्रित कर ली। उसके दो सर्वोत्कृष्ट साथी सखाराम बापू और मरोबा फड़नीस अपने पदों से अलग कर दिये गये और राजद्रोहका अपराध लगाकर बंदी बना लिये गये। अनुरंजनात्मक प्रवृत्ति ऐसे विषयों के लिए अत्यधिक आवश्यक थी। उससे ओतप्रोत होते हुए भी सखाराम बापू को परिस्थितियों के वश होकर सभी दलोंके साथ, यहां तक कि युद्ध कालमें शत्रुओं के साथ तक, अलग-अलग व्यवहार करनेके लिए बाध्य होना पड़ता था, जैसे उदाहरणके लिए राघोबा निज़ाम, हैदरअली और अंग्रेज़ोंके साथ। नाना ने द्वैध आचरण या राजद्रोहके रूपमें इसका तिरस्कार किया, और उसे बन्दी करा लिया। यदि बापू और मरोबा दोनोंको हटाना ज़रूरी ही था तो कमसे कम उनकी जगह उसे नये सदस्य रख लेने चाहिए थे। पर दो वर्षों बाद तो «बारा-भाई» का नाम तक बाकी नहीं दिखाई पड़ता है। उन दिनों राजद्रोह का एक विशेष अर्थ लगाया जाता था। निश्चय ही नारायणरावको हत्या राघोबा ने करवाई थी, तो भी पेशवा-परिवार में वही अकेला जीवित बचा था, और सारे दोषोंके रहते भी, अतीतमें उसके द्वारा की गई सेवाओंके लिए बहुतसे लोगोंके मनमें उसके प्रति एक प्रकारका आदर भाव था। कुछ हृदयहीन आत्माओं को छोड़कर, जो स्वर्गीय पेशवा के हत्यारोंको कठोर दंड दिलाने पर उतारू थे, महाराष्ट्रमें जनमतका एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा था जो उस घटना को अधिक सौम्यभाव से देखता और अनुरंजनात्मक नीतिका समर्थन करता था। बहुतसे लोगोंको इससे कोई मतलब न था कि उनके ऊपर राघोबा शासन करे या नवजात शिशु; वे निश्चय ही यह चाहते थे कि राघोबा को उसके पदके अनुरूप सुखके सारे साधन उपलब्ध हों। अपने आय साधनों पर छोड़ दिये जाने पर, और परिणामोंकी चिन्ता किये बिना, राघोबा ने सर्दारोंको बहका कर, अपना एक मज़बूत दल बना लिया। उसने ऐसे लोगोंको विशेषरूपसे अपनी तरफ़ मिला लिया जो पहले सचाईके साथ उसकी सेवा कर चुके थे। इन परिस्थितियोंमें सखाराम बापू ने विपत्तिजनक युद्धको रोकने और समझौता करनेकी

नीति द्वारा साधारण प्रशासनकी पुन: स्थापना करनेकी भरसक चेष्टा की। ऐसा करने में वह इस बात पर ज़ोर देता रहा कि हठी पेशवा के प्रति कठोर उपाय न बर्ते जायँ। महादाजी सिंधिया और दूसरे लोग और सखाराम बापू तक राघोबा के विरुद्ध कठोर उपायोंका प्रयोग उचित न समझते थे। इसीलिए, ये लोग नाना को देशद्रोही और दंडके भागी जान पड़ते थे। महादाजीके मामलों में नाना असहाय था, अन्यथा यदि उसके पास साधन होते, तो उसने उसे उसी तरहसे दंड दिया होता जैसे कि उसने सखाराम बापू को दिया था। प्रत्यक्ष रूपसे यह नाना की राजनीतिज्ञता का दोष था। ऐसे मामलोंमें व्यावहारिक बुद्धिसे काम लेकर क्षमा कर देना ही अच्छा होता है। पर नाना दंड देनेकी विषियोंमें निष्ठुर था। जब नारायणरावके पुत्र पैदा हो गया तब राघोबाके सारे बहाने खतम हो गये। उस समय उसे एक भगेड़ू के रूपमें भाग जाने देना चाहिए था। पर ऐसा न करके उसका लगातार पीछा किया गया और इच्छा न रहते हुए भी उसे भागकर अंग्रेजोंकी शरणमें जाना पड़ा, जिसके कारण युद्ध छिड़ा, जिसमें मराठोंकी प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा। यहां पर तो बस इतना ही काफ़ी था कि उसकी शक्ति चूर-चूर कर दी जाती, जैसा कि १८५७ के विद्रोहके मामलेमें "रानीकी घोषणा" ने किया था। यदि «बारा-भाई» ने एक घोषणा जारी करके लोगोंसे अपनी वृत्तियोंमें वापस लौट आनेके लिए कहा होता और भगेड़ू राघोबा के साथ सहानुभूति रखने के विरुद्ध उन्हें चेतावनी दी होती तो सम्भवत: सारे मामले चुपचाप तय हो जाते और राघोबा को बाहर कोई समर्थन न मिलता। बहुतसे सरदारों और प्रभावशाली नेताओंने अपनी व्यक्तिगत रुचिको ध्यान में रखते हुए जब जैसी आवश्यकता हुई तब उस तरह से काम किया, और जिस पक्षसे उन्हें सबसे अधिक लाभ होता हुआ जान पड़ा उसीकी ओर हो गये। दूसरी ओर नाना ने गुप्तचरोंकी सहायता से राघोबा के एक-एक अनुयायीकी सारी बातोंका पता लगा लिया, उसकी सम्पत्ति और मकान जब्त कर लिये, और उनके घरवालों तथा रिश्तेदारों को सजाएँ दीं, जिसके कारण लोग बरसोंके लिए इस बुरी तरहसे भड़क उठे कि साधारण प्रशासनका काम एक तरहसे रुक गया। शायद बापूकी अनुरंजनात्मक नीति यहां पर अधिक उपयोगी सिद्ध हुई होती। उसने पेशवा के परिवारमें स्नेह भावकी पुन: स्थापना कर दी होती, और स्थायी रूपसे किसी प्रकार का मनोमालिन्य शेष न रह गया होता। सम्भवत: बाजीराव द्वितीय का रुख, बड़ा होते-होते, न केवल नाना के प्रति वरन् और सभीके प्रति, जिनसे बादको उसने बदला लेनेकी चेष्टा की, कुछ और ही हुआ होता।

इतिहासके छात्रोंको नाना की नीतिके इस अंगकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

(ब) उत्तरमें अंग्रेज़ोंके दबाव को न समझ पाना.

सालबाई की सन्धि करवाने में महादाजी ने जो प्रधानता पा ली उससे नाना को बड़ी कुढ़न हुई। वह इस बातको न समझ सका कि महादाजी उत्तर क्यों चला गया और दक्षिणकी लड़ाई का भार दूसरोंके ऊपर छोड़कर दूर देश मालवामें उसने अपने को क्यो जमा लिया। सैनिक मामलोंसे परिचित न होनेके कारण नाना इस बातका नहीं समझ सका कि भारतीय राजनीतिका केन्द्र तेज़ीके साथ दक्षिणसे हट कर उत्तर में स्थापित हो रहा था। नाना अपने एजेन्टों और गुप्तचरोंके ज़रिये सैकड़ों मील दूर पर होनेवाले आन्दोलनों और घटनाओंका रत्ती-रत्ती पता लगा लेनेमें तो चतुर था, पर वह उस भारी सैनिक दबावको न समझ सका, जिसे बढ़ती हुई अंग्रेज़ी शक्ति, उत्तर और पूर्वकी ओर भारतके भविष्य पर डालने जा रही थी। अंग्रेज़ों ने वहां पर धीरे-धीरे अपनी स्थिति दृढ़ कर ली ताकि वे और आगे बढ़ सकें और उपयुक्त अवसर पाते ही मराठा शक्ति को अपने जालमें फँसा सकें। भारतीयोंमें केवल महादाजी ही ऐसा था जिसने अंग्रेज़ों की सैनिक तैयारियोंके व्यक्तिगत एवं व्यावहारिक अनुभव से इस दबावको समझ लिया। नाना बराबर महादाजीसे दक्षिण लौट आनेका हठ कर रहा था, केवल इसलिए नहीं कि वह दक्खिनमें राष्ट्रीय शत्रुओंके विरुद्ध युद्ध करे, वरन् मुख्यरूपसे इसलिए कि वह स्वतंत्रतापूर्वक कोई क़दम न उठाने पाये। महादाजी ने यमुना नदीसे बरहानपुर और वहांसे सूरत तक अंग्रेज़ोंकी विजयपताका फहराती हुई जेनरल गोडार्ड (General Goddard) की प्रसिद्ध सेना के मार्च को बड़े ध्यानसे देखा था। अंग्रेज़ोंकी विजयने बांसके टुकड़ेकी नाई पूरे उत्तरी भारत के दो बराबर-बराबर खण्ड कर दिये। तेलीगांव (Talegaum) की लड़ाईमें अंग्रेज़ी बन्दूकोंने जो प्रलय मचा दिया था और बेसीन तथा थाना (Thana) के ऊपर अधिकार करके अंग्रेज लोग पश्चिमी समुद्रतट पर जिस आरामके साथ शान्तिपूर्वक अपनी स्थितिको दृढ़ करने लगे, उसका महादाजीके ऊपर बड़ा गहरा असर पड़ा। शक्तिसंतुलन कायम करनेके विचारसे उसने अपनेको दक्षिणसे बिल्कुल हटा लिया। वह यह जानता था कि पूना दर्बारमें, जहां बम्बईकी सरकारका ज़ोर दुर्निवार था, अंग्रेज़ोंके साथ सौदा करनेकी अपेक्षा यदि वह उत्तरमें उनके साथ व्यवहार करे तो उनके साथ संधि करने के लिए सोच-विचारके बाद वह जो क़दम उठाने जा रहा था, उसमें वह सर्वोत्कृष्ट शर्तें

प्राप्त कर सकता था। विषयके ऊपर होनेवाले पर्याप्त पत्रव्यवहार से, जो इस समय प्राप्य है, यह पता लगता है कि महादाजी ने इस बात पर जोर दिया कि यदि वह अपनी फ़ौजोंको दक्षिणमें ले आया होता तो अंग्रेजोंने एक ही चोटमें सम्राट्को अपने अधिकारमें कर लिया होता और पूनामें मराठों के सामने मनमानी शर्तें रखी होतीं। मराठोंकी इस प्रकारकी महा-विपत्ति, जिसे महादाजी बचाना चाहता था, नाना की समझसे बाहरकी चीज़ थी। इसके बाद हमेशा महादाजी जो भी योजना आरम्भ करता या जिस किसी चालका सुझाव रखता उसीमें नाना को उसकी ओर से केन्द्रीय मराठा सरकार के विरुद्ध राजद्रोह का सन्देह होता। उसने अपने एजेन्टोंको खुल्लमखुल्ला महादाजी का विरोध करनेका आदेश दिया। दूसरी ओर महादाजीने वारेन हेस्टिंग्ज के प्रति समझौता करने की नीतिका अनुसरण किया, और बंगाल, अवध, मध्यभारत तथा दिल्ली में अंग्रेजों के अभिप्रायोंको विफल करने के लिए अप्रत्यक्षरूपसे पूरी-पूरी कोशिश की। ऐसा करनेके लिए उसे बहुत दिनों तक मथुरा और ग्वालियरके बीच टिकना पड़ा, ताकि वह उनके ऊपर प्रत्यक्ष और तुरन्त रोक लगा सके। वास्तवमें निश्चितरूपसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नाना उत्तरकी स्थितिको नहीं समझा, और नहीं इस बातका अनुभव कर पाया कि चतुर कूटनीतिकी कितनी ही अधिक मात्रा उतनी प्रभावशाली नहीं हो सकती जितनी कि उसके साथ-साथ सैनिक बल। ज्यादा अच्छा होता कि वह स्वयं वहां जाता और उस भीषण संघर्षमें निहित खतरों और जिम्मेदारियोंमें महादाजी का हाथ बटाता। परन्तु स्वभावसे शक्की होनेके कारण, नाना हमेशा अपनी जान के लिए डरता था, और आसानीसे महादाजी के शिविरमें जानेका साहस न करता था।

यदि नाना बालक पेशवा को उत्तर ले गया होता, और अपने निजी व्यक्तित्वकी पृष्ठभूमि में रखकर, उसने महादाजीको मुक्तहस्त होकर काम करने दिया होता, तो उस समय की मराठा राजनीतिने अमित बल प्राप्त कर लिया होता। यदि होनहार बालक पेशवा को १७८७ या ८८ के लगभग, जब वह चौदह वर्ष का था, उत्तरी प्रदेशों को देखनेका मौक़ा दिया गया होता तो वह अपनी भावी जीवनवृत्तिके लिए मूल्यवान् ढंगसे प्रशिक्षित हो जाता। पेशवाओंके परिवारमें सभी लोग बारह वर्षके लगभग क्रियाशील जीवन आरम्भ करते थे और इस प्रकारका व्यावहारिक अनुभव उस जाति के लिए सबसे अधिक स्वस्थ और आवश्यक सामग्री थी जिसके ऊपर मराठा राज्य बना हुआ था। नानाको चाहिए था कि बाहरी दुनिया को यह देखनेका मौक़ा देता कि पेशवाओंके घरानेमें एक कमसिन स्वामी धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था। ऐसा करनेसे

क्षुद्र आन्तरिक द्वेष भाव और अनाज्ञाकारिता की प्रवृत्ति, जो इतनी अनियंत्रित थी, रोक कर रखी जा सकती थी। अनेक उलझन पैदा करनेवाले मसले और आवश्यक राजनीतिके विषय, जैसे महादाजी और अलीबहादुर के झगड़े, टीपूके साथ युद्ध, होल्करों के झगड़ालू मामले और इसी तरहके न जाने कितने मामले, व्यक्तिगत रूपसे वाद-विवाद करके और आपसमें समझौता करके आसानीके साथ वहींके वहीं तय किये जा सकते थे। खुद नाना और महादाजीके बीच कई ऐसी ग़लतफ़हमियाँ थीं, जिनसे मुद्रित रिकार्डोंके पोथेके पोथे तैयार हो गये हैं। ये ग़लतफ़हमियां प्रत्यक्षरूपसे दूरकी जा सकती थीं। नाना स्वभावसे शक्की था, और उसे पेशवाकी जान हर समय खतरेमें जान पड़ती थी। इसी भयसे वह (पेशवा) किसी भी दिशा में पूना से लगभग सौ मील की दूरीसे आगे की यात्रा न कर पाया। इक्कीस वर्ष की आयुमें जिस समय पेशवा की मृत्यु हुई, उसके पहले वह एक तरहसे सिर्फ़ दो जगहें देख पाया था, एक वाई और दूसरी नासिक। यदि वह बम्बई तक भी हो आया होता, जिसके लिए अंग्रेजों ने इतने मित्रभावसे सुझाव दिया था तो उसके लिए अत्यधिक शिक्षाप्रद होता। परन्तु नाना को बालक पेशवाके प्राणोंकी इतनी जबर्दस्त चिन्ता लगी रहती थी कि वह उसे उस प्रकारकी शिक्षा पाने ही न देता था जिसकी उसके लिए सबसे अधिक आवश्यकता थी। तो भी समयसे पूर्व पेशवा की मृत्यु हो जानेके कारण, इस तरहका वाद-विवाद अब व्यर्थ सा जान पड़ता है।

६. महादाजीके गड़बड़ मामले.

नाना फड़नीसके शासनप्रबन्धकी आलोचना करनेमें में महादाजी सिन्धिया की अन्तर्वर्ती योग्यता के विषयमें भी मिथ्या धारणा नहीं पैदा करना चाहता; क्योंकि जैसा मैं कई बार कह चुका हूं, वह भी कुप्रबन्ध और अव्यवस्था के दोषसे मुक्त न था। ये दोनों बातें तो मराठों के लिए स्वाभाविक सी ही जान पड़ती हैं। यहां पर समकालीन प्रमाणोंसे प्रमाणित एक आदर्शभूत उदाहरण है, जिससे पता चलता है कि महादाजी के मामलोंमें कितनी अधिक दुर्व्यवस्था और गड़बड़ थी। नाना फड़नीसके एक गुमाश्ते ने, जिसका नाम सदाशिव दिनकर था, १७८८ के लगभग मथुरा के निकट महादाजी सिन्धिया के शिविर से, सब बातोंका ठीक-ठीक निरीक्षण कर लेनेके उपरान्त उसके पास पूना में निम्नलिखित समाचार भेजा:

"किसी भी ठोस कामके लिए तीन चीजें जरूरी हैं—नियमित आय, स्थिर व्यय

और समभाव। महादाजी को अभी-अभी दस लाख रुपये मिले हैं, पर वह रुपया जिस तरह से खर्च हुआ है उसे जानकर आपको आश्चर्य होगा। जहां तक उसके सैनिक व्यय का सम्बन्ध है, दक्षिणसे आई हुई मराठा फ़ौजों की दुर्गति हो रही है। शब्दोंमें उसका वर्णन करना मेरी सामर्थ्यके बाहर है। अपने घोड़े बेचकर भी वे अपने कर्ज चुका पानेमें असमर्थ हैं। एक अश्वारोहीको मुश्किल से १० रु० महीना मिलता है। भला वह उतनेमें कैसे गुज़र कर सकता है? महादाजीने अपनी पैदल सेना के नये रेजीमेंटों पर बड़ा रुपया खर्च कर दिया है, पर उसके प्रमुख मराठा सहायक, जिन्होंने गोहाद और ग्वालियर को जीतनेके लिए अपनी जान की बाज़ी लगा दी थी, अपार दारिद्रय भोग चुके हैं। महादाजी इस बातकी पूछताछ कभी नहीं करता कि पैदल सेनाके रेजीमेंटोंकी नामावलीमें काग़ज़के ऊपर जितने नाम लिखे हैं वे वास्तवमें उपस्थित हैं भी या नहीं। वहां न तो किसी तरहका निरीक्षण होता है और न हाज़िरी। उनके ऊपर खर्च किया जानेवाला अपार धन उन व्यक्तियोंके हाथों तक नहीं पहुंचता जिन्हें वह मिलना चाहिए, वरन् अच्छे बुरे, का ध्यान न रखनेवाले बीचके लोग उस रुपयेसे अपनी जेब गरम करते हैं। सब बातोंमें बेहद गड़बड़ है और रुपये पैसेका दुरुपयोग हो रहा है। तोपखानेका प्रबन्ध भी बिल्कुल ख़राब है। दक्षिणसे आये हुए सब लोग नौकरी छोड़कर वापस चले गये हैं। व्यर्थ के कामोंमें अथाह धन बहाया गया है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि महादाजीकी आमदनी कितनी थोड़ी है। इसके ऊपर लम्बी-लम्बी रक़में महाजनोंसे उधार ली गई हैं, और वे लोग अपना रुपया वापस मांग रहे हैं। आबाजी नायक (Abaji Naik) तीस लाख रुपया मांगता है। दक्खिनी हिन्दू गुजराती, रंगदे (मारवाड़ी लोग) और इसी तरहके न जाने कितने महाजनोंके तगादें जोर पकड़ रहे हैं, और वे महादाजीको परेशान करते रहते हैं। वह अगले दो वर्षों की अपेक्षित (prospective) आय को पहले ही गिरवीं कर चुका है। उसके पास अपना जो कुछ था वह सब भी खतम हो चुका है। कहते हैं, उसके पास लगभग पचीस लाख रुपया था। पिछले चार वर्षों में अतिवृष्टि के कारण देशमें अकाल पड़ रहा है। किसानोंसे अधिक से अधिक धन वसूल करनेके लिए महादाजीके एक राजस्व संग्रहकर्ता को अमानुषिक उपायोंका सहारा लेना पड़ा। उसने समान रूपसे अमीर और ग़रीब दोनोंके शरीरोंमें चिथड़े बांध दिये और ऊपर से तेल डालकर आग लगा दी। इस प्रकार के शारीरिक क्लेशोंके रहते हुए देश की दशा क्या होगी, इसकी कल्पना आप सरलता से कर सकते हैं। लोग जमीन छोड़ कर भाग गये हैं, खेती बन्द हो गई है, जो

कुछ थोड़ा बहुत पैदा हुआ था उसे पुराने हक़दार लोग, जो महादाजी के पूर्व अधिकारी थे, लेकर चले गये। दुर्भिक्षके कारण कुछ गांव निर्जन हो गये हैं; एक मकानमें बीस लाशें मिलीं जिन्हें वहांसे हटानेवाला तक कोई न था; यह हालत है चम्बल और काश्मीरके बीचके देश की। आदमियोंकी भीड़ की भीड़ खानेकी खोजमें एक जगहसे दूसरी जगह जाती हुई दिखाई देती हैं। दुर्भिक्ष और लूटमार ने उनकी यातना को बढ़ा दिया है। ये दो दुःख तो थे ही। उनमें एक तीसरा दुःख और जुड़ गया है, वह है —महादाजी के टैक्स कलेक्टर लोग, क्योंकि ये कलक्टर अनुचित मांग करनेमें किसी तरहसे कम नहीं हैं। पर लाख कोशिशें करने पर भी वे नक़द रुपया नहीं जमा कर सके। जहांतक विभिन्न रियासतोंके सालाना कर का सम्बन्ध है, जयपुरने क़ाग़ज़ पर इक्कीस लाख देना मंजूर किया था। यह एक लम्बी रक़म दिखाई पड़ती है, पर केवल दो लाख नक़द दिया गया था और दो लाख और धीरे-धीरे जवाहरात वग़ैरह के रूपमें चुकाया गया था; बाक़ी के लिए यह तय हुआ कि वह रियासत की प्रजा से वसूल कर लिया जायगा, और उस कामके लिए २,००० सैनिक जयपुर राज्यके अन्दर भेजे गये हैं। यह तो सिर्फ़ एक राज्यकी दशा है। बहुतसे और राज्य हैं जो क़ाबूमें आ ही नहीं रहे हैं। महादाजीको सम्राट् और उसकी सेनाओंका सारा खर्च अपनी जेबसे करना पड़ा। वह जितना उधार ले सकता था उतना ले चुका है, और जो कुछ अपने पास बचाया था, सब खर्च कर चुका है। यह तो वही जाने कि उसके पास और कुछ नक़द है या नहीं; वह खेत उसी को देता है जो लगान के लिए सबसे ऊंची बोली बोले। दक्खिनका कोई भी आदमी इस तरहसे खेत लेनेके लिए राजी नहीं है। महादाजी एक ऐसे महाजनकी खोजमें है जो उसकी (महादाजी की) ओरसे जोतने बोनेके लिए दिये गये खेतसे वसूल की गई रक़ममें से हर महीने सम्राट्को रुपया देनेका वचन दे। इस समय सारे महाजनोंने असहाय दशा में होनेके कारण इस व्यावहारिक कार्य को अपने सिर लेनेसे इन्कार कर दिया है। मैं जानता हूं कि मैं क्या लिख रहा हूं; यह है आवरण रहित सत्य। स्वस्थ शासन प्रबन्ध वह है जिसमें स्वामीको कभी अभाव नहीं रहता, सेना सन्तुष्ट होती है, और रैयत सुखी रहती है। यदि ये तीनों शर्तें नहीं हैं तो उनकी देखभाल ईश्वर के ही हाथ है। उसकी इच्छा के आगे किसीका वश नहीं।"

यदि अपने विजयी दिनोंमें हमारे सर्वोत्कृष्ट एवं सबसे अधिक प्रसिद्ध सर्दारकी आर्थिक दशा इस तरह की थी, तो अपने पतनके युगमें मराठा शासन की क्या हालत थी, इसकी कल्पना हम आसानीसे कर सकते हैं। जैसा मैं कह चुका हूं, पहलेके चार

पेशवाओंके ६० वर्षोंके शासनकाल में दूसरी बातें थीं। उपर्युक्त वर्णनसे सिर्फ़ यह अन्दाज़ मिल जाता है कि मराठा राज्य तेज़ीसे पतनकी ओर बढ़ रहा था। इस अभियोगके सम्बन्धमें कि महादाजी अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए स्वतंत्र होनेकी चेष्टा कर रहा था, जिससे मराठा राज्यकी रुचियोंको हानि पहुंच रही थी, मुझे ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला जिससे यह बात प्रमाणित हो सके। शायद इस बात का विश्वास हो जाने पर कि राज्य नष्ट होने जा रहा है, वह मामलोंके प्रबन्धमे मुक्तहस्त होनेका दावा करता था। उसने नाना की सहायता या समागमको कभी नहीं ठुकराया, क्योंकि उस (नाना) की कार्यक्षमता का ज्ञान उस (महादाजी) से अधिक किसी को नहीं था। एक चीज़ बिल्कुल साफ़ है। महादाजी ने नानाकी निष्ठा और सूक्ष्म बुद्धिमें अपनी असीम आस्था को बार-बार व्यक्त किया है। नाना का एजेन्ट सदाशिव दिनकर सितम्बर १७८८ में महादाजी के साथ अपनी भेंट का ब्योरा देते हुए लिखता है: "मुझे आपको यह सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि ठीक उस तरह जैसे कि एक डूबते हुए पुरुष का खोया हुआ साहस यह जानकर कि उसे बचानेके लिए कोई आ रहा है, पुनः लौट आता है, दक्षिणसे अलीबहादुरके नेतृत्वमें, समयसे धन और सेना की सहायता आ जाने पर शत्रुओं से घिरे हुए महादाजी को बड़ा सहारा मिल गया। निस्संकोच भावसे स्वीकार करके कि आड़े समयमें श्रेष्ठ बन्धु नानाके सिवा कोई काम न आया, उसने अपने असंख्य आश्रित जनों को लज्जित कर दिया। महान् वे ही हैं जो महान् कार्य करते हैं।"

७. नाना की शक्ति के ऊपर प्रतिबन्ध.

यह केवल एक शोचनीय दुर्घटना, मेरा तात्पर्य है, नारायणरावकी हत्या थी जिसने नाना को आगे कर दिया। वह अपनी दुर्बलताओंके प्रति भलीभांति सजग था। वह एक सेनानायक न था और युद्धक्षेत्रमें कभी सेनाओंका नेतृत्व ग्रहण नहीं कर सकता था। इसके लिए उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता था, जैसे महादाजी सिन्धिया, तुकोजी होल्कर, हरीपन्त फड़के, या परशुराम भाऊ पटवर्धन आदि। यह स्थिति कितनी कमज़ोर होती है, इसकी कल्पना भलीभांति की जा सकती है, विशेष रूपसे उस समयको ध्यानमें रखते हुए। इन लोगोंमें नाना ने अकेले महादाजी को हठी पाया। इसलिए जब कभी महादाजी तत्परता के साथ नाना के विचारों

या नीतिसे सहमत न होता, तो स्वभावत: दोनोंके बीच झगड़ा खड़ा हो जाता। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रमुख व्यक्तियोंके मजबूत दल बन गये, जिससे राज्य की रुचियोंको हानि पहुंची। महादाजी इतना धर्मभीरु न था कि इन परिस्थितियों में अपनी रुचि या नीतिके उपयुक्त, स्थितिसे सर्वोत्कृष्ट लाभ उठानेमें जरा भी हिचकता। उनकी २० वर्षों की संयुक्त जीवनवृत्तियोंके युगमें इस प्रकारकी दलबन्दीकी प्रवृत्ति बराबर बनी रही और अनजाने में मराठा शक्ति और प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाती रही। यदि नाना ने कुछ मामलोंमें अपने निजी व्यक्तित्वको पृष्ठभूमिमें रख दिया होता तो, मेरे विचारसे ये बातें बचाई जा सकती थीं। शक्तिशाली राजनीतिज्ञों में, जो पहले लाभदायक सेवाएँ प्रदान कर चुकते हैं, सामान्य रूपसे यह दोष पाया जाता है कि वे ऐसा सोचने लगते हैं कि उनके बिना राष्ट्रीय मामलोंका संचालन हो ही नहीं सकता, और अपने पद पर उस समय भी बने रहनेकी चेष्टा करते हैं जबकि शायद उनका अवकाश ग्रहण करना जनताकी रुचिके दृष्टिकोणसे अधिक लाभदायक हो। पूर्वी राजनीतिमें, जहां ब्रिटिश पार्लियामेंट-प्रणालीकी तरह के कोई वैधानिक रक्षा-साधन नहीं होते, यह बात विशेष रूपसे पाई जाती है। यदि हम यह स्मरण करें कि ऐस्क्विथ (Asquith), लॉयड जॉर्ज (Lloyd George) या मैकडोनल्ड (Mac Donald) जैसे इंगलैंडके प्रधान मंत्रियों ने इस बातका पता चलते ही कि राष्ट्र उनका समर्थन नहीं करता, किस शान्ति एवं सरलता के साथ अपने आप अपने पद छोड़ दिये तो हम आज इस बातको स्पष्ट रूपसे समझ सकते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि नाना फड़नीस अपनी शक्ति और उपयोगिता के बन्धनोंको नहीं समझ पाया। १७६५ में युवक पेशवा की दुर्भाग्यपूर्ण तथा असामयिक मृत्युके पश्चात् जब नाना ने अपने वंश-परम्परागत शत्रु पेशवा बाजीराव द्वितीय की अधीनता मान ली, और उसके नीचे रहकर अपने (पुराने) पद पर काम करना स्वीकार कर लिया तब यह बात विशेषरूप से दिखाई दे जाती है। यदि नाना उस समय चुपचाप राजनीतिसे अलग हो जाता, और दूरसे स्थिति का निरीक्षण करता रहता तो सम्भवत: उसने राज्यकी कहीं अधिक सेवा की होती और कमसे कम अपने को अयोग्य षड्यंत्रकारियोंके हाथों होने वाले अपमानसे बचा लिया होता। नाना को अच्छी तरहसे यह मालूम होना चाहिए था कि वह अमर न था, और वह चाहे कितना ही योग्य क्यों न हो, पर एक न एक दिन उसका अन्त होना अनिवार्य था। उस हालतमें राष्ट्र को उसक बिना काम चलाना ही पड़ता।

मेरी रायमें नाना एक और बात नहीं समझ पाया—वह यह थी कि अधिकांश पुराने सरदार और मंत्रीगण उसकी आज्ञा का पालन करने और उसके आदेशोंको कार्यान्वित करने में क्यों हिचकते थे? अपने मौलिक पदके हिसाबसे नाना केवल एक «फड़नीस», या राज्यका मुख्य मुनीम भर था। इस तरहसे सेवा के क्रममें उसका दर्जा स्वयं सर्दारोंसे बहुत नीचा था। निस्संदेह वह पेशवाके नामसे, जो निरा बच्चा था, शासन कार्य करता था। सर्दारों को नन्हें बच्चेकी अपेक्षा, जिसके नामसे नाना काम करता था, बूढ़े और अनुभवी राघोबा के प्रति कहीं अधिक स्वाभाविक सहानुभूति थी। नाना के पास यह समझनेका मौका था कि छत्रपति की प्रतिष्ठा और शाहूकी मृत्युके उपरान्त पेशवाओंकी प्रतिष्ठा के बीच कितना (अधिक) अन्तर था। नारायणरावकी हत्या के बाद, जब उसके हाथोंमें शक्ति आई तो उसकी अपनी प्रतिष्ठा तो और भी कम थी। निश्चय ही प्रतिष्ठा एक आकारहीन पदार्थ है, जिसका कोई भौतिक मूल्य नहीं। परन्तु व्यावहारिक जीवनमें प्रतिष्ठा बहुधा लोगोंके मानसमें हलचल पैदा कर देती है। आज शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार तक इसके विषयमें बड़ी सावधान है। नाना को अपने अधिकांश उपायोंमें अपने देशवालोंकी जिस कलहकारी और अनाज्ञाकारिता की प्रवृत्ति का सामना करना पड़ा उसकी व्याख्या इसीमें मिलती है।

नाना ने अधिक से अधिक सावधानीके साथ पेशवा का पालन पोषण करने की भरसक चेष्टा की। उस एक प्राणी के ऊपर उसने अपना सब कुछ, यहां तक कि स्वास्थ्य तक खतरेमें डाल दिया, पर उसे यह देख लेना चाहिए था कि पूरी कोशिश करने पर भी किसी आदमीके लिए यह सम्भव नहीं कि वह अपनी इच्छा से एक छोटे बालकको सैनिक या राजनीतिज्ञ बना दे। पर नाना ने यह सोचा ही क्यों कि एक २० वर्षका नौजवान इस तरहसे प्रशिक्षित किया जा सकता था या उसके ऊपर यह भरोसा किया जा सकता था कि वह राज्यके स्वामीके पूरे-पूरे कर्त्तव्योंका पालन कर ले और उसके उन चिन्त्य विषयोंकी देखभाल कर ले, जिन्हें वह स्वयं अपनी कार्यक्षमता से परे समझता था? सच तो यह है कि बालक पेशवा, जैसा कि हम पर्याप्त मात्रा में प्राप्य प्रमाणोंसे जानते हैं, अपने प्रसिद्ध पूर्वजोंके अनुरूप सिद्ध न हुआ होता, और सम्भवतः बाजीराव द्वितीय की तुलना में, जिसने इस असावधानीसे मराठा राज्यका दांव लगा डाला, कुछ ज्यादा अच्छा न निकलता। बहुतेरे लेखकोंने इस अल्पायु राजकुमारके, जिसमें पूरे राष्ट्रकी आशाएँ केन्द्रित थीं, असामयिक निधन पर शोक प्रकट किया है। लोग बराबर राष्ट्रके उद्धारकके रूपमें अनुरागके साथ उसका अभिवादन करते आये थे, केवल इसलिए,

क्योंकि राष्ट्रके ऊपर आये हुए संकटके समयमें उसका जन्म हो जानेसे राज्य दुष्ट राघोबा के अत्याचारोंसे बच गया था। हम ग़लतीसे उसकी मृत्युको मराठा शक्तिके अन्तिम पतनका कारण समझते हैं। यदि यह नवयुवक अधिक दिनों तक जीवित रहता तो निश्चय ही एक औरस स्वामी तो मिल गया होता, पर शायद वह किसी तरहसे योग्य न होता। पर इससे भी अधिक आवश्यक था इन तमाम समस्याओंके विरुद्ध रक्षात्मक सैनिक उपायों की व्यवस्था, क्योंकि राष्ट्रोंके भाग्यका अन्तिम निर्णय सैन्य बलसे ही होता है। अतः पश्चिमी सैनिक विधियों को अपनानेके लिए महादाजीके उपायोंका अनुसरण करना नाना का कर्त्तव्य था। सालबाई की सन्धिकी शर्तों पर सन्देह और क्रोधसे झगड़नेके बजाय उसे महादाजीके साथ मिलकर दक्षिणमें वे ही सैनिक सुधार आरम्भ कर देने चाहिए थे। राज्यकी सैनिक पद्धतिका सुधार करनेमें असफल होनेके कारण अपनी सूक्ष्म बुद्धि एवं पूर्वदर्शिताके कारण नानाकी आमतौर पर जितनी बड़ाई की जाती है, उसमें कमी आ जाती है। आर्थिक कौशल, कूटनीतिक बुद्धि या अल्पायु पेशवा के पालनपोषणमें बर्ती जानेवाली सावधानीकी कितनी भी बड़ी मात्रा इस महान् असफलता का प्रतिफल नहीं चुका सकती। निस्सन्देह सरंजामदारोंने पुराने समयसे चली आती हुई विधियोंमें अनिवार्य रूपसे सुधार करनेके विरुद्ध विद्रोह किया होता, पर महादाजीके सहयोगसे नाना उसी नीतिका पालन कर ले गया होता। सबसे पहले वह इस नीतिका आरम्भ अपने निजी हुजरत (घरेलू अश्वारोही सेना) में, जो हरीपन्त फड़केके हाथमें थी, कर सकता था। इसके बाद पटवर्धन लोग और अन्य सरदार धीरे-धीरे उस प्रणालीके अन्तर्गत लाये जा सकते थे। मराठा राज्यकी रक्षा करनेका यही एक मार्ग था।

८. भावी सुरक्षा के लिए क्या किया जा सकता था?

मराठा जातिमें बहुधा कल्पना और पूर्वदर्शिता का अभाव पाया जाता है, पर ऐंग्लो-सैक्सन जातिमें इन दोनों चीज़ोंका आमतौरसे साहचर्य मिलता है। वस्तुतः हम भारतमें अंग्रेजी जातिके साम्राज्य-निर्माण कार्यमें मन्द, पर सतत रूपसे होनेवाली उन्नति पर आश्चर्य करते हैं। उनका हर क़दम निश्चित होता है, चाहे कभी-कभी धीरे भले ही हो। यदि वेलेजली या डलहौजी जैसा महत्त्वाकांक्षी पुरुष प्रबल नीतिका अनुसरण करता है तो जानबूझकर उसका उत्तराधिकारी एक ऐसा व्यक्ति चुना जाता

है जो उसकी कठोरता को कम कर सके और पीछे क़दम हटाये बिना, पहलेसे प्राप्त स्थानों को धीरे-धीरे दृढ़ कर ले जाय। वे पूरी तरहसे बाद-विवाद और विचार विनिमय किये बिना कभी कोई ऐसा काम नहीं करते जिसमें व्यक्तियों की प्रधानता हो। वे सिर्फ़ राष्ट्रकी दूरस्थ रुचियोंको ध्यानमें रखकर अपने सारे काम करते हैं। पर दूसरी ओर, हमारे यहां प्रधानता व्यक्तियोंकी रहती है। हम दूर तक दृष्टि दौड़ाने और अन्तिम उद्देश्योंकी व्यवस्था करनेकी परवाह नहीं करते। हम केवल उस क्षणके अपने निजी तुरन्त चिन्त्य विषयोंको देखते हैं। एक भारतीय कहावत है "मरनेके बाद दुनियासे मेरा कोई नाता नहीं", जो हमारे दिमाग़के रुखको उचित रूपसे समझा देती है। इसलिए जब हम नाना फड़नीस की जीवनवृत्ति की परीक्षा करते हैं और दूसरोंके साथ मिलकर उसकी प्रशंसा करने लगते हैं तो यह सोचनेके लिए भी नहीं रुकते कि अपने बाद मराठा राज्यको सुरक्षित बनाये रखनेके लिए उसे क्या क़दम उठाने चाहिए थे, पर उसने नहीं उठाये।

१७९२-९३ का साल इस प्रकारके कुछ उपायोंको अपनानेके लिए उपयुक्त अवसर था। जून, १७९२ मे महादाजी अतुलित धन और सम्मानके साथ उत्तरसे पूना को लौट आया था। पेशवा द्वारा सम्राट्से मिली हुई उपाधियों को ग्रहण करनेके उपलक्षमें पूना में एक भारी उत्सव किया गया। टीपू के विरुद्ध होनेवाली लड़ाई में मराठोंने भारी विजय प्राप्त कर ली थी, जिसके कारण उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी। इसके बाद लगभग दो वर्षों तक कमसिन और उठते हुए पेशवा के तत्वावधानमें सभी बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ और सेनाध्यक्ष, उच्च राष्ट्रीय अभिलाषाओं सहित पूनामें जमा रहे और जैसा गोविन्दराव काले * के सुन्दर एवं स्पष्ट वर्णनसे विदित होता है, भारत भरमें युद्ध एवं कूटनीतिमें मिली हुई सफलता के लिए खुशियां मनाई जाती रहीं। मार्च, १७९३ की «होली» जिस धूमधामसे पूनामें मनाई गई वह अवर्णनीय है। कहते हैं, उस अवसर पर पेशवा के महल और वनोदी (Wanodi) में महादाजीके शिविर के बीच पांच मील तक नगर की सड़कोंके ऊपर गांठ बराबर «गुलाल» छिड़का गया था। उस उत्सवका आमोद-प्रमोद आज तक मराठोंके स्मृति पटल पर अंकित है। इन घटनाओंसे प्रत्येक समझदार आदमीको भविष्यके विषयमें सचेत हो जाना चाहिए था। वास्तवमें, पद और बिनापद के बहुतसे लोग अच्छी तरहसे जानते थे कि राज्यके भीतर

* १५ पृष्ठ देखिए।

सब कुशल न थी; छत्रपति नितान्त असन्तुष्ट था और उसके हृदयमें पेशवाओंके लिए घृणा छिपी हुई थी; राजपूत लोग महादाजीके उपायोंके प्रति पूर्णतया उदासीन थे; समयके दो महापुरुष, नाना और महादाजी, कमसिन पेशवा के ऊपर अपनी शक्ति एवं प्रभुता स्थापित करनेके लिए खुल्लम-खुल्ला स्पर्धा कर रहे थे; पेशवा में पहले ही से अधीरता और राज्य-प्रबन्ध करने की अयोग्यताके चिह्न दिखाई पड़ रहे थे। बहुत विवेकी व्यक्तियों, मित्रों और शत्रुओंने आनेवाले खतरे की पर्याप्त चेतावनियां दे दी थीं। यदि सब बुद्धिमान् पुरुष बैठते और भावी सुरक्षा के उपायोंके ऊपर एक साथ मिलकर विचारविनिमय करते तो नाना और महादाजी छत्रपति की शक्तिकी पुन: स्थापना कर सकते थे और उसके सभापतित्व में एक प्रकारका नया मराठा मंत्रिमंडल या प्रबन्धक सभा की स्थापना की जा सकती थी। यदि उन्होंने इस प्रकार सहयोगके साथ काम किया होता और शासन-संचालन के लिए एक तरहकी रीजेन्सी क़ायम कर ली होती तो भविष्यके कुछ खतरे बचाये जा सकते थे। राघोबा का छली परिवार जीवित था; उसके, दो लड़के जो अब कुछ बड़े हो रहे थे, कुछ कम उपद्रवी न थे और उनका विनाश भी नहीं किया जा सकता था, नाना को ये सारी बातें मालूम थीं, इसलिए चारों तरफ़से बचाव करनेके लिए कोई न कोई उपाय बहुत जरूरी था।

सैनिक दृष्टिकोणसे सिन्धिया, होल्कर और नागपुर के भोंसलों की सेनाएँ, जो योरोपियन कमान्डरों द्वारा प्रशिक्षित की गई थीं, व्यवस्थित और संगठित की जा सकती थीं, जैसा कि उस समयके अंग्रेज प्रेक्षकों (Observers) को भय था। पर इस तरहकी कोई बात न की गई। इस तरहका क़दम उठाना नाना, महादाजी और अन्य लोगों की सामर्थ्यके भीतर की बात थी, पर ऐसा जान पड़ता है कि अपनेको बुद्धिमान् समझने वाले इन महानुभावोंके मनमें भविष्यके लिए कोई आशंका उठी ही नहीं। अगले कुछ वर्षोंमें मराठा राज्यके असंख्य लोग मौतके शिकार हुए, जिसके कारण कुछ हद तक उसका अन्तिम पतन होनेमें तेजी आ गई। यदि भावी सुरक्षा के लिए समय पर कुछ आवश्यक उपाय कर दिये जाते, तो स्थिति को बचाना सम्भव हो जाता। इस असावधानी के लिए अधिकतर दोष स्वभावत: नाना फड़नीस के सिर मढ़ा जाना चाहिए, जो मराठों का अन्तिम राजनीतिज्ञ था और मराठा राज्यके मुखिया के रूपमें, २६ वर्षों तक उसके मामलोंको सँभालता रहा था। युवक पेशवा की मृत्यु हो जाने पर इस प्रकारकी चेष्टा के लिए अनुकूल अवसर आ उपस्थित हुआ, पर उस समय सहयोगके साथ काम करनेके स्थान पर व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष की प्रधानता हो गई।

ये कुछ ऐसी बातें हैं जो उस समय मेरे दिमाग़में आई जबकि मैंने उस समयके काग़ज-पत्रोंका अध्ययन किया और अपने लिए मराठा-पतनके अन्तिम कारण और उस समयके कुछ सत्तारूढ़ व्यक्तियोंके मस्तिष्ककी चेष्टा का विश्लेषण करने का प्रयास किया। कुछ लेखकों ने जोरके साथ नाना के विरुद्ध एक अभियोग और लगाया है। वह यह है कि उसने राज्यके मूल्य पर अपने लिए खूब धन कमा कर रख लिया। उन दिनों सार्वजनिक मामलोंमें इस तरह का भ्रष्टाचार इतना साधारण था कि किसी व्यक्तिविशेषको इसके लिए दोषी ठहराने की आवश्यकता नहीं। पर कहा जाता है कि नाना की निजी सम्पत्ति कई करोड़ तक पहुंच गई थी, जो उसकी अपनी जरूरतोंके बहुत ऊपर जान पड़ती है। समझमें नहीं आता कि आर्थिक व्यवस्था में उसके जैसे कुशल व्यक्तिने यह कैसे सोचा कि विपक्षियोंके शक्ति प्राप्त करने पर उसकी सम्पत्ति सुरक्षित रहेगी, क्योंकि स्वयं उसने तो सखाराम बापू तथा अन्य लोगोंके साथ कठोरतम व्यवहार किया था, और निर्दयता के साथ उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली थी। वास्तवमें बाजीराव द्वितीयके हाथों उसे वही व्यवहार मिला जैसाकि उसने सखाराम बापू के साथ किया था। आमतौर से नानाको इस बातका श्रेय दिया जाता है कि उसने मराठा राज्यकी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेके हेतु उपाय किये, पर यह समझना कठिन है कि सारी शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करके या अपनी निजी सम्पत्तिमें अपार वृद्धि करके वह अपनी मृत्युके उपरान्त किस प्रकार इस फलकी प्राप्ति करने जा रहा था। हम इस बातकी कल्पना ही क्यों करें कि महादाजी की अपेक्षा नाना राज्यके कल्याण के लिए अधिक उत्सुक था, जबकि महादाजी स्वयं इस बात का श्रेय सरलता से अपने ऊपर ले सकता। हम प्रायः बिना किसी तरह का शक-शुबहा किये इस बात को मान लेते हैं कि नाना राज्य था और वही अकेला उसकी रक्षा कर सकता था। हमें सीखना चाहिए कि ऐतिहासिक प्रश्नों का निर्णय करने में अप्रमाणित कल्पनाओंका त्याग कर दिया जाय। महादाजी ने दूसरी ओर कुछ समय तक सफलतापूर्वक अंग्रेजोंका अवरोध किया और उनकी महत्वाकांक्षा को दबाये रखा। यदि वह काफ़ी दिनों तक जीवित रहता तो शायद उसने इससे अधिक सेवाएँ की होतीं। इसलिए मैं तो यह समझता हूं कि यदि नाना ने अपने शक्ति-प्रेम और आर्थिक रुचिके स्थान पर, अन्य लोगोंको राज्यके मामलोंका प्रबन्ध करनेके लिए मौका देकर राष्ट्रसेवा को अधिक महत्त्व दिया होता तो इतिहास में उसे कहीं अधिक ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ होता। नाना और महादाजीने भाई-भाई की तरहसे रहने और सभी स्थितियोंमें एक दूसरे का समर्थन करने की शपथ ली थी,

और इस बातमें उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए कि यद्यपि वे दोनों बहुधा एक दूसरे के कट्टर विरोधी रहते थे, तथापि उन्होंने आपसमें खुल्लम-खुल्ला युद्ध होनेकी नौबत कभी न आने दी।

७

मराठा राज्य का पतन

१. पेशवा के शासनके कारण उसका अन्त शीघ्र ही होता है.

बहुत दिनोंसे सालाना कर न चुका पाने के कारण निज़ाम के ऊपर एक लम्बी रक़म चढ़ गई थी जिसकी वजहसे बहुत दिनों तक उसके और पेशवा की सरकारके बीच युद्ध छिड़ जानेका खतरा जान पड़ता रहा। महादाजी अपने प्रशिक्षित सैन्यदलसे काम लेने और निज़ाम की हस्ती मिटा देनेके लिए उतावला हो रहा था। निज़ाम ने आशा की थी कि मराठों के आक्रमणके भयसे उसकी रक्षा करने के लिए अँग्रेज लोग तत्परता के साथ उसकी सैनिक सहायता के लिए आ जायेंगे। १७९४ के आरम्भमें महादाजी सिन्धिया की मृत्यु हो जानेके पश्चात् वर्षके अन्तमें संकट आ उपस्थित हुआ। नाना फड़नीस ने पूना में एक विशाल मराठा सेना एकत्रित की और निज़ाम के राज्य पर आक्रमण कर दिया। निज़ाम भी पूर्व की ओर से मराठोंका सामना करनेके लिए तैयार होकर आ डटा। पूनाके ठीक पूर्वमें लगभग १५० मील की दूरी पर खर्दा (Kharda) नामक स्थान पर दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ हुई। मराठों ने निज़ाम को बुरी तरह हरा दिया और उसे एक सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया, जिसकी शर्तें बड़ी कड़ी थीं। कई अर्थोंमें यह विजय मराठों के लिए बड़े ही गौरवकी बात थी, क्योंकि यह अन्तिम असाधारण अवसर था जबकि अधिकांश प्रमुख मराठा सरदार और जागीरदार एक सामान्य उद्देश्यके लिए पूना में जमा हुए थे। कमसिन पेशवा के प्रति उन्होंने अपनी हार्दिक आज्ञाकारिता प्रकट की तथा बाहरी दुनिया के ऊपर यह छाप छोड़ी कि एक पीढ़ीके समस्त कष्टोंको पार करके, मराठा जातिने अपनी पूर्व प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य को

पुनः प्राप्त कर लिया है। पर यह तो सिर्फ़ एक क्षणिक वस्तु थी। खर्दा की विजयके बाद से ही होनहार पेशवा को मन्द ज्वर की बीमारी हो गई, जिसके कारण वह इतना ज्यादा कमजोर हो गया कि उसके लिए खड़ा होना तक दूभर हो गया, और तब भी वह दशहरा के उत्सवों (२२ अक्टूबर, १७९५) के सम्बन्धमें होनेवाले अत्यधिक परिश्रमको न बचा सका। उस दिन उसका बुखार बहुत तेज हो गया और दो दिन बाद वह बेहोश होकर अपने महलके छज्जे से नीचे गिर गया जिसमें उसकी जांघ की हड्डी टूट गई। इसके बाद वह दो दिन और जीवित रहा पर उसे होश नहीं आया और वह उसी हालतमें स्वर्ग सिधार गया। इस दुःखद घटना ने राष्ट्रकी आशाओंको अन्तिम रूपसे चूर-चूर कर दिया। नाना फड़नीस और दूसरे मंत्रियोंके बीच बड़े तर्क-वितर्क और लड़ाई-झगड़ेके बाद, घृणित राघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय जुनार के बंदीगृहसे निकाल कर लाया गया और उसे पेशवा के पद पर बिठाया गया। इस घटनाने मराठों के भाग्यका सितारा सदा के लिए डुबा दिया। चरित्र और योग्यता दोनोंमें बाजीराव निरा निकम्मा था, और उसका साथी दोलतराव सिन्धिया भी, जो महादाजी का उत्तराधिकारी था, उसीकी तरह अयोग्य बालक था। फ़्रांसीसी पदाधिकारियोंके नेतृत्वमें प्रशिक्षित सिन्धिया की शक्तिशाली सेना उसके किसी काम की न थी, क्योंकि उसमें इतना कौशल ही न था कि वह उसको उचित नियंत्रणमें रख पाता। पेशवा और नवयुवक होल्कर यशवन्तराव के बीच, जो एक उत्साही एवं वीर परन्तु क्रोधी सैनिक था, घोर शत्रुता पैदा हो गई। जिस क्रूरता के साथ पेशवा ने उसके भाई विठोजी (Vithoji) को मरवाया था, उसका बदला लेने के लिए वह एक विशाल एवं अनुरक्त सेना सहित पूना आ पहुँचा और अपनी शिकायतोंके लिए, जिन्हें पेशवा ने घमंड के साथ हंसकर उड़ा दिया था, न्यायकी माँग की। नगरकी सीमा पर होनेवाले घमासान युद्ध में पेशवा की सेना के पैर उखड़ गये और वह स्वयं अपनी जान बचानेके लिए पहले रायगढ़ और महाद (Mahad) और वहां से सामुद्रिक मार्ग द्वारा बेसीन भाग गया। बेसीन पहुंचकर उसने रेजीडेन्ट कर्नल क्लोज (Col. Close) के साथ प्रसिद्ध सन्धिकी बातचीत की जिसके अनुसार उसने पेशवा पद की पुनःप्राप्तिमें सहायता देने वाली अंग्रेज सेना का खर्च उठानेका वायदा किया। इस प्रकार ३१ दिसम्बर, १८०२ को मराठा राज्यकी स्वतंत्रता का नाश हो गया। अगले वर्ष आर्थर वेलेजली ने किस प्रकार पेशवा को उसकी राजधानी में फिरसे स्थापित किया, सिन्धिया और नागपुरके राजाओं की संयुक्त सेनाओंको पूर्णतया परास्त किया और लॉर्ड लेक ने उत्तरमें किस

प्रकार दिल्ली और सम्राट्को सिन्धिया के हाथ से छुड़ा कर देदीप्यमान विजय प्राप्त की, ये सारी बातें ऐसी हैं जिन्हें सभी जानते हैं। यहां पर उनका विस्तृत वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। शीघ्र ही भारतके ऊपर अंग्रेजों की प्रभुता स्थापित हो गई और मराठोंकी प्रभुता सदा के लिए नष्ट हो गई।

२. बाजीराव द्वितीय के ऊपर मारक्वेस ऑफ़ हेस्टिंग्ज़.

अपने अन्तिम संघर्षमें विपक्षीके रूपमें कार्य करनेवाले बाजीराव एवं मारक्वेस ऑफ़ हेस्टिंग्ज़ के बीच, जो क्रमसे मराठा और ब्रिटिश राज्योंके प्रतिनिधि थे, ज़मीन आसमानका अन्तर था। मराठोंका पूर्णतया नाश करनेके लिए मारक्वेस ऑफ़ हेस्टिंग्ज़ ने जो भी क़दम उठाये उनमें उसकी उत्कृष्ट योग्यता प्रत्यक्ष रूपसे दिखाई पड़ती है। यहां पर उसके «व्यक्तिगत रोजनामचे» की कुछ पंक्तियां उद्धृत किये बिना मुझसे नहीं रहा जाता, क्योंकि वह रोजनामचा ऐतिहासिक रुचिकी बातोंसे भरा हुआ है। २३ मार्च, १८१७को और आगे आनेवाले महीनोंमें मारक्वेस ऑफ़ हेस्टिंग्ज़ लिखता है: "पिछले वर्ष का अन्त होते-होते हम लोगोंने पेशवा के अनेक षड्यंत्रोंके चिह्न ढूंढ़ निकाले, जो हमी लोगोंके विरुद्ध रचे हुए जान पड़ते थे। ऐसा लगता है कि गत वर्ष शरद ऋतु तक वह सिन्धिया, होल्कर, अमीरखां, गायकवाड़, नागपुर के राजा और निज़ामसे इस बातकी सविनय प्रार्थना करता रहा कि वे उसके साथ मिल जांय और अंग्रेजों को हिन्दुस्तानसे बाहर निकाल दें। अब में सिन्धिया और होल्कर को ऐसे बन्धनोंसे जकड़ दूंगा कि जिस विश्वासघातकी बात वे इस समय सोच रहे हैं, वह पूर्णरूपसे व्यर्थ हो जायगी। वस्तुत: मराठों का पतन किया जा चुका है।"

पंद्रह वर्षों तक पेशवा का बहुमूल्य अस्तित्व बना रहा और अन्तमें उसे अंग्रेजोंके साथ होनेवाले अपने अंतिम संघर्षमें उनकी फ़ौजोंके सामने आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। १८०२ में बेसीनकी सन्धि होनेके समयसे लेकर १८१८ में पेशवा की अन्तिम पराजयके बीच के पंद्रह वर्षोंमें पूरे भारतमें एक प्रकार की असाधारण अशान्ति एवं अनिश्चय था। इस वातावरणका विशेष कारण एक तो यह था कि विभिन्न सर्दारों और शासकोंके कार्यक्षेत्र निश्चित न थे, दूसरे वे यह न सोच पाते थे कि अंग्रेजी शक्तिके विरुद्ध विद्रोह करें या उसकी अधीनता स्वीकार कर लें। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस काल के ऊपर अनुसन्धान

कार्य करना अभी क़रीब-क़रीब बाक़ी ही है। मैं यहां पर इस बातकी चर्चा कर देना चाहता हूं कि पूना के एलीनेशन दफ़्तर (Alienation Office) में पुराने अंग्रेज़ी रिकार्डों का अपूर्व संग्रह है, जो पूना रेज़ीडेन्सी फ़ाइल्स (Poona Residency Files) कहलाता है। यह संग्रह पंजाबसे लेकर दक्षिण तक की समस्त भारतीय रियासतोंसे सम्बन्ध रखनेवाले मूल्यवान् समाचारोंका यथार्थ भंडार है, क्योंकि उसमें प्रमुख अंग्रेज़ कूटनीतिज्ञोंके, जो केन्द्रीय सरकारसे उद्भूत उपायोंका योग्यता के साथ समर्थन करते थे और उन्हें पूरा करने की चेष्टा करते थे, लिखे हुए तमाम सन्देश भरे पड़े हैं। अब इन फ़ाइलों (files) का अध्ययन किया गया है और उनके संकलन सिरीज़ में छापे जा रहे हैं। ये संकलन पूना रेज़ीडन्सी करेसपॉन्डेन्स (Poona Residency Correspondence) कहलाते हैं। अब तक ग्यारह खंड प्रकाशित हो चुके हैं।

३. बाजीराव का प्रयास.

१८०३ से १८१८ तक बाजीराव पूना में अंग्रेज़ रेज़ीडेंट की देखरेख में चुपचाप दिन बिताता रहा। उसमें इतनी योग्यता न थी कि वह मराठा संघके मुखिया के रूपमें अपनी खोई हुई स्थितिको पुनः प्राप्त कर सकता। फिर भी मूर्खतावश वह मन ही मन अंग्रेज़ी शक्ति के विरुद्ध ईर्ष्याका भाव रखने लगने लगा और उसके ऊपर विजय पानेके लिए हर तरहके छल कपट का प्रयोग करने लगा। पर उसे अपनी जातिसे कोई समर्थन न मिला, क्योंकि स्वतंत्रता की बलि देकर बेसीनमें अंग्रेजोंकी सहायता स्वीकार कर लेनेके कारण सभी लोग उससे बेहद नाराज़ थे। अपनी स्थिति को दृढ़ करने तथा अपने अधीन लोगों का अनुरंजन करनेके स्थान पर उसने उनको दबानेके लिए अंग्रेज़ी सहायता का प्रयोग किया। किन्तु अंग्रेज़ोंके प्रति उसकी घृणा निरन्तर बढ़ती रही और उनकी दासता उसे इस बुरी तरहसे अखरने लगी कि वह उत्साहपूर्वक उस अवसर की प्रतीक्षा करने लगा जबकि वह उनके विरुद्ध हथियार उठा सके। नेपाल-युद्ध (१८१४-१८१६) के जमाने में सचमुच ऐसा अवसर आ उपस्थित हुआ। सर ए. लायल (Sir A. Lyall) लिखता है: "नेपाल-युद्धने मराठों में अंग्रेज़ोंके विरुद्ध पुनः युद्ध करने की प्रवृत्तिको प्रोत्साहित किया। पेशवा ने फ़ौजोंको इकट्ठा करना और सैनिक सामग्री जुटाना आरम्भ कर दिया। अश्वारोही पिंडारी देशभर में उत्पात मचाने लगे। पूना, नागपुर, ग्वालियर और इन्दौरके मराठा शासकोंके साथ वे गुप्त

समझौता रखते थे। नेपाल-युद्धके प्रारम्भमें अंग्रेजोंको जिन कठिनाइयों तथा विपत्तियों का सामना करना पड़ा उनके कारण मराठोंको अपनी खोई हुई शक्ति की पुनःस्थापना करनेके लिए अवसर प्राप्त होनेकी कुछ आशा दिखाई पड़ी।" सचमुच यदि उस समय मराठा शक्तिके छितरे हुए तत्वों को व्यवस्थित करने और संगठित रूपमें अंग्रेजों के विरुद्ध लड़नेके लिए कोई योग्य नेता होता, तो वह वेला निश्चय ही बड़ी शुभ थी, और मराठोंकी राष्ट्रीय भावना नितान्त अनुकूल थी। पर शान्त और विचारवान मारक्वेस ऑफ़ हेस्टिंग्ज ने पुनः भारतीय संगठनके लिए किये जानेवाले समस्त प्रयासों को व्यर्थ कर दिया। जब तक नेपाल-युद्ध चलता रहा, तब तक तो वह चुपचाप अपना समय काटता रहा, पर मार्च, १८१६ में प्रभावशाली ढंगसे उसका अन्त कर लेने के बाद वह अंग्रेजोंकी सारी शक्ति बटोर कर उन भारतीयोंका सामना करनेके लिए तैयार हो गया जो उसे चुनौती देनेका साहस कर सकें। फल यह हुआ कि एक वर्षके भीतर भारतमें विरोधके समस्त चिह्न निश्चित रूपसे नष्ट कर दिये गये।

४. मराठोंके पतनके कारण.

अपनी पहलेकी बातचीतके दौरानमें मैं जहां तहां समझा चुका हूं कि मराठोंके चरित्र में कौनसे गुण और दोष पाये जाते हैं। उसकी सहायता से हम सरलतापूर्वक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वे पूरे भारत या केवल महाराष्ट्रके लिए एक स्थायी राष्ट्रीय शासनकी स्थापना करनेमें क्यों असफल हुए।

मुझे आशा है कि इसके पहलेकी वार्ता और उसके साथ इधर-उधर दिये गये छोटे-छोटे विवरणों ने अनिवार्य रूपसे यह बात पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट कर दी होगी कि मराठा-पतनके वास्तविक एवं तात्कालिक प्रासंगिक कारणोंकी खोज कहां की जानी चाहिए। इस विषयकी जांच विधिपूर्वक की जानी चाहिए। केवल सामान्य कारणोंकी ओर संकेत कर देनेसे कोई लाभ नहीं, क्योंकि इस नाशवान् जगत्में ऐसा अद्भुत पदार्थ कोई है ही नहीं जिसके लिए अनेक परिस्थितियां तथा स्थितियां कारणोंके रूपमें निर्दिष्ट न की जा सकें। इतिहासको तो आवश्यकता है केवल उन विशेष परिस्थितियों अथवा दशाओंकी जिन्होंने प्रत्यक्ष रूपसे उन परिणामोंको जन्म दिया जिनकी व्याख्या हमें करनी है। बादको मैं उन सामान्य कारणोंके विषयमें भी बताऊंगा जिन्हें अनेक प्रमुख लेखकोंने अपने-अपने ढंगसे रखा है। इस सम्बन्धमें यह भी याद रखना चाहिए कि अनेक विद्वानोंने, जिन्होंने विषयको लिया है, उसकी ओर अनावश्यक रूप

में संकेत भर कर दिया है और वह भी उस ढंगसे जो उनके द्वारा अपनाये हुए तर्क-क्रमके उपयुक्त हो। कुछने अपनी पूर्वनिर्णीत कल्पनाओंको सुरक्षित रखनेके लिए विषयकी जो कुछ चर्चा की वह अनजानेमें ही की। कुछ भी हो, जहां कहीं मेरे और उनके विचारोंमें अन्तर मिलता है वहां उनके विषय-वर्णनके सम्बन्धमें मुझे इसी तरहकी बातें दिखाई देती हैं।

मैं किसी तरहकी शंका किये बिना दो चपल नवयुवकों, पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा दौलतराव सिन्धिया को, मुख्य रूपसे मराठा-पतनके लिए दोषी ठहरा सकता हूं, क्योंकि दैवयोगसे मराठा राज्यकी सर्वश्रेष्ठ शक्ति इन्हीं दोनोंके हाथमें आ गई थी। उनके कुकर्मों ने पूना-दर्बार और समाजका नैतिक स्तर इतना नीचे गिरा दिया था कि किसीकी जान-माल या इज्जत सुरक्षित न थी। कुशासन, अत्याचार, लूटमार और विनाशके कारण दूर-दूर तक के लोगोंको भीषण दुःख सहन करने पड़े। सर्दारों और जागीरदारों, जिनमें दक्षिणी मराठा देशके सर्दार और जागीरदार विशेषरूपसे शामिल थे, के साथ इतना दुर्व्यवहार किया गया कि उनका मन बिल्कुल हट गया और वे अपनी रक्षा के लिए अंग्रेजोंकी शरण में जा पहुंचे। यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि बाजीराव और दौलतराव जैसे दो व्यक्ति पीढ़ियोंसे बने हुए ठोस भवन को बिना किसी रुकावट के नष्ट कर सकते थे तो निश्चय ही यह बात पहलेसे मान लेनी पड़ेगी कि राज्यमें उचित संगठन अथवा स्वीकृत संविधान का अभाव था। यह निश्चय सत्य है। यदि हमारा शासन संगठित होता तो ये दो अयोग्य नवयुवक कुछ अधिक बिगाड़ नहीं सकते थे। फिर भी यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि समस्त मानवीय मामलोंमें एक अकेला आदमी प्रायः किसी अच्छे या महान् कार्यको बना या बिगाड़ सकता है। जैसे एक शिवाजी ने मराठा राज्यका निर्माण किया, और उसी तरह एक बाजीराव ने उसका नाश कर दिया। व्यक्तिगत रूपमें मनुष्य ही इतिहासको बनाते और बिगाड़ते हैं। जैसा कि मुनरोने दृढ़तापूर्वक कहा है कि खतरेके समय राज्यके अधिष्ठाता के रूपमें एक योग्य संगठनकर्ताका अभाव विनाशका प्रथम और मुख्य कारण है। जब बाजीराव और दौलतराव अपने कुकृत्योंमें फंसे हुए थे, उस समय ऐसे विचारवान् व्यक्तियोंका अभाव न था जिनमें आगे बढ़ने और मामलोंका सुधार करनेकी जबर्दस्त प्रेरणा थी, परन्तु ऐसी दुर्बल और छितरी हुई सुधारवादी शक्तियोंके लिए दोनों नव-युवक आवश्यकता से अधिक शक्तिशाली थे। यदि विपक्षी दलमें अंग्रेजों जैसे योग्य प्रतिद्वन्द्वी न होते, जो मराठा पक्षकी छोटीसे छोटी कमीसे अधिकसे अधिक लाभ उठाने

के लिए तैयार रहते थे, तो शायद इस तरहकी शक्तियां ज़ोर पकड़ जातीं और दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ जातीं। यशवन्तराव ने इस बातकी पूरी कोशिश की कि बाजीरावको हटा दिया जाय और उसकी जगह पर उसके भाई अमृतराव को पेशवा बना दिया जाय, और आर्थर वेलेज़ली ने इस बातकी ओर लक्ष्य भी किया है कि यदि अमृतराव पेशवा होता तो अंग्रेज़ोंको अपनी प्रभुता स्थापित करने का अवसर न मिलता। पर कुशल कूटनीतिपूर्ण और छल-कपटसे युक्त उपायों द्वारा उन्होंने जानबूझ कर यह काम पूरा न होने दिया। वास्तवमें बाजीराव अपने अंग्रेज़ सहायकों को हमेशा यह कहकर ताना दिया करता था कि "आप लोग मित्र और सहायक होकर आये तो इसलिए थे कि मुझे अपनी शक्ति बनाये रखनेमें सहायता करें, पर आपने भरसक चेष्टा की, मुझे शक्तिहीन बनाने की।" इस तर्कसे बचनेका कोई उपाय नहीं। आगे चलकर मैं परस्पर विरोधी दोनों शक्तियोंके कार्यकर्ताओंके बीच होनेवाले महान् अन्तर और अंग्रेजोंकी विशिष्ट राजनीति और संगठनकी चर्चा करूंगा जिनकी सहायतासे मराठा पतनकी व्याख्या सरलतापूर्वक की जा सकती है।

५. विज्ञान की उपेक्षा.

ऊपर बताये गये विशेष कारणोंके अतिरिक्त कई एक सामान्य कारणोंकी ओर भी संकेत किया जा सकता है। इनमें विज्ञानके अध्ययन और सैनिक प्रशिक्षण एवं संगठनकी पूर्ण उपेक्षा की चर्चा की जा सकती है। जिनके हाथमें राज्यका संचालन था, वे इस बातकी ओर ध्यान ही न दे पाये कि उनके योरोपियन पड़ोसी—पुर्तगाली, फ़ांसीसी और अंग्रेज—भारतमें कर क्या रहे थे और उनके प्रभावका प्रतिपादन कैसे किया जा रहा था। बाजीराव प्रथम और उसके भाई चिमनाजी ने घोर युद्धके पश्चात् पुर्तगालियोंसे बेसीन जीता था, और उसके बाद हमेशा मराठे लोग बड़े गर्वके साथ उस विजयकी बात किया करते थे। परन्तु पुर्तगालियोंके साथ होनेवाले अपने जलयुद्ध से प्राप्त अनुभव द्वारा उन्हें एक तर्कपूर्ण क़दम उठानेकी बात न सूझी—अर्थात् आत्मरक्षा के लिए सामुद्रिक शस्त्रगृह और जहाज बनानेके कारखानों की स्थापना। पुर्तगालियोंके पास डॉक थे, बन्दूकें बनानेके लिए कारखाने थे, और उन्हें वैज्ञानिक तरीक़ोंसे चलानेके लिए दक्ष पदाधिकारी थे। नोरोहा (Noroha) जैसे पुर्तगाली तोपचियों (Gunners) को मराठोंके यहां नौकर रखनेके बजाय भारतीयोंको बेसीनमें उनका प्रबन्ध अपने हाथमें बनाये रखना चाहिए था। यदि बेसीनमें पुर्तगालियों

का युद्ध-आधार व्यवस्थित रूपमें रखा जाता और सामुद्रिक प्रयोजनोंके लिए उससे काम लिया जाता रहता तो पंद्रह वर्षोंके बाद अंग्रिया लोगों को अपनी अधीनता स्वीकार करानेके लिए पेशवा को अंग्रेज़ोंसे सहायता मांगनेकी आवश्यकता न पड़ती।

पेशवाओं को अनेक अवसरों पर उन पश्चिमी जातियों के पास से गोला, बारूद और तोपें मंगानी पड़ीं, और बहुत दफ़े इन चीज़ोंके अभावमें वे लड़ाइयां तक हार गये। इस दिशामें आवश्यक शिक्षा और सामग्री सरलतासे प्राप्त की जा सकती थी, और भारतीयोंको प्रशिक्षित करके इस काममें दक्ष किया जा सकता था। तत्कालीन कागजोंमें बहुत जगह इस बातकी चर्चा मिलती है कि भेंट या खरीदके रूपमें मूर्तियां, चित्र, तलवारें, इंगलैंडका लोहा और सीसा, बन्दूकें, दूरबीनें, नत्थियां (Files), दवाएँ, घड़ियां, कांटा-छुरी, चीनीके बर्तन, कागज और रोजमर्राके इस्तेमालकी तमाम दूसरी चीजें योरोपसे किस तरह बराबर आती रहती थीं। फिर भी हमलोगों में से किसीको यह बात न सूझी कि आखिर ये चीजें बनाई कैसे जाती हैं और उनका उत्पादन यहां क्यों नहीं किया जा सकता। इस बातका पता चलता है कि कलकत्ता, गोआ और पांडीचेरीमें छापेखाने और समाचारपत्र थे। तमाम अमीर ओहदेवाले भारतीय बहुधा पश्चिमी शल्यशास्त्र (Surgery) का सहारा लेते थे। पेशवा माधव राव ने स्वयं एक योरोपीय डाक्टर से अपना इलाज कराया। इस बातकी चर्चा मिलती है कि दांतका मंजन तक बम्बई में अंग्रेज़ोंके पाससे मंगाया जाता था, फिर भी पेशवाओं और उनके परामर्शदाताओं की बुद्धिमानी और प्रखरता को देखते हुए यह बात समझमें नहीं आती कि उन्होंने विज्ञानके अध्ययन एवं विकासकी पूर्ण उपेक्षा क्यों की, जबकि ये दोनों ही बातें उनकी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए इतना अधिक आवश्यक थीं। हम चपलता के साथ इस बातका दावा कर बैठते हैं कि हमारा धर्म स्वार्थहीनता और आत्म-त्यागकी शिक्षा देता है। पर क्या हम अपनी ओरसे ऐसा कोई बलिदान प्रदर्शित कर सकते हैं जिसकी तुलना दूरसे भी प्राण एवं धनके उस महान् त्यागके साथ की जा सके, जो पश्चिमी राष्ट्रोंने विज्ञान, खोज और सराहनीय दीर्घ प्रयासके लिए (उदाहरण स्वरूप हवाई जहाज का विकास, ध्रुववर्ती प्रदेशों की खोज या हिमालय की चोटियोंकी चढ़ाई के सम्बन्धमें शताब्दियों तक) किया है? निश्चय ही विज्ञान एवं अन्वेषणकी यह प्रवृत्ति, यह धैर्य और साहस, एक अव्यावहारिक हेतुमें शारीरिक कष्ट एवं कठिनाइयां सहनेके लिए यह तत्परता, सामान्य रूपसे पूर्वी देशोंमें नहीं पाई जाती। यही अभाव हमारे पतनके लिए मुख्य रूपसे उत्तरदायी है। जब तक हम

इस प्रवृत्ति को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक स्वतंत्रता या «स्वराज्य» की बातचीत बिल्कुल निराशाजनक जान पड़ती है।

६. तोपखाने की उपेक्षा.

१६वीं सदीके आरम्भमें ही पश्चिमी समुद्र तट पर गोआ जैसे महत्वपूर्ण स्थानों को जीतनेके लिए पुर्तगाली युद्धपोतोंने घेरा डालनेवाली बन्दूकों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। उसके कुछ वर्षो बाद बाबर ने मुख्य रूपसे बन्दूकोंकी सहायता से भारत में अपने मुग़ल साम्राज्यकी स्थापना की। उसने तोपखाने के प्रयोग की कला तुर्कों से सीखी, जिन्होंने उससे ७५ वर्ष पूर्व, इसी की मदद से कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार किया था। योरोपवालोंने युद्धकलाके इस अस्त्र का विकास बड़ी द्रुतगतिसे किया और उसकी सहायतासे समुद्र पर साहसिक यात्राएँ करके पूरे जगत्में अपने व्यापार, शक्ति एवं प्रभाव का विस्तार कर लिया। परन्तु मराठों या भारतकी किसी अन्य शक्ति ने इस कलाको कभी न अपनाया। १७६० में अहमदशाह अब्दाली के तोपखाने का मुक़ाबला करनेके लिए उन्होंने बुसीसे कुछ व्यक्तियोंको प्रशिक्षित कराया। पेशवाने इब्राहिमखां गर्दी, और बादको नाना फड़नीसने मूसा नारन (Musa Naran) को नौकर रखा। महादाजीने १७८४ में डी बोने (De Boigne) और चन्द सालोंके बाद दूसरे फ्रांसीसी अफ़सरोंको नियुक्त किया। पर यह बात समझमें नहीं आती कि महादाजी और नाना फड़नीस जैसे मराठा प्रशासकोंने युद्धकी इस प्रधान शाखामें अपने निजी आदमियोंको प्रशिक्षित क्यों नहीं किया? इस सम्बन्धमें तो हम एक ही बात मान सकते है। वह यह कि मराठोंको यह भय होगा कि ऐसा करनेसे उनके धर्म और जातिका नाश हो जायगा। मशीनों और इन्जनोंका प्रबन्ध करनेके लिए कठिन और निरन्तर परिश्रम करने की आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए सारे सुखों की उपेक्षा करनी पड़ती है और जाति-पांतिके बन्धनोंको उठाकर ताख पर रख देना होता है। उन्होंने विज्ञानको बलिवेदी पर चढ़ाकर धर्मकी रक्षा करनेकी चेष्टा की। अतएव आत्मरक्षा के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साधनके लिए उन्हें विदेशियोंके ऊपर निर्भर रहना पड़ा। चूंकि मराठोंकी पुरानी गुरीला-युद्ध-प्रणाली व्यवस्थित तोपखाने और प्रशिक्षित पैदल सेनाके सामने नहीं ठहर सकती थी इसलिए उसका प्रयोग बंद हो गया और उसकी जगह लेनेके लिए कोई भी चीज न रह गई। शिवाजी अपनी आवश्यकता के अनुसार दोनों प्रणालियोंका प्रयोग करता था। पहलेपहल गुरीला-युद्ध-प्रणाली

का चलन मलिक अम्बरके साथ हुआ जिसके नीचे रहकर शिवाजीने इसे सीखा और बाद को शाहजहांके विरुद्ध लाभदायक ढंगसे उसका अभ्यास किया। शाहजीके पुत्र शिवाजीने उसका विकास करके उसे युद्धका एक उत्कृष्ट अस्त्र बना दिया, जो औरंगजेब के साथ होनेवाले मराठा युद्धके जमानेमें विशेष रूपसे सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ। इस तरहके युद्धमें पहले सन्ताजी घोरपदे, धनजी जाधव, खांडेराव दभदे, पेशवा बाजीराव प्रथम, पहलेके दिनोंमें, और सिन्धिया, होल्कर तथा अन्य लोग बादके दिनोंमें निपुण नेता थे। परन्तु जब फ़ांसीसियों और अंग्रेजोंके बीच होनेवाले कर्नाटकके युद्धों में दूर तक गोले फेंकनेवाली तोपों और उनके साथ-साथ रहनेवाली पैदल सेनाके कारनामे दिखाई पड़े तब मराठोंकी युद्धविद्यामें द्रुतगामी परिवर्तन हुए। इसमें सन्देह नहीं कि पेशवाने पांसे (Panse) नामक एक ब्राह्मण सर्दार की देख-रेख में पूना तथा अन्य स्थानोंमें तोपखानेका विभाग स्थापित किया, पर उचित वैज्ञानिक ज्ञानकी अनुपस्थितिमें यह प्रयास अधूरा था। इसके अतिरिक्त वे कभी पर्याप्त मराठा पैदल सेना एकत्रित न कर सके और न ही संकटके समय काम देने योग्य बनानेके लिए उसके आवश्यक प्रशिक्षण तथा संगठनकी व्यवस्था कर सके।

खुल्लम-खुल्ला गुरीला युद्ध-प्रणाली का त्याग पहले-पहल पानीपतमें हुआ जहां प्रसिद्ध भाऊ को इब्राहिमखां गर्दीके तोपखानेके ऊपर सबसे अधिक विश्वास था। पानीपतमें उनकी पराजय युद्ध प्रणालीके परिवर्तनसे नहीं हुई वरन् उसके और बहुत से कारण थे जिनके विषयमें यहां बतानेकी आवश्यकता नहीं। पर सामान्य रूपसे पानीपतके बाद प्राचीन युद्ध-प्रणाली का प्रयोग धीरे-धीरे बंद हो गया। तेलगांवकी लड़ाई के जमानेमें अंग्रेजी तोपों और उनके संगठित पैदल सैन्य दलोंने जो विप्लव मचा दिया था उसकी ओर महादाजीने स्पष्ट रूपसे और सावधानीके साथ ध्यान दिया था। अंग्रेजी सैन्य दलोंको ठोस दीवारोंकी नाईं अडिग खड़े रहते हुए देख कर वह आश्चर्यचकित रह गया था। अगले साल गुजरातमें भी उसे यही अनुभव हुआ। अंग्रेजी तोपें चाहे कितनी ही कम क्यों न होतीं, फिर भी कोई मराठा नेता उनका सामना करनेका साहस न करता। इसीलिए महादाजीने अंग्रेजोंके साथ चलनेवाले युद्धसे छुटकारा पाते ही योरोपीय नमूने पर अपनी सेनाका संगठन करनेका निश्चय किया। उसने फ़ांसीसी अफ़सर नोकर रखे, जिनके ऊपर दुर्भाग्यसे विपत्तिके समय निर्भर नहीं रहा जा सकता था, और जो महादाजीके निर्बल उत्तराधिकारी, दौलत रावके क़ाबूसे बाहर साबित हुए। आगरे और दूसरी जगहोंमें फ़ांसीसियोंके निर्देशनमें बारूदवाले उत्तम

हथियार बनाये जाते थे, पर बाजीराव द्वितीय और दौलतराव सिन्धियाने अपनी युद्ध-शक्ति की इस शाखाका प्रतिपादन करनेकी परवाह न की। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं, "जब १७९८ में रेमन्ड (Raymond) की सेना हटाई गई उस समय उसके हैदराबादके गोदाममें अश्वारोही सेनाके लिए कुछ पिस्तौलोंके अतिरिक्त श्री पीरन (Mr. Piron) की अध्यक्षतामें काम करनेवाली सेना से १२,००० अधिक आदमियोंके लिए छोटे हथियार और कपड़े थे। फ्रांसीसी पलटनमें तीन शस्त्रा-गार और दो ढलाई करनेके कारखाने थे। हैदराबादमें उनकी लाइनोंके पासवाले शस्त्रगृहमें सैनिक सामग्री भरी थी और ढलाईके कारखानेमें पीतलकी बहुत सी तोपें थीं जो नई-नई ढाली गई थीं। इन तोपोंको अंग्रेजी तोपखानेके अफ़सर उतनी ही बढ़िया और अच्छी बनी हुई समझते थे जितनी कि इसके पहले तक उन्होंने देखी थीं। वे तलवारें, फ़ौजी बन्दूकें और पिस्तौलें भी बनाते थे। फ्रांसीसियोंको हमेशा अच्छी तनख्वाह मिलती थी; और देशी सेनामें काम करनेवालों* की अपेक्षा उनके कपड़े साफ़ सुथरे और उनका अनुशासन अधिक उत्कृष्ट था"। यह स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ता है कि यदि केन्द्रीय मराठा सरकार में अपने युद्धका संगठन और मशीनोंका संचालन करनेके लिए आवश्यक पूर्वदर्शिता एवं धैर्य होता, तो वे अंग्रेजोंके बढ़ावका सफलतापूर्वक अवरोध करने में समर्थ हो गये होते। पर इसके लिए एक सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली का होना नितान्त आवश्यक है, जिसके विषयमें मैं अब बताऊंगा।

७. संगठन का अभाव.

हमारे पतन का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण रहा है, हमारे हर एक कार्यमें संगठन अथवा प्रणालीका पूर्ण अभाव, फिर वह कार्य चाहे सरकारी पदसे सम्बन्धित हो या विभागसे या शत्रुके विरुद्ध होनेवाले युद्धसे। साधारणतः सेनाका संचालन एक व्यक्तिके हाथमें नहीं होता था। कार्य और शक्ति का विभाजन न था और कर्त्तव्यों का स्पष्ट रूपसे निरूपण न किया जाता था। काम करनेकी कोई विधि न थी, कोई प्रणाली न थी, कोई नियम न था। मराठोंके साथ विशेष रूपसे यह बात थी, क्योंकि वे स्वभावसे ही अनुशासनमें रहना पसंद नहीं करते और न ही सहयोगके साथ कोई काम करना चाहते हैं। हर एक की अपनी अलग-अलग ढपली और अलग-अलग

* इस्लामी संस्कृति—जनवरी, १९३३

राग होता है। यह एक जातीय दुर्बलता रही है जिसको शिवाजी, बाजीराव प्रथम या माधवराव जैसे प्रभावशाली व्यक्तियोंने केवल कुछ समयके लिए रोक रखा था। सभी भारतीयोंमें बराबर यह कमी रही है कि वे छोटी-छोटी बातों की ओर ठीक से ध्यान नहीं देते और पहलेसे किसी चीजका प्रबन्ध नहीं करते। यदि हम सूक्ष्मरूपसे इस बातकी परीक्षा करें कि राजपूत लोग महमूद गजनवी या मुहम्मद ग़ोरी जैसे आक्रमण-कारियोंके विरुद्ध बार-बार असफल क्यों हुए, या अलाउद्दीन खिलजी, बाबर या अकबर ने बड़ी-बड़ी हिन्दू फ़ौजों को एक चोटमें तितर-बितर क्यों कर दिया, तो यह प्रमुख दोष हमको बराबर दिखाई पड़ेगा, अर्थात् हिन्दुओंकी ओर कभी सेनाकी अध्यक्षता पूर्णरूपसे किसी एक आदमीके हाथमें न रहती थी, और न ही कार्यका स्पष्ट रूपसे विभाजन एवं एकीकरण किया जाता था। अनेक राजपूत राजा एक सामान्य शत्रु से युद्ध करनेके लिए एकत्रित होते थे, उनमेंसे हर एक सम्मान पानेके लिए लालायित रहता था, पर सेनाका प्रधान अध्यक्ष बनकर खतरा मोल लेना न चाहता था। इस सम्बन्धमें पानीपतमें अहमदशाह अब्दालीकी सावधानी स्मरण करने योग्य है। जब कभी मराठोंके साथ सन्धिकी बातचीत करनेके प्रस्ताव उठते या युद्धके प्रबन्धोंमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप होता, तो अहमदशाह हमेशा अपने मित्रोंको याद दिलाता, जैसा कि काशीरायके स्पष्ट शब्दोंसे विदित होता है, "मैं कोई कूटनीतिज्ञ नहीं हूं, मैं तो सिर्फ़ एक सिपाही हूं। इसलिए लड़नेका काम पूरी तौर पर मेरे ऊपर छोड़ दो और सन्धि की बातचीत करनेका अपना काम जैसे तुम्हारा जी चाहे, वैसे करते रहो।" जब कभी मराठे हारे, तब स्थायी रूपसे यह बात दिखाई पड़ेगी कि असफलताका कारण उचित संगठनका अभाव और विभाजित अध्यक्षता (सेनाकी) रही है। मराठा शासन पद्धति और विभिन्न जागीरदारोंके बीच कार्यक्षेत्रोंका विभाजन इस मुख्य दोषके लिए उत्तरदायी रहे हैं। मेरा तात्पर्य है—उनकी केन्द्रीय शक्तिसे अलग हटने की प्रवृत्ति, जिसके विषयमें मैं पहले बता चुका हूं। पूरी सेनाका नेता होनेके लिए सेनाध्यक्षमें सर्वोत्तम गुणोंका होना अपेक्षित है। उसमें इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह अपने नेतृत्व में रहनेवाले सब लोगोंके ऊपर दृढ़ अनुशासन क़ायम रख सके। बाजीराव द्वितीयके अयोग्य हाथोंमें शक्ति आ जानेके बाद मराठा जागीदारोंका संगठन पूरी तरह से नष्ट हो गया। हर एक को एक सामान्य उद्देश्यके लिए संयुक्त होने की आवश्यकता तो दिखाई पड़ती थी, पर दूसरों का बलिदान करके हर एक अपने शरीर को बचानेकी चेष्टा करता था। हालत यहां तक पहुंच गई थी कि जब दूसरे मराठा-युद्धमें, सिन्धिया

और नागपुरके राजाने यशवन्तराव होल्करको आने और अंग्रेजोंके विरुद्ध अपना साथ देनेके लिए आमंत्रित किया, तब जानबूझकर उनकी सहायता करनेके बजाय यशवन्तराव युद्धके परिणाम की प्रतीक्षा करते हुए उससे बिल्कुल अलग ही रहा, और जब सिन्धिया और नागपुरके राजाकी शक्ति को चूर-चूर कर देनेके बाद अंग्रेजोंने सेना सहित यशवन्तरावके विरुद्ध प्रस्थान किया तब कहीं जाकर आखीरमें उसकी आंखें खुलीं और उसने सभी अन्य मराठोंको आने और अपने साथ सम्मिलित होनेके लिए (युद्ध में) करुण शब्दोंमें पत्र लिखे। उसने जो पत्र लिखा वह आदर्शभूत है और उसे मैं यहां ज्योंका त्यों उद्धृत कर रहा हूं: "अभी तक हम सब लोग अपने हिन्दू साम्राज्यकी रक्षा करनेके लिए एक होकर कार्य करते रहे हैं; पर हालमें, पारिवारिक झगड़ोंके कारण, हमारे साम्राज्य और हमारे धर्म, दोनों का पतन होने लगा है। जब तक हम सब संगठित नहीं हो जाते और एक साथ मिलकर कार्य नहीं करते तब तक उनका अन्तिम विनाश रोका नहीं जा सकता। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मैं जो कुछ कर सकता हूं वह सब कर रहा हूं और मेरी यह शपथ है कि आजीवन इस कामको करता रहूंगा। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हू कि वह मेरी सहायता करे। परन्तु अकेले दम ऐसा करनेसे कोई लाभ नहीं जब कि आप सबलोग दर्शकोंकी तरह हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें, और हर एक अपनी व्यक्तिगत रुचिको देखता रहे। अपने साम्राज्य एवं धर्मकी रक्षाके लिए तुम सबको संगठित होकर कार्य करना चाहिए।" पर इस अपील के लिए, जिसकी स्वयं उसने एक वर्ष पूर्व उपेक्षा की थी, बहुत देर हो चुकी थी और अब बिगड़े हुए मामलोंके बननेकी कोई सम्भावना न थी।

८. मराठा तथा अंग्रेज कर्मचारी एक दूसरेके विपरीत.

इतिहासको बहुधा ऐसी आकस्मिक परिस्थितियों पर विचार करना पड़ता है जिनका कारण बताना साधारणतः मानव-तर्ककी शक्तिसे परेकी वस्तु होती है। उसी तरहसे मैं मराठा राज्यके मामलोंकी उस बातको नहीं छोड़ सकता जो आमतौर से एक अप्रत्याशित संयोग कही जाती है। चाहे कुछ भी हो, चूंकि मराठोंका पतन १८वीं शताब्दीके अन्त और १९वीं शताब्दीके आरम्भमें होता है, इसलिए मराठों और अंग्रेजोंके सम्बन्धित कर्मचारियोंका अन्तर और भी अधिक चित्ताकर्षक हो जाता है। जब एक ओर यह बात मानी जा सकती है कि संगठन और विज्ञान एवं अस्त्र-शस्त्र-प्रयोगकी कुशलतामें मराठे अंग्रेजोसे बहुत हीन थे, तब दूसरी ओर हमें अनिवार्य

रूपसे इस बातका भी स्मरण रखना चाहिए कि मराठे उस समय भारत की किसी भी अन्य शक्ति या रियासतसे किसी तरह कम न थे, बल्कि बहुत बढ़कर थे। मौक़ेकी बात सिर्फ़ इतनी ही कही जा सकती है कि इसके पहले कि मराठोंको जागीरदारोंकी छितरी हुई स्थितिका सुधार करने और एक चतुर प्रशासकके नेतृत्वमें उनका दृढ़ी-करण करनेका समय मिल सके, उन्हें अंग्रेज़ों जैसी एक भयंकर शक्तिका मुक़ाबला करना पड़ा, जो उनसे विज्ञान, संविधान, एकता और नाविक प्रभुता, सभीमें मज़बूत थी। १७९४ और १८०० के बीच मराठा राज्यके अधिकांश अनुभवी और योग्य व्यक्ति मृत्युके शिकार हुए। वृद्ध रामशास्त्री पहले ही ११ नवम्बर १७८९ को स्वर्ग सिधार चुका था। महादाजी सिन्धिया की मृत्यु १२ फ़रवरी १७९४ को हुई। हरीपन्त फड़के की उसके चार महीने बाद (१९ जून १७९४) और अहल्या बाई की उसके एक वर्ष बाद (१३ अगस्त, १७९५ को) हुई। नवयुवक पेशवा माधवराव, जो जन्मसे ही पूरे राष्ट्र के आनन्द एवं आशा का केन्द्र था, २७ अक्टूबर १७९५ को अकस्मात् अपने राजप्रासाद के छज्जेसे गिरकर मर गया। इसके बाद १५ अगस्त १७९७ को तुकोजी होल्कर और १८ सितम्बर १७९९ को परशुराम भाऊ पटवर्धन और सबसे बादमें १३ मार्च १८०० को नाना फड़नीस की, मृत्युने, शिवाजी द्वारा संस्थापित मराठा स्वराज्य के अन्तिम अध्यायको बंद कर दिया।

ठीक ऐसे समयमें जबकि मृत्युने यह विप्लव मचा रखा था, राज्यकी सर्वोच्च शक्ति एक अयोग्य और विवेकशून्य तथा अत्यधिक स्वार्थी पेशवा, बाजीराव द्वितीयके हाथों में आ पड़ी, जिसमें उस कार्यको करनेकी तनिक भी क्षमता न थी जो कि उसके सिर आ पड़ा था। उसने उन लोगोंके ऊपर विश्वास नहीं किया जो प्राचीन शासन-पद्धति के अन्तर्गत पले थे। उनके स्थान पर उसने नीची जातिके निकम्मे लोगोंमें से, स्वार्थी पुरोहितों या सरजीराव घटगे (Sarjerao Ghatge) जैसे षड्यंत्रकारी नये-नये दौलतमन्द लोगोंमें से अपने सलाहकार चुने जिनके काले कारनामोंके बारे में जितना कम कहा जाय उतना ही अच्छा है। ओछे दिमाग़ वाले और चरित्रहीन व्यक्तियोंसे घिरा हुआ बाजीराव जैसा दुराचारी भला अंग्रेज़ोंकी तरफ़के झुंडके झुंड पदाधिकारियोंका, जो अपने समयके प्रभावशाली व्यक्ति थे, कैसे मुक़ाबला कर सकता था? गवर्नर-जेनरल लॉर्ड वेलेज़ली और उसके दो भाई आर्थर और हेनरी वेलेज़ली, असाधारण योग्यता तथा बुद्धिवाले व्यक्ति थे। आर्थर वेलेज़ली (बादको ड्यूक ऑफ़ वेलिंगटन) को तो आगे चलकर नेपोलियन का विजेता होनेका सौभाग्य

मिलना था। यदि हम दूसरे नम्बर पर आनेवाले जेंकिस, लेक और तमाम और लोगोंका ज़िक्र न करें, तब भी माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिस्टन, सर जॉन मालकॉम, सर बेरी क्लोज (Sir Barry Close), कर्नल कोलिन्स, जोनाथन डन्कन और थोड़े दिन बाद सर टॉमस मुनरो आदि सभीने अपने पीछे जो यश छोड़ा वह अतुलनीय है। जिस जातिमें एजेन्टोंकी तरहसे काम करनेके लिए ऐसे-ऐसे योग्य व्यक्ति हों उसके लिए किसी समयमें भी सफलता प्राप्त करना निश्चित है। दो शताब्दियोंके मिलान के समय भारतकी राजनीतिमें इतना महान् अन्तर क्यों दिखाई देता है, इसकी व्याख्या करना कठिन है। उसके लिए तो सिर्फ़ एक कारण बताया जा सकता है। वह है—भाग्य, जिसको «भगवद् गीता» के महान् दर्शनमें दृढ़ताके साथ प्रत्येक मानवीय व्यापार* का पांचवां कारण स्वीकार किया गया है। मराठोंने अपनी जीवन-वृत्ति में अनेक कठोर संकटोंको पार किया था। शिवाजी महान्के बाद उसका अयोग्य पुत्र गद्दी पर बैठा जिसने क़रीब-क़रीब पूरा राज्य खो दिया; औरंगज़ेब की मृत्युसे एक दूसरा संकट पैदा हो गया—वह था घरेलू युद्ध। ताराबाई की मूर्खतापूर्ण महत्वाकांक्षा ने शाहूकी मृत्युसे उत्पन्न होनेवाली मुसीबतोंको अकारण ही बढ़ा दिया। यहां तक कि पानीपतकी लड़ाई भी भाग्यक्रमके इस तत्वसे रहित न थी। पेशवा माधवराव प्रथमकी असामयिक मृत्युने वह अन्तिम महासंकट उत्पन्न कर दिया जिसने मराठों के पूरे राजनीतिक भवनको क़रीब-क़रीब तोड़ दिया। इंगलैंड का दीर्घकालीन इतिहास भी भाग्यचक्रके इस तत्वसे परे नहीं है, जिसने उसके अस्तित्वके विभिन्न युगोंमें संकट उत्पन्न किये हैं।

६. धर्म की मिथ्या धारणा.

पर हमारे लिए जांच करनेका एक रोचक विषय यह भी है कि उस वैज्ञानिक प्रगतिके साथ-साथ, जो हर जगह और हर समय एक राष्ट्र के अस्तित्वके लिए इतनी आवश्यक है, क़दम बढ़ानेमें हम असफल क्यों हुए। हम हिन्दुओंने अतीतमें महान् सफलताएँ प्राप्त कर ली हैं। एक निश्चित समय तक भारतमें कला और विज्ञानका अस्तित्व बना रहा और उनकी उन्नति हुई, जैसे हिन्दू और मुस्लिम कालोंकी भवन-निर्माण कला, हमारे बढ़िया से बढ़िया कपड़े, हमारी कलाएँ और साहित्य, गणित विद्या तथा

* अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ।।

ज्योतिष विद्या में हमारी उन्नति, हमारा पुरातन सामुद्रिक व्यापार आदि अध्ययन एवं अन्वेषणकी उचित प्रवृत्तिके बिना सम्भव नहीं थे। वह प्रवृत्ति हमने कब और कैसे खो दी, यह बात विचारणीय है। मैं सोचता हूं कि १३वीं शताब्दीका अन्त होते-होते, अर्थात् लगभग रामदेवराव और उसके महामंत्री हेमाद्रि के समयमें सामान्य रूपसे पहली बार हमारे समाजका ध्यान धार्मिक गुणकी मिथ्या धारणा, अर्थात अंध-विश्वासपूर्ण आचरणकी ओर लगा। फलस्वरूप जातिके बन्धन कठोर होने लगे, सुख और मोक्षके एकमात्र साधनके रूपमें हमारे ऊपर अनेक धार्मिक रीतियां लाद दी गईं और हजारों छोटे-छोटे नियम और अभ्यास आरम्भ कर दिये गये जो एक प्रगतिशील समाजकी भौतिक रुचियोंके पूर्णतया विरोधी थे। अलाउद्दीन पहला मुसलमान था जिसने नर्मदा को पार करके दक्षिण पर आक्रमण किया और १४वीं शताब्दीके आरम्भ में देवगिरिके यादवोंकी स्वतंत्रता का नाश किया। मैं इसे भारतीय इतिहासकी एक महत्वपूर्ण घटना समझता हूँ, क्योंकि इसके बादसे ही समाज और राजनीतिकी पुरानी व्यवस्था बहुत बदल गई, और उसकी जगह पर अनुचित ढंगकी नई पद्धति आने लगी।

यादव राजाओंका महामंत्री हेमाद्रि एक विद्वान् पंडित और संस्कृत विद्याका संरक्षक था और उसने अपने अमित प्रभाव, पांडित्य एवं शक्तिका प्रयोग, जिसे मैं समाज और धर्मकी पूर्ण क्रांति कह सकता हूं, करनेके लिए किया। उसने कई वर्षों तक बहुतसे पंडितोंको नौकर रखा और उनकी सहायता से पुराने «शास्त्रों» तथा प्रच-लित रीतियोंके आधार पर अपनी महान् रचना का संकलन किया जो «चतुर्वर्ग चिन्तामणि» कहलाती है। इस विस्तृत संकलनके चार भाग हैं, जिनके नाम हैं, (१) «व्रत-खंड» (विभिन्न देवताओं के प्रति धार्मिक व्रत)। (२) «धन-खंड» (ब्राह्मण पुरोहितोंको दान) (३) «तीर्थ-खंड» (तीर्थ स्थानों की यात्रा) और (४) «मोक्ष-खंड» (मोक्षकी प्राप्ति)। इनके अन्दर व्यावहारिक रूपसे एक हिन्दूका पूरा जीवन आ जाता है। अत्यन्त व्यावहारिक पुरुष होनेके कारण, हेमाद्रिने जीवनकी अनेक कलाओंमें भी क्रांति पैदा कर दी। उसने भवनों तथा मन्दिरोंके निर्माणकी एक नई शैली को जन्म दिया, जो थोड़े दिनों पहले तक पूरे महाराष्ट्रमें प्रचलित थी, और उसीने देवनागरी अक्षरों को तेजीके साथ लिखनेकी एक नई शैली चलाई जो अब «मोदी» लिखाई कहलाती है। यदि हम हेमाद्रिके इस विशाल संग्रहकी परीक्षा करें, तो हम देखेंगे कि उसने सब मिलाकर लगभग २,००० रीतियां या व्रत, पुनरुक्तियां, प्रेतात्माओंको भगानेके लिए

मंत्र, तपस्या और दण्ड, प्रार्थना और चिकित्सा, विभिन्न प्रकारके दान और भेंटों की व्यवस्था की है जिनकी चर्चा यहां करने की आवश्यकता नहीं। ऐसा इसलिए था कि यदि समाजका प्रत्येक सदस्य उन सबका अभ्यास करे तो उसे साल भर प्रतिदिन उनमें से कम से कम पांच या सात बातें करनी पड़ें। विभिन्न देवताओं के सुविस्तृत वर्णन दिये हैं, जैसे यह दिया है कि उनको किस प्रकार सन्तुष्ट किया जाय, उन्हें कौनसे खाद्य पदार्थ रुचते हैं, प्रत्येक देवता की उपासना करनेमें ब्रह्मभोज कैसे होना चाहिए। इन सबका तात्पर्य यह था कि लोगोंका समय और शक्ति धार्मिक गुण तथा आत्म-मोक्ष प्राप्त करनेके साधनोंमें लगी रहे। फल यह हुआ कि लोगोंको जीवनके साधारण व्यापारोंकी ओर ध्यान देनेका समय न रहा, और वे धीरे-धीरे इस बातको पूरी तरह से भूलने लगे कि उनके सांसारिक कर्तव्य भी कुछ हैं। विदेशोंकी यात्रा तक निषिद्ध कर दी गई।

हेमाद्रि के पश्चात् लगभग ३०० वर्षोंमें इस संकलनका प्रभाव लोगोंके मस्तिष्क को अध्ययन तथा प्रगतिके पथसे हटाता रहा। वास्तवमें, उस पद्धतिके चिह्न हमारे अपने समय तकमें प्राप्त होते हैं। १४ वीं शताब्दीसे जीवनके दो मुख्य आदर्श, भारत में लोगोंके मस्तिष्क को प्रभावित करते रहे हैं—एक तो धार्मिक रीतियोंका आदर्श जिसकी चर्चा अभी की जा चुकी है, जिसे मैंने हेमाद्रि की विचार-धारा (School of Hemadri) का नाम दिया है, यद्यपि दूसरे सूबोंके अनेक अन्य विद्वान् तथा प्रसिद्ध लेखकोंने भी उसी दिशा में काम किया है, जैसे शूलपाणि उपाध्याय (Shulapani Upadhyaya) और रघुनन्दन भट्टाचार्य, और उसी तरहसे बनारसके भट्ट परिवार के बड़े-बड़े वकील लोग, जिनके नाम हैं— नारायण भट्ट, कमलाकर भट्ट और नीलकंठ। इन सभी ने, जैसा मैं बता चुका हूं, जीवनका एक आदर्श निर्धारित किया, जिसको पुरोहितोंके उच्च वर्ग ने अधिकांशमें चुन लिया। दूसरा आदर्श जिसको निम्नवर्गों अथवा अशिक्षित जनसमूह ने मुख्य रूपसे अपनाया, वही था जिसका प्रतिनिधित्व कबीर, नानक, एकनाथ और चैतन्य जैसे महात्माओंने किया, जिनका विषय था «भागवत धर्म» अथवा «भक्ति» सम्प्रदाय, अर्थात् भक्ति और प्रार्थना। उनका उद्देश्य था सारे धार्मिक विचारोंको संस्कृतसे लेकर बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत करना, हर जातिके लोगोंके बीच समानता और विश्वव्यापी बन्धुत्व की भावना उत्पन्न करना, और यह उपदेश देना कि ईश्वर के प्रति विनम्र होकर सच्ची निष्ठा रखना ही मोक्षका एक मात्र साधन है। दोनों आदर्शोंने लोगोंके विचारोंको पदार्थ

विज्ञानोंके मौलिक अध्ययनसे दूर रखा। मेरी रायमें तो हमारे अन्धकार युगोंका उदय लगभग उसी समय हुआ जब योरोपमें उनका अन्त हुआ।

जिस समय भारतमें धार्मिक पुनरुत्थान के लिए आन्दोलन हुआ, उसी समय योरोपमें भी उस तरहका एक आन्दोलन हुआ, जिसका वर्णन रानाडे ने किया है, पर वहां वह प्राचीन से नयमें परिवर्तन समझा गया, जैसा कि हमें लूथर और बेकन जैसे पुरुषोंके जीवनसे पता चलता है। योरोपमें धर्मसुधार विद्या के पुनर्जन्मके बाद हुआ और उसने विज्ञान तथा उन्नतिकी ओर ध्यान देनेसे रोका नहीं। शिवाजी से सौ वर्ष पहले, सर टोमस मोरने इंगलैंडमें प्रगति और शिक्षा की नई दिशाएँ निर्धारित कीं। मोरसे कुछ वर्षों पूर्व, कोलम्बस तथा अन्य लोगोंने, गणितशास्त्र और भूगोलकी सहायता से, तमाम नई-नई खोजें की थीं और संसार भरमें सामुद्रिक यात्राएँ आरम्भ की थीं। ज्ञानकी वृद्धि करने और लोगोंके मस्तिष्कोंसे अन्धविश्वास हटानेके लिए मुद्रणकला का उदय हो गया था। उस समय योरोपमें, साधारण शिक्षा, भारतमें प्रचलित शिक्षा की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट एवं अधिक व्यावहारिक ढंगकी थी। पूना के «भारत इतिहास मंडल» द्वारा मुद्रित पुस्तकोंमें से एकमें शिवाजी के समयके शास्त्रियों और पंडितोंकी एक सूची प्रकाशित हुई है, पर उसके अन्दर ऐसा नाम कोई भी नहीं आता जो ज्ञानकी गहराई और व्यावहारिक उपयोगिता में, बेकन या उस समयके किसी दूसरे योरोपीय विद्वान् की बराबरी कर सके। निस्सन्देह सूचीमें बहुतसे प्रमुख नाम हैं; पर वे सभी पुराने शास्त्रीय ढंगके हैं जो शाब्दिक व्याकरण और «घाट-पाट» तरहके तर्कसे आगे शायद ही कभी बढ़ते हों। योरोपमें शिक्षा ने विचार और जीवनमें उदारता पैदा की, लोगोंको साहसी, क्रियाशील और वीर बनाया, जबकि भारतमें ऊपर बताये हुए दोनों आदर्शोंके अन्तर्गत, लोग अज्ञान और अन्धविश्वासमें डूब रहे, आत्मसंतोषी और भाग्यवादी बन रहे और इह-लोकमें सुधार करनेकी परवाह किये बिना परलोकमें मोक्ष प्राप्त करने की चेष्टा करते रहे।

१०. अंग्रेजोंकी विशिष्ट नीति.

अंग्रेजोंके जिज्ञासु स्वभाव और विशिष्ट कूटनीति ने मराठोंके मुकाबलेमें उनकी (अंग्रेजोंकी) अपनी शक्ति बहुत अधिक बढ़ा दी थी। प्रथम मराठा-युद्धके जमानेमें अंग्रेजोंको मराठा राज, उसकी सेनाओं, विभिन्न जागीरदारोंकी तुलनात्मक योग्यता, उनके पारस्परिक सम्बन्ध और उनके पारिवारिक झगड़ोंके सम्बन्धमें एक-एक बात

पूरी तरहसे मालूम थी। अंग्रेज लोग अच्छी तरहसे जानते थे कि कौन लोग बाहरी प्रभावों में आ सकते हैं और कौन लोग पेशवाओंके प्रति दृढ़-भक्ति रखते हैं। जब उन्होंने युद्ध आरम्भ किया, वे किसी भी सम्भावित घटना के लिए तैयार थे। हॉर्नबी, हेस्टिंग्ज, मॉस्टिन, ऐन्डरसन, अप्टन, मैलट, गोडार्ड और कुछ दूसरे लोगोंको छोड़कर जो प्रत्यक्षरूपसे लड़ाईमें मदद कर रहे थे, तमाम और विश्वसनीय अंग्रेज एजेन्ट थे, जो व्यापारिक अभिप्रायोंके लिए देशमें भ्रमण करते रहते थे, और साथ ही साथ हर तरह की सूचनाएँ प्राप्त किया करते थे, जैसे उदाहरणके लिए मराठोंके क़िले, उनकी स्थिति, उनके अन्दर जानेके रास्ते, लोगोंकी दशा, स्थानीय झगड़े और राजनीतिक घटनाओं आदिके विषयमें। इससे पता चलता है कि अंग्रेज लोग कितने जिज्ञासु होते हैं और किस सावधानीके साथ वे सारी लाभदायक सूचनाओंका अध्ययन व संग्रह करते हैं और तुरन्त उसको उचित अधिकारियों के पास पहुंचा देते हैं। नारायणरावकी मृत्युके समय मॉस्टिन पूना में मौजूद था, और सात वर्षों तक वह बम्बई, कलकत्ता और मद्रास सन्देशे भेज-भेजकर लाभदायक सूचना पहुंचाता रहा। सच तो यह है कि उस आक्रमणकारी युद्धको छिड़वानेमें उसीका मुख्य हाथ था। दूसरी तरफ़, मराठा दलको अंग्रेज लोगोंके कारनामों की प्रायः कोई सूचना न थी। उन्हें इंगलैंडके विषयमें, अंग्रेजी ढंगकी शासनपद्धतिके विषयमें, भारत और उससे बाहर उनकी बस्तियों के बारेमें, उनके चरित्र और प्रवृत्तियों, उनके अस्त्र-शस्त्र और युद्धसामग्रीके विषयमें कोई ज्ञान न था। शायद नाना फड़नीस तक इन सब बातोंको न जानता था। इस तरह जब अंग्रेजोंको इन सारी बातोंकी पूरी जानकारी थी, तो मराठे उससे बिलकुल अनभिज्ञ थे।

मराठोंके शासनकालमें ऐसे किसी हिन्दूका उदाहरण नहीं मिलता जिसने अंग्रेजी सीखी हो और खुलकर उस भाषामें बातचीत और पत्र-व्यवहार कर सकता हो तथा अंग्रेजोंकी योजनाओं, उनके इरादों और गतियोंकी ठीक-ठीक सूचना प्राप्त कर सकता हो। पर अंग्रेजोंकी तरफ़ बहुतसे लोग ऐसे थे जिन्होंने भारतीय भाषाएँ सीख ली थीं और उनमें अच्छी तरहसे बातचीत कर लेते थे। वेलेजली के समयमें एक अंग्रेज अफ़सर ने कलकत्ते में पहले से तैयार किये बिना मराठी में एक भाषण दिया। इस घटनासे मराठोंकी अन्तर्वर्ती हीनता का पता चलता है और शासकोंके रूपमें उनकी असफलता का कारण ज्ञात हो जाता है। नाना फड़नीस भी न केवल बाहरी दुनिया, वरन भारत वर्ष तकके भूगोलसे अनभिज्ञ था। जिन मानचित्रोंका प्रयोग वह उन दिनों करता था

वे विद्यमान हैं, और मनमाने ढंगसे बने हुए अशुद्ध और बेकार हैं। मिशनरियोंने भारतमें मुद्रणकला का प्रारम्भ बहुत पहले कर दिया था। अंग्रेजीका पहला समाचार-पत्र कलकत्ते में १८वीं सदीके नवें दशकके आरम्भ से चला; और सबसे पुराने भारतीय वर्नाक्यूलर टाइप और छपी हुई पुस्तकें १८वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें ईसाई मिशनोंकी थीं। जहां तक यात्राका सम्बन्ध है, १८वीं शताब्दीमें भारतीयोंके योरोप जानेकी सिर्फ़ एक जगह चर्चा मिलती है, वह है राघोबा के एजेन्टों, मनिआर पारसी और हनुमन्तराव नामक एक हिन्दूकी योरोप यात्रा, जिन्हें उसने १७८० के लगभग पूना के प्रबन्धक दलके विरुद्ध अंग्रेजोंकी सहायता प्राप्त करनेके लिए इंगलैंड भेजा था। १७८२ में एडमन्ड बर्क द्वारा राघोबा के नाम लिखा हुआ एक पत्र मिला है, जिसमें इस बातकी चर्चा मिलती है कि हिन्दू हनुमन्तराव ब्रिटेनके कठोरतम मौसममें अपने धर्मके कठोर नियमोंके कारण क़रीब-क़रीब मरणासन्न हो रहा था। राजा राममोहन राय शायद पहले नामी हिन्दू थे जो योरोप देखनेके लिए भारतसे गये। यह यात्रा उन्होंने १८३० में की जबकि भाप से चलने वाले जहाजोंका प्रयोग किया जाने लगा था। दूसरी ओर अंग्रेज लोग राममोहन राय से ३०० वर्ष पहले से पूरी दुनिया में घूमते रहे थे। वास्तवमें यदि हम अंग्रेजों द्वारा किये गये जीवन और धनके उस महान् त्याग पर विचार करें जो उन्होंने तीन शताब्दियोंके उस समयमें किया जबकि सामुद्रिक यात्रा सबसे अधिक ख़तरनाक थी, तो विश्वके ऊपर उन्होंने जो प्रभुता प्राप्त कर ली है वह किसी तरहसे अनुचित नहीं जान पड़ती। इस बातमें भी मराठे शोचनीय ढंगसे असफल हुए।

११. जाति कहां तक हमारे पतनके लिए उत्तरदायी है? अंग्रेजोंकी विशेष स्थिति.

बहुतसे भारतीय और विदेशी लेखकोंने जातीय ईर्ष्या और सामाजिक पक्षपातको मराठोंके पतनका प्रत्यक्ष कारण बताया है। निश्चित तथ्यों और आंकड़ों द्वारा पोषित न होने के कारण उनका तर्क इतना सन्देहपूर्ण है कि हर एक पाठकको उसके ऊपर विश्वास नहीं होता। निस्सन्देह भारतवर्ष एक जाति-प्रधान देश है और जैसा मैं पर्याप्त मात्रा में दिखा चुका हूं, निश्चय ही इस दोषके कारण उसे विभिन्न तरीक़ोंसे कष्ट झेलने पड़े हैं। परन्तु उसके धार्मिक अंगको छोड़कर मैं यह समझने में असमर्थ रहा हूं कि मराठोंके ऊपर प्रत्यक्षरूप से और विशेष रूपसे जाति का प्रभाव किस तरह से पड़ा है। सामान्य रूपसे जाति की हानियां चाहे कुछ भी क्यों न हों, मेरी राय तो

यह है कि इस सम्बन्धमें हम उन दिनों का अनुमान अपनी वर्तमान दशाओंके अनुभव से लगाने बैठ जाते हैं। जातिने मराठोंको एक शक्तिशाली एवं स्वतंत्र राज्यका निर्माण करने और लगभग १५० वर्षों तक सैनिक बल तथा नीति के द्वारा उसको क़ायम रखने से नहीं रोका। सच तो यह है कि शिवाजी अथवा माधवराव जैसे बुद्धिमान् एवं प्रमुख व्यक्तियों ने जातिपांत के बन्धनोंसे अपने न्याय और पक्षपातरहित बर्तावमें कभी बाधा नहीं पहुंचने दी। एक पत्र मिलता है जिसमें बिना किसी त्रुटिके उस समय प्रचलित भावकी अभिव्यक्ति इन शब्दोंमें जान पड़ती है: "एक शासनका संचालन बड़े और छोटे, अच्छे और बुरे, हर प्रकारके लोगों द्वारा होता है, पर उनमें जातिके कारण किसी तरहका भेद भाव न किया जाना चाहिए। राज्यकी सन्तानके रूपमें सभी का दर्जा बराबर है; जो राज्यकी सेवा अच्छी तरह से करता है उसकी पद-वृद्धि होनी चाहिए; सबकी तरफ़ समान रूपसे ध्यान दिया जाना चाहिए और दयापूर्ण बर्ताव होना चाहिए। जो राज्यको हानि पहुंचाते हैं, उन्हें जातिके भेदभाव बिना दंड दिया जाना चाहिए। यही एक मात्र उपाय है जिससे प्रशासनका काम निष्कंटक रूपमें चल सकता है। आज्ञाकारी तथा राजभक्त अनुचरोंके रूपमें हम तो केवल इतना ही जानते हैं कि सभी जातियां, चाहें वे देशस्थ हों या कोंकणस्थ, कर्हाद, प्रभू, शेन्विस या मराठे, सभी समान रूपसे राज्यके हैं और राज्यके अधिष्ठाता के ऊपर, अपने पिताके रूपमें, सभीका समान अधिकार है। उनकी योग्यता का मापदंड केवल मात्र उनकी सेवा होनी चाहिए, उनकी जाति* नहीं"।

सब कुछ देखते हुए, मैं अविवेकपूर्ण ढंगसे, प्रारम्भिक पेशवाओंको ब्राह्मणोंके प्रति अनुचित पक्षपात दिखानेके लिए दोषी ठहरानेको तैयार नहीं हूं। यदि हम ठीक-ठीक गणना करें, तो देखेंगे कि पेशवाओंके शासन कालमें जिन परिवारोंने ख्याति प्राप्त की, निश्चय ही उनमें से ७५% परिवार ब्राह्मणोंके थे। निस्सन्देह यह बात सच है कि ठीक उसी तरह जैसे कि मराठा जागीरदारोंकी अधिकृत रियासतोंमें बहुतसे मराठा परिवारोंने विशेष नाम पैदा किया, बहुसंख्यक ब्राह्मण परिवार भी विशिष्ट पदको प्राप्त हुए, विशेष रूपसे पेशवाओंके शासन कालके अन्तिम भाग में। पर यह तो केवल मानव स्वभाव है। यदि मेरे हाथमें शक्ति है और कोई काम करानेके लिए मुझे किसी को नौकर रखना है तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि एक ऐसे आदमीको चुनूंगा

* ऐतिहासिक पत्रव्यवहार ले. १०० च्या शेवटीं।

जिसे मैं व्यक्तिगत रूपसे जानता हूं और जिसके ऊपर विश्वास कर सकता हूं। जब तक इस बातके उदाहरण न मिलें कि दूसरी जातिके योग्य उम्मीदवारों को छोड़कर अयोग्य ब्राह्मणोंको नौकरियां दी गईं, तब तक सिर्फ़ इसलिए उनकी निन्दा करना कि उन्होंने एक जातिके लोगों को नौकर रखा, उचित नहीं जान पड़ता। शायद अन्तिम पेशवा, जिसका एक मात्र चिन्त्य विषय था—ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना और अपने राज्यकी सेवा करनेके सर्वोत्कृष्ट साधनके रूपमें धार्मिक गुणकी प्राप्ति करना—के शासनकाल के अतिरिक्त, मुझे ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिला जबकि पेशवाओं ने अपनी जातिके लोगोंकी पद-वृद्धि करनेके लिए दूसरी जातिके लोगोंको जान-बूझ कर दबा दिया हो। शिवाजीने मोरे, मोहिते और घोरपदे आदि कुछ बड़े मराठा परिवारोंको सख्तीके साथ दबा दिया था और प्रभुओं तथा ब्राह्मणोंको शक्तिशाली और प्रभावशाली बनाया था। वह रामदास तथा अन्य योग्य ब्राह्मणोंके प्रति उच्चतम श्रद्धा रखता था। क्या हमें इसमें किसी तरह का जाति-पक्षपात देख पड़ता है? यह ध्यान देने योग्य बात है कि नारायणरावकी हत्या के लिए दोषी ठहराये जानेवाले ४९ व्यक्तियों में से, २४ हत पेशवाकी जातिके दक्षिणी ब्राह्मण, २ सारस्वत, ३ प्रभु, ६ मराठे, १ मराठा नौकरानी, ५ मुसलमान, और ८ उत्तरी हिन्दू थे। इस विश्लेषण से यह बात मालूम हो जायगी कि जहां तक प्रशासनका सम्बन्ध था, जातिका कोई महत्वपूर्ण स्थान न था।

यह सभी जानते हैं कि इब्राहिमखां गर्दी ने पानीपतके मैदानमें कितनी सच्चाई के साथ अपने सहधर्मी अहमदशाह अब्दालीके विरुद्ध भाऊ साहेबकी सेवा की थी। एक गर्दी नेता, मुहम्मद यूसुफ़, जिसने नारायणरावकी हत्या की थी, पेशवाओंकी तरफ़से एक ताजखां रुहेला के द्वारा पकड़ा गया था। आगरेमें एक मुसलमान «फ़र्राश» ने किस प्रकार शिवाजी की जान बचाई थी, यह मैं पहले बता चुका हूं। यदि शिवाजी के समयके कुछ मराठा परिवारों ने आगे चलकर अपनी महत्ता खो दी तो वह इसलिए नहीं कि पेशवाओंने जानबूझकर उन्हे दबा दिया। शिवाजी के समयमें तमाम ब्राह्मण परिवारों को भी समान रूपसे कष्ट उठाने पड़े—पिंगले, हनुमन्ते, अमात्य, सचिव, प्रतिनिधि और इसी तरहके तमाम परिवारोंके उत्तराधिकारियों में व्यक्तिगत योग्यता का अभाव होते ही, ये सारेके सारे परिवार एक तरहसे पिछड़ गये।

वास्तवमें, मराठा शासनपद्धति विशेषरूपसे सुखद थी, क्योंकि उसके अन्तर्गत

देशके प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह किसी भी जातिका या सामाजिक स्तरका क्यों न हो, अपनी योग्यता प्रदर्शित करनेके लिए बहुत कार्यक्षेत्र प्राप्त था। उन दिनों अपने स्वराज्यसे सब लोगोंको यह व्यावहारिक सुविधा मिलती थी। मैंने अपनी मराठी पुस्तकों में १०० से ऊपर विभिन्न परिवारोंका लेखा दिया है और उनके बारेमें छोटी-छोटी बातोंका जो भी व्योरा मुझे मिल सका, वह सब मैंने दे दिया है। उस वर्णनको पढ़कर यह बात सरलतापूर्वक सिद्ध हो जाती है कि लोगोंको सेवा करने और विशेष योग्यता प्राप्त करनेके लिए समान रूपसे अवसर मिलते थे। व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष और आपसी कलह तो हमेशा ही थे, और हमेशा रहेंगे; पर वे जातिके सिद्धान्त पर आधारित न थे। इतिहास में सिन्धिया और होल्कर पीढ़ी दर-पीढ़ी एक दूसरेके सदा विरोधी रहे हैं, पर किसी तरह भी उनका कारण जाति नहीं बताई जा सकती। यह कहा जाता है कि माधवराव और नारायणराव के शासनकालमें देशस्थ और कोंकणस्थ लोग झगड़ते रहते थे पर आलोचनात्मक परीक्षण करने पर यह बात ठीक नहीं उतरती। मैं दोनों जातियोंके सदस्योंको विपक्षी दलोंके दोनों ओर मजबूतीके साथ सम्बद्ध दिखा सकता हूं। तीन पीढ़ियों तक पेशवा लोग और प्रभु चिटनिस लोगोंके परिवारोंके बीच बड़ी घनिष्टता रही और पेशवाओं ने बहुत हद तक प्रभु चिटनिस लोगोंकी ही बदौलत इतना ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया था।

शिवाजी और उसके बादके समयमें, राज्यकी सबसे बड़ी शक्ति समस्त जातियों का यह सुखद सहयोग था। जब पेशवा पूर्व में बड़ी दूर गया हुआ था और उसकी अनुपस्थितिमें दमजी गायकवाड़ने पूना और सतारा पर आक्रमण किया था, उस समय एक मराठा और प्रभु-सेनापति ने ही पेशवा की स्थितिकी रक्षा की थी। यदि ताराबाई पेशवा बालाजीराव से घृणा करती थी तो अनेक ब्राह्मण उसके विश्वासपात्र थे और अनेक मराठों के प्रति उसे अरुचि भी थी। यदि सखाराम हरी, जो एक प्रभू था, कोंकणस्थ राघोबा का विश्वासी समर्थक था, तो अबजी महादेव सोहनी और मनजी फड़के भी, जो क्रमशः कोंकणस्थ और मराठा थे, उसके पक्के समर्थक थे।

पहले मराठायुद्धके जमानमें लगभग सभी मराठों ने और दूसरे सेनापतियोंने कमसिन पेशवा के प्रति बड़ी निष्ठा और राजभक्तिके साथ राष्ट्रीय हितका समर्थन किया। कर्नाटक और उत्तरके युद्धक्षेत्रोंमें, पानीपत और तेलगांव में, ग्वालियर और दोहदके दुर्गोंके सामने, लालसोत और खर्दा में, बार-बार सभी जातियोंने पेशवाओंके सामान्य-ध्वजके नीचे रह कर समान साहस और पराक्रमके साथ युद्ध किये और बहुधा

एक ब्राह्मणसेनाध्यक्षने ही उनका नेतृत्व ग्रहण किया। मल्हारराव होल्कर जातिका गड़रिया था, पर उसने बाजीराव प्रथम या उसके पुत्रोंके प्रति, जो ब्राह्मण थे, अशिष्टता का व्यवहार कभी नहीं किया। प्रति वर्ष पेशवा बाजीराव प्रथमके मृत्यु दिवस पर पूना में एक भोज होता था, जिसमें सिन्धिया, होल्कर और बाजीराव के अन्य अन्तरंग मित्र आमंत्रित किये जाते थे, और पेशवा के परिवारकी प्रधान स्त्रीको एक ही समय में सबको भोजन परोसना पड़ता था। एक बार ऐसा हुआ कि मल्हारराव अपने कुत्तोंको साथ लेकर भोजन करनेके लिए आया। गोपिका बाई ने, जो अतिथियोंको भोजन परोस रही थीं, मल्हाररावको खानेके कमरेमें कुत्तोंको लानेके लिए मना किया। इस पर उसने जवाब दिया कि अपने कुत्तोंको अपने साथ भोजन कराये बिना वह न खायगा। इसलिए ज्यादा अच्छा यह होगा कि भीतर ब्राह्मणोंके पास जाकर उन्हें भ्रष्ट करनेके बजाय वह बाहर ही बरामदेमें बैठकर अपने कुत्तोंके साथ भोजन कर ले। इस तरहसे बाहर रखे जानेके कारण उसने रत्ती भर बुरा नहीं माना। मराठा कालमें लोग जाति पांतका भेदभाव केवल धार्मिक विषयोंमें मानते थे, पर उनके दैनिक जीवनमें उसका कोई प्रभाव नहीं होता था। अन्तर्जातीय भोजमें आपत्ति और छूनेसे भ्रष्ट हो जानेके भयके ऊपर जोर अभी हालमें उस समयसे दिया जाने लगा है जब से एक जाति दूसरोंसे बड़ी बताई जाने लगी है। इस तरहसे बिना अधिकारके छेड़छाड़ शुरू हो गई है। उन दिनों जातिकी विशिष्टता और हीनताका प्रभाव शुद्ध धार्मिक उत्सवोंमें दिखाई पड़ता था, जीवनके साधारण मामलोंमें नहीं। मैं उस प्रश्नको इसी तरहसे देखता हूं।

पर जाति और सामाजिक बन्धनोंके इस तर्कका परीक्षण दूसरे दृष्टिकोणसे करना आवश्यक है। तमाम लेखकोंने घरेलू झगड़ों और जातिपांतके भेदभावके सम्बन्धमें निरे तर्क जुटा रखे हैं, पर दुनियांके पर्दे पर शायद ही ऐसा कोई पतित राष्ट्र हो, (जिनका इतिहास प्राप्य है) जिसके पतनके कारण वही न हों जो और राष्ट्रोंके हुए हैं, क्योंकि समस्त संसारमें मानव स्वभाव एक जैसा होनेके कारण, मनुष्यकी स्वार्थपरता सदैव दूसरोंके त्याग से लाभ उठानेकी चेष्टा करती है। चाहे कुछ भी हो, भारतवर्ष के मामलेमें हम सिकन्दर महान् द्वारा पोरवके हराये जानेसे लेकर, पेशवाओंके पतन तक या वर्तमान समयके साम्प्रदायिक तनाव तक बराबर इन्हीं कारणोंको बार-बार दुहराते हुए सुनते आये हैं। इन संचित तर्कोंको पेश करना तो सरल है पर उनका खंडन करना कठिन है। मानव क्रिया को सदैव लाभप्रद साहसिक कार्य करनेके लिए

किसी कार्यक्षेत्रकी आवश्यकता होती है, और जब तक राष्ट्रकी रुचियोंके संरक्षक उसके सदस्योंको एक उद्देश्य या कार्य करनेके लिए सुअवसर प्रदान करनेमें समर्थ रहते हैं तब तक उनकी चपल क्रियाशीलता बहिर्मुखी बनी रहेगी और उन्हें आन्तरिक क्षेत्रोंका अतिक्रमण करनेके लिए समय न मिलेगा। इसलिए एक राष्ट्रीय नेताकी महत्ताका मापदंड वे भावी साहसिक कार्य होते हैं जिन्हें वह अपने अनुयायियोंके सम्मुख रख सकता है। मेरी रायमें किसी राष्ट्रकी बहुत कुछ सफलता या असफलता उसके नेताओंकी रचनात्मक कल्पना शक्ति एवं दूरदर्शितापूर्ण प्रबन्धके ऊपर निर्भर होती है। सूक्ष्म परीक्षण करने पर यह पता चलेगा कि शिवाजी ने अस्थायी रूपसे मराठा जातिकी पूर्ण कल्पना शक्तिको बदल दिया था। शताब्दियोंसे इंगलैंड की अंग्रेजी वैधानिक प्रणाली सफल होती आ रही है। इसका कारण यह है कि उस प्रणालीके ही अन्तर्गत एकके बाद एक करके ऐसे योग्य नेताओंकी व्यवस्था है, जो राष्ट्रकी सर्वोत्कृष्ट रुचियोंकी सेवा करते हैं।

फ़ॉरेस्ट द्वारा और «फ़ारसी कैलेन्डरों» के खण्डोंमें, छापे हुए तमाम काग़ज़ोंका सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह बात दिखाई देती है कि अंग्रेज़ लोग किस सावधानी और धूर्तताके साथ न केवल मराठा राज्यके भवनको धीरे-धीरे नष्ट कर रहे थे, बल्कि भारत के अन्य विभिन्न शासकोंको भी नष्ट करनेमें लगे हुए थे। अंग्रेज़ लोग पेशेवर व्यापारी तो थे ही। फिर उनका धर्म और जाति भी विदेशी थी और इंगलैंड से उन्हें मूल रूप में सदैव ज़बर्दस्त समर्थन प्राप्त रहता था। ऐसी दशामें वे लोग आसानीसे उन असंख्य झगड़ोंमें पक्षपातरहित मध्यस्थ बन सकते थे, जो केन्द्रीय मुग़ल शक्तिके नष्ट होनेके बाद उठा ही करते थे। यदि वे किसी आपत्तिजनक साहसिक कार्यमें सफल हो जाते, जैसे प्लासीके मामलेमें, तब तो अच्छा ही था; यदि वे असफल होते, तब भी उनकी कोई विशेष हानि न होती; वे अपनी बढ़ोतरीके लिए चुपचाप उससे अच्छे मौक़ेका इन्तज़ार कर सकते थे, जैसा कि प्रथम मराठायुद्धमें सचमुच हुआ भी। उस समय तक अनेक मराठा सरदारोंका सामान्य उद्देश्य था और उनकी महत्त्वाकांक्षा एवं साहसिक कार्यके लिए सामान्य क्षेत्र था, जिनका उदाहरण पानीपत और खर्दा के स्मरणीय युद्धक्षेत्रोंमें मिलता है, क्योंकि दोनोंमें सब जातियां और सब लोग सामाजिक ईर्ष्या-द्वेषके बिना एक साथ हो गये थे। अतएव में यह नहीं समझ पाता कि मराठा शक्तिका ह्रास करनेमें जाति किस प्रकार सहायक हुई। विजेताओं का यह तरीक़ा होता है कि वे पराजित राष्ट्रके ऊपर जितने भी दोषोंकी कल्पना की

आ सकती है वे सभी लाद देते हैं। पर चूंकि हम हारे हुए लोगोंमें से हैं, अतः हमारे लिए यह जरूरी है कि हमको जो कुछ बताया या सिखाया जाता है, उसे हम उस समय तक अपने गलेके नीचे न उतार लें जब तक प्रमाणके आधार पर हमारा तर्क उसे स्वीकार करनेके लिए तैयार न हो।

१२. प्रमुख मराठा व्यक्ति.

पढ़ते समय जिन विभिन्न प्रकारके मराठों से विद्यार्थियोंकी भेंट होती है उनके चरित्रका निरीक्षण करना उनके लिए जरूरी है। मराठों में बहुतसे शासक, और राजनीतिज्ञ, सैनिक और सेनाध्यक्ष, निर्णायक और वित्तवेत्ता, कवि और लेखक हुए जिनमें कई एक स्त्रियोंने भी नाम पैदा किया। उन्होंने युद्ध किये और लड़ाइयां जीतीं, और बहुधा उन्हें बड़ी कठोर यातनाएँ सहनी पड़ीं जिनका उन्होंने धैर्य और शान्ति के साथ मुक़ाबला किया। क्रूरता या धोखेबाजीके काम करके उन्होंने अपनी जीवन-वृत्तियोंको कलंकित नहीं किया। सच्चे योद्धाओंकी नाईं वे अपने विपक्षियोंका लिहाज करते थे और उनके साथ आदरपूर्ण बर्ताव करते थे। सतारा में आठ साल तक बन्दीगृहमें रहने पर अर्काटके नवाब चांदा साहब के साथ गौरव-पूर्ण व्यवहार किया गया। उन दोनों अंग्रेजों ने जो महादाजी सिन्धिया के साथ बन्धकके रूपमें रहे, अपने साथ किये गये उस सरदार के व्यवहारकी बड़ी प्रशंसा की। जिस समय निजामका मंत्री मुशीर-उल-मुल्क पूनामें क़ैद था, उस समय उसके साथ भी इसी तरहका सम्मानयुक्त बर्ताव किया गया था। सचमुच उनकी कुछ तकलीफ़ें तो बेजगह दया दिखानेके कारण पैदा हुईं, जैसे रघुनाथराव और मनाजी फड़के के मामले में। अंग्रेज लोग ऐसे मामलोंमें उनका काम तमाम कर डालते, जैसा उन्होंने १७७५ में हरी भिडे (Hari Bhide) के साथ किया। उन्होंने राजद्रोहके एक ऐसे अपराधके बदलेमें, जो साबित भी नहीं हो पाया था, उसको तोपसे उड़ा दिया, जबकि चार महीने बाद हरीपन्त फड़के ने गनेश विट्ठल वाग़मेर (Ganesh Vithal Waghmare) को इसी तरह के अपराधके लिए केवल बन्दी बना कर छोड़ दिया था।

मराठा पराक्रम और त्यागके कार्योंको समझनेके लिए कुछ ऐतिहासिक परिवारों की वंशावलियोंके ऊपर एक सरसरी निगाह डाल लेना काफ़ी होगा। उदाहरणके लिए सिन्धिया लोग अथवा पटवर्धन लोग। सतारा के ऐतिहासिक एवं सम्मानित

चिटनीसोंके कायस्थ परिवारने लगातार सात पुश्तों तक योग्य लेखकों और कूटनीतिज्ञोंको जन्म दिया, जो इतिहासका एक अभूतपूर्व तथ्य है, और अपनी ढेर की ढेर «बक्खरों» तथा अन्य रचनाओंके लिए अमर ख्याति प्राप्त कर ली। यदि हम शिवाजी और उसके «गुरु» रामदास को अलग कर दें तब भी मराठा इतिहासमें अलग-अलग पेशोंमें हमें इस तरहके देदीप्यमान नाम मिलेंगे जैसे सन्ताजी घोरपदे और धनजी जाधव, रामचन्द्र नीलकंठ अमात्य और परशुराम त्र्यम्बक, रघूजी भोंसले और त्र्यम्बकराव दभदे, बाजीराव, चिमनाजी अप्पा, और माधवराव नामके पेशवा लोग, दमजी गायकवाड़ और सदाशिव राव भाऊ, रामचन्द्र बाबा और खंडू बल्लाल, महादाजी सिन्धिया और नाना फड़नीस, सखाराम बापू और रामशास्त्री, जीजा बाई, राधाबाई पेशवा, उमाबाई दभदे, अहल्या बाई, झांसीकी लक्ष्मी बाई आदि और भी बहुतसे नाम, जिन्होंने न भुलाई जाने योग्य सफल कृतियोंसे मराठा इतिहासको प्रकाशित कर दिया और शक्तिधारी राष्ट्रके विभिन्न प्रकारके सभी चिन्त्य विषयोंको चतुराईके साथ संभाल लिया। उन्होंने विदेशियोंके साथ अधिकतर समभावसे व्यवहार किया और जैसा सभी जानते हैं, इस बातकी व्यावहारिक शिक्षा देकर कि कुकृत्योंमें शक्तिशाली राजाओंका भी सफलतापूर्वक अवरोध किया जा सकता है, उस अन्धकार को दूर किया जो सर्वत्र छाया हुआ था, और भारतवर्षको प्रेरणा एवं आशा प्रदान की। इस प्रकार शिवाजी महान्का उदाहरण यदि हमारे सम्मुख एक आदर्श नहीं रख सकता, तो कम से कम हमारे लिए एक सीमा निर्धारित कर सकता है, जिसके पीछे हमें किसी तरह भी न जाना चाहिए, पर जिसको पार करनेकी अभिलाषा करनेकी चेष्टा हम निश्चय ही कर सकते हैं।

१३. मराठा-शक्ति के सम्बन्धमें मुनरोके विचार.

अन्तिम मराठा युद्ध आरम्भ होनेके पूर्व ही, सर टॉमस मुनरोने मराठोंके कुछ मुख्य दोषोंकी ओर स्पष्ट रूपसे संकेत किया था। १२ अगस्त, १८१७ को उसने गवर्नर जेनरलको इस प्रकार लिखा:

"जब मैं देशी राज्योंकी दुर्बलता और उनके ऊपर शासन करनेवाले सर्दारोंके चरित्रके ऊपर विचार करता हूं तो मुझे उनकी ओरसे दीर्घकालीन अवरोधकी आशा बहुत कम दिखाई पड़ती है। उनके पास इतनी शक्ति नहीं है कि हमारी सेनाओंको हटा सकें और हमारे राज्य पर लूटमार या हमला करके लड़ाईको ज्यादा

दिनों तक जारी रख सकें। कुछ दिनोंके लिए वे भले आगे बढ़ जायं, पर आराम करने का या लूटमार करनेका समय उन्हें न मिल सकेगा। वे पूरी तरहसे थक जायंगे और पराजित कर दिये जायंगे। यह बात नहीं कि उनके पास द्रव्य साधनों का अभाव हो, या उनके पास आदमी और घोड़े न हों, बल्कि बात यह है कि उनके बीचमें कोई ऐसा नहीं है जिसमें वे विशिष्ट गुण विद्यमान हों जो उन्हें लाभदायक ढंगसे निर्दिष्ट करनेके लिए आवश्यक हैं।

"देशी सरकारोंमें पद्धति या आज्ञाकारिता की इतनी कमी है कि उनके द्रव्य साधनों का पूर्ण उपयोग करनेके लिए जितनी शक्तिकी आवश्यकता है वह उस शक्तिसे कहीं अधिक है जो योरोपकी अधिक व्यवस्थित सरकारोंके अन्तर्गत अपेक्षित हैं। दौलतराव सिन्धिया जिस समय अपनी शक्तिकी चरम सीमा पर था उस समय भी वह भयानक कभी न था। उसके पास जो विशाल साधन थे वे उसके कमजोर हाथोंमें पड़कर बेकार हो गये। लॉर्ड लेकके विरुद्ध होल्करके हमले तो सिन्धिया के हमलोंसे भी कमजोर रहे। उस समयसे (१८०५) होल्कर और सिन्धिया दोनों सरकारोंकी शक्ति इतनी अधिक घट गई है कि यह विश्वास करना कठिन है कि वे हम लोगोंका मुक़ाबला करनेका साहस भी कर सकेंगे। हमारी सरकार की विशिष्टता इतनी अधिक है कि कोई संघर्ष होने पर हमारी विजय निश्चित है।"

१४. अतीत की स्मृतियां.

सचमुच मराठोंकी प्रभुता का अन्त १८०२ में बेसीन की सन्धिसे हुआ। चंद मराठा रियासतें* जिनका अस्तित्व अभी तक है, जैसे मालवा, गुजरात और दक्षिण की रियासतें, वे हमको केवल पूर्व महत्ता की याद दिलाती हैं। जब पेशवा बाजीराव द्वितीय अंग्रेजोंके साथ युद्ध करनेके लिए उकसाया गया, तब पहले तो उन (अंग्रेजों) के मनमें यह प्रवृत्ति पैदा हुई कि मराठा राज्य उसके असली मालिक, सतारा के छत्रपति को पुन: लौटा दिया जाय। पर लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने अन्तिम रूपसे उन सभी प्रतिद्वन्द्वियों को नष्टकर देनेका निश्चय किया जिनकी ओर से अंग्रेजोंकी प्रभुता के विरुद्ध सिर उठाने का भय था और इसी विचारसे उसने सतारामें प्रतापसिंहके नेतृत्वमें एक छोटी-सी अधीनस्थ रियासत स्थापित कर दी। तो भी प्रतापसिंह अपनी स्थितिका उपभोग

* ये रियासतें स्वतंत्र भारतमें मिला दी गई हैं।

बहुत दिनों तक नहीं कर सका। बीस वर्ष तक भयपूर्ण जीवन व्यतीत करने के पश्चात् उसके ऊपर अंग्रेजी शक्तिके विरुद्ध षड्यंत्र रचनेका दोषारोपण किया गया, और उसे निष्कासित करके बनारस भेज दिया गया, जहाँ उसने निष्फल एवं पश्चातापरहित क्रोध के घूंट पी-पी कर अपने जीवनका अन्त किया। उसके बाद उसका भाई शाहजी सतारा की गद्दी पर बैठा, पर १८४८ में वह भी निःसन्तान मर गया, फलस्वरूप लॉर्ड डलहौजी ने दूसरी विशाल मराठा रियासत अर्थात् नागपुर राज्य सहित सतारा को अन्तिम रूपसे अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया। नागपुर का राज्य १८५४ में उन्हीं कारणोंसे (राजा का निःसन्तान मर जाना) लॉर्ड डलहौजी की राज्य मिलाने की नीतिका शिकार हुआ। १८४० में पश्चिमी समुद्रतटवर्ती कोलाबा की छोटी-सी रियासतका भी, जो कान्होजी जैसे विकराल शासकके वंशजके शासनमें थी, उत्तराधिकारी न होनेके कारण अन्त कर दिया गया। १८५५ में अपने अन्तिम राजा शिवाजीकी मृत्यु हो जाने पर सुदूर दक्षिणमें तंजोरके मराठा राज्यकी भी यही दशा हुई। राज्योंके इस तरहसे मिलाये जानेके कारण मराठोंके मनमें विद्वेषकी जो भावना उत्पन्न हुई उसका प्रदर्शन उस जातिके कुछ सदस्योंने किया, जैसे झांसीकी रानी, बिठूरके नाना साहब और उनके सेनाध्यक्ष तात्या टोपे। इन सब लोगोंने १८५७ के विद्रोहका उपयोग अपने-अपने ढंगसे किया और इस धृष्टताका फल अच्छी तरहसे चखा। अगर कुछ शेष बचा तो वह थी मराठा शक्तिके पुनर्जीवनके लिए किये गये अन्तिम शिथिल प्रयासकी दुःखद स्मृति। कुछ अर्थोंमें साधारण मराठोंके हृदयपटल पर वे स्मृतियां आज भी अंकित दिखाई पड़ती हैं, जिनका प्रदर्शन गत पचास वर्षोंमें महाराष्ट्रकी विचारपूर्ण रचनाओं तथा उपदेशोंमें हुआ है। हम आशा करते हैं कि इंगलैंड और भारत दोनों अपने भावी इतिहास का निर्माण पारस्परिक समझौतेके साथ करेंगे।

१५. भारतीय इतिहासकारोंके सम्मुख कार्य.

हमारे सम्मुख जो कार्य है उसे स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिए। मद्रासके कुछ प्रमुख विद्वान् बड़ी तत्परता के साथ संस्कृत तथा तामिल स्रोतोंकी खोज-बीन करते रहे हैं। महाराष्ट्रके लोग क्या कर रहे हैं वह मैं पहले ही बता चुका हूं। मैं यह तो जरूर कहूंगा कि गुजरात, राजपूताना और उत्तरी भारतके दूसरे भागोंके सम्बन्धमें, तुलनात्मक दृष्टिसे देखते हुए, कार्यक्षेत्र अब भी अज्ञात है। फ़ारसी सामग्रियोंके ढेर के ढेर, जैसा कि मेरे मित्र सर यदुनाथ सरकार ने बार-बार मुझको आश्वासन दिया

है, देशके इस भागमें सर्वत्र छितरे पड़े हैं। वे अभी तक अनेक विद्वानोंके धैर्यपूर्ण एवं स्वार्थरहित परिश्रमकी बाट जोह रहे हैं। इस समय हम जो कुछ कर रहे हैं उसका सम्बन्ध मुख्य रूपसे राजनीतिक चेष्टाओंसे है; सामाजिक और आर्थिक (चेष्टाएँ) तो अभी तक एक तरहसे अछूती ही पड़ी है। चारों ओर द्रुतगतिसे होनेवाली उन्नति के इस जमाने में भारतवर्ष अब अपने को शेष जगत्से और अधिक दिनों तक अलग नहीं रख सकता। सावधानीके साथ जांच करने पर हमको बहुत सी ऐसी बातें मालूम होंगी जो पहले ज्ञात न थीं। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्धमें, हमारी भेंट उत्तर-भारत के ऐसे तमाम व्यक्तियोंसे होती है, जिनकी हमारे स्वीकृत इतिहास में निन्दा की गई है। हमें अपने तर्क से इस निन्दा को सिद्ध करना चाहिए या उसका खंडन करना चाहिए। सम्राट् शाहआलम द्वितीय और उसके विभिन्न पदाधिकारी जैसे मिर्जा नफ़जखां, मीर जाफ़र, मीर क़ासिम, अलीवर्दीखां, मुहम्मद रजाखां, छोटा गाजिउद्दीन (जो कुछ समय तक दिल्लीका किंग मेकर था), रुहेला नजीबखां और उसका लड़का जब्तखां, शुजाउद्दौला और उसके उत्तराधिकारी, बनारसका राजा चेतसिंह और इनके अतिरिक्त विभिन्न राजपूत, और जाट तथा सिख नेतागण—ये सभी और ढेर के ढेर दूसरे लोग, जिनमें हिन्दू और मुसलमान सभी आ जाते हैं, भारतकी स्वतंत्रता की रक्षा करने में शक्तिहीनसे सिद्ध होते जान पड़ते हैं। यह कैसे कि सारा ज्ञान अकस्मात् इस देशसे पश्चिममें चला गया हुआ-सा जान पड़ता है। क्या हम इस बातकी शंका नहीं कर सकते कि उनकी जीवनवृत्तियोंकी परीक्षा हमारे अपने रिकार्डोंसे और भारतीय दृष्टिकोणसे नहीं की गई? यदि हम नई सामग्रियोंकी खोज करें तो इन पुरुषोंकी गलतियों और असफलताओं में से भी कमसे कम कुछ मुक्ति-दायक लक्षण तो ढूंढ़ ही लेंगे। क्या सारे प्रमाणों पर गौर किये बिना ही हम उनका निर्णय कर लेंगे और उनकी निन्दा कर डालेंगे? छोटे-से-छोटे अपराधी तक को अपने बचाव के लिए मौका दिया जाता है। क्या कुछ दयावान् प्राणी उनके इस कलंकको मिटानेके लिए न उठ खड़े होंगे? मैं कार्यकर्ताओंसे अपील करता हूं और साथ ही यह विश्वास करता हूं कि वे मेरी बात खाली न जाने देंगे।